ओटक्कुषल्

(बाँसुरी)

मूल-कृति

जी० शंकर कुरुप

रूपान्तर

जी० नारायण पिल्लै

लक्ष्मीचन्द्र जैन
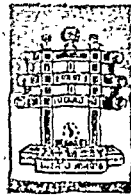
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक २३५
सम्पादक एवं नियामक
लक्ष्मीचन्द्र जैन

Lokodaya Series : Title No. 235

OTAKKUZHAL

(Poems)

G. Sankara Kurup

Bharatiya Jnanpith Publication
First Edition 1966
Price 8·00

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
प्रधान कार्यालय
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

विक्रय-केन्द्र
३६२०/२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६
प्रथम संस्करण १९६६
मूल्य ८.००

मुद्रक :
ज्ञानेन्द्र शर्मा
जनवाणी प्रिंटर्स ऐण्ड पब्लिशर्स प्रा. लि,
१७८, रवीन्द्र सरणी, कलकत्ता-३

"हो सकता है कि कल यह वंशी,
मूक होकर काल की लम्बी कूड़ेदानी में गिर जाये
या यह दीमकों का आहार बन जाये, या यह
मात्र एक चुटकी राख के रूप में परिवर्तित हो जाये।
तब कुछ ही ऐसे होंगे जो शोक-निःश्वास लेकर
गुणों की चर्चा करेंगे ;
लेकिन लोग तो प्रायः बुराइयों के ही गीत गायेंगे।
जो भी हो, मेरा जीवन तो तेरे हाथों समर्पित होकर
सदा के लिए आनन्द-लहरियों में तरंगित हो गया,
धन्य हो गया।"

मुखपृष्ठ : ई. अल्काज़ी

'तूने अपनी साँस की फूंक से
उत्पन्न कर दी है प्राणों की सिहरन
इस निःसार खोखली नली में।'... (जी. शंकर कुरुप)

(मुखपृष्ठ की रचना करते श्री अल्काज़ी ने वंशी की जगह वंशी-ध्वनि को चुना है एक छायाकृत पत्ती के रूप में, प्रकृति के बिखरे हुए अनेक उपादानों में से— कि वंशी का रूप चाहे जितना आधुनिक और सूक्ष्म क्यों न हो, उस कल्पनालोक तक नहीं पहुँचाएगा जो महाकवि कुरुप की गीतात्मक प्रकृति से सम्पन्न है और 'ओटक्कुषल्' का प्रतीक भी।)

प्राक्कथन

मलयालम की यह काव्यकृति 'ओटक्कुष़ल्' भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रवर्तित एक लाख रुपये राशि के पुरस्कार से सम्मानित हुई है और दिल्ली में १९ नवम्बर, १९६६ को आयोजित पुरस्कार-समर्पण-समारोह के अवसर पर हिन्दी-अनुवाद के रूप में पाठकों के सामने आ रही है। इस काव्य-संग्रह का प्रकाशन भारतीय साहित्य के इतिहास की बड़ी घटना है। इस अवसर पर यदि भारतीय ज्ञानपीठ को विशेष गर्व और गौरव अनुभव हो, तो यह स्वाभाविक है।

इस घटना के कितने-कितने आयाम हैं। यह, कि समग्र भारतीय साहित्य को एक इकाई के रूप में देखकर उसके मूल्यांकनका प्रयत्न देश में पहली बार हुआ है; कि, एक निश्चित विधि-विधान के अन्तर्गत, भारतीय साहित्य की एक कृति को निर्धारित अवधि में प्रकाशित सर्जनात्मक साहित्य की श्रेष्ठ उपलब्धि घोषित करके देश का ध्यान उस कवि और उसकी कृति की ओर आकर्षित किया जा रहा है; कि, अपेक्षा है कि इस कृति का अनुवाद-प्रकाशन हिन्दी को वास्तविक अर्थ में देश की साहित्यिक उपलब्धियों के आदान-प्रदान का सार्थक माध्यम प्रमाणित करेगा; कि, इस प्रकाशन से यह प्रमाणित होगा कि दिल्ली में जनमा और बैठा हिन्दी भाषा-भाषी साहित्यकार ('दिल्ली में' इसलिए कि, यहाँ ही इस प्रकाशन का अनावरण पहली बार हो रहा है) मूल मलयालम को देवनागरी लिपि के माध्यम से पढ़ कर देखेगा और विमुग्ध होगा कि जिस अखिल भारतीय संस्कृति और सांस्कृतिक स्पन्दन की बात कही जा रही है, साहित्य के क्षेत्र में वह कोरी कल्पना नहीं है, ठोस यथार्थ है क्योंकि भाषा, छन्द-विधान, भाव-निधि इतने जाने-पहचाने लगते हैं जैसे उसकी अपनी भाषा की श्रेष्ठ कृतियों की भावभूमि मलयालम के माध्यम से प्रस्तुत की जा रही हो—यद्यपि कहाँ दिल्ली, और कहाँ केरल।

कृतिकार, महाकवि शंकर कुरुप का नाम इन पंक्तियों में अभी तक लिया नहीं गया। केरल और दिल्ली के हृदयों के इस सम-स्वरीय स्पन्दन के विधाता वे हैं। ओटक्कुष़ल् का शाब्दिक अर्थ मलयालम में, 'बाँस की नली' है, हिन्दी में हमने उसे बाँसुरी कहा है, अर्थात् 'वंशी'—बाँस की बनी। कवि का नाम

'शंकर' और कृति का नाम 'वंशी'—जैसे देश का सारा दार्शनिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक चित्र-फलक एक प्रकाश-विन्दु के आलोक में जगमगा उठा।

पुरस्कार के लिए इस कृति का वरण 'सर्वश्रेष्ठ' के रूप में प्रकाशन-अवधि की सीमाओं से बाधित है, यह बात ध्यान में रख लेना आवश्यक है। पुरस्कार-विधान के अन्तर्गत, १९६५ के पुरस्कार के लिए वे ही कृतियाँ विचारणीय थीं जिनके लेखक जीवित हों, जो 'सर्जनात्मक साहित्य' की कोटि में आती हों और जिनका प्रकाशन सन् १९२० से १९५८ के बीच हुआ हो। कृति के वरण की पद्धति यह है कि भारतीय संविधान-विहित १४ भाषाओं के लिए एक-एक 'भाषा परामर्श समिति' है जो अपनी भाषा की एक कृति को 'सर्वश्रेष्ठ' के रूप में चुन कर, भाषा-वर्ग समितियों के विचारार्थ प्रस्तुत करती है। भाषा-वर्ग समितियों का गठन इस प्रकार होता है कि परस्पर सम्बद्ध क्षेत्रों की दो-दो या तीन-तीन भाषाओं का एक वर्ग बनाया जाता है, क्योंकि (अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त पड़ोस के भाषांचल की भाषा जाननेवाले समीक्षक सुविधापूर्वक मिल जाते हैं) जो सम्बन्धित भाषा-परामर्श समितियों द्वारा पुरस्कृत दो या तीन कृतियों पर विचार करते हैं और उनमें से एक 'श्रेष्ठ' को चुन लेते हैं। इस प्रथम पुरस्कार के संदर्भ में ऐसी ५ वर्ग समितियाँ भी थीं जिन्होंने एक-एक कृति को चुना, और अन्तिम निर्णायक मंडल—'प्रवर परिषद्'—के विचारार्थ प्रस्तुत किया। 'प्रवर परिषद्' ने द्वि-भाषी साहित्यिक समीक्षकों से कृतियों का पारस्परिक मूल्यांकन करवाया, एक विशेष आधार पर; इनका पुनर्मूल्यांकन करवाया गया, हिन्दी-अनुवाद भी सामने प्रस्तुत रहा, अन्तिम निर्णय से पहले सम्बन्धित भाषा समितियों के संयोजकों और कृतियों के हिन्दी अनुवादकों को आमन्त्रित करके प्रवर परिषद् ने उनसे अनुशंसित कृतियों के संबन्ध में विचार-विनिमय किया, प्रश्नोत्तर हुए, मूल कृतियों के चुने हुए अंशों के पाठ द्वारा यह जानने का प्रयत्न किया कि अनुवाद में मूल के छन्द, स्वर, लय की जो प्रतिध्वनियाँ नहीं आ पाईं वे क्या हैं—आदि, आदि। इस प्रकार जो कृतियाँ अन्तिम चरण में विचारणीय थीं, उनमें से प्रवर परिषद् ने सर्व-सम्मति से महाकवि कुरुप की इस कृति 'ओटक्कुषल्' का वरण सर्वश्रेष्ठ के रूप में किया।

प्रत्येक संभव प्रयत्न किया गया कि पुस्तक का वरण सर्वथा निष्पक्ष और प्रामाणिक रहे। हमें प्रसन्नता है कि भारतीय ज्ञानपीठ और प्रवर परिषद् की निष्पक्षता और प्रामाणिकता के विषय में कहीं कोई सन्देह नहीं रहा। कृति के वरण के विषय में कहीं कोई मत-भेद हो सकता है, वह प्रत्येक पुरस्कार के सम्बन्ध में सदा रहा है।

'ओटक्कुष़ल्' के हिन्दी अनुवाद के सम्बन्ध में दो शब्द कह देना आवश्यक है। अनुवाद का प्रमुख लक्ष्य यह था कि मूल का भाव यथा-संभव अक्षुण्ण रूप से आ जाये, ताकि, कवि के शब्दों में, " 'रिद्म' (लय) की अपेक्षा 'कॉण्टेंण्ट' (विषय-बोध, भाव-बोध) पर ध्यान दिया जाये।"

ज्ञानपीठ श्री पी० एन० भट्टतिरि, सहसम्पादक 'भारतवाणी', श्री जी० नारायण पिल्लै, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय केन्द्र, एर्णाकुलम, श्री के० रविवर्मा, संपादक 'युग प्रभात' और श्री इलयिटम् के प्रति आभारी है कि उनके द्वारा प्रस्तुत अनुवाद के प्रारूप को आधार बना कर रूपान्तर प्रस्तुत किया जा सका है। श्री भट्टतिरि ने अपने अनुवाद में हिन्दी की छन्द और लय-ध्वनि देने का प्रयत्न किया। श्री जी० नारायण पिल्लै की लगन, उनकी क्षमता और श्रम बहुत सहायक रहे। वह दो बार कलकत्ता आये, कुछ दिन रहे और रूपान्तरण के लिए मूल के शब्दों और भावों का स्पष्टीकरण किया। संग्रह की एक कविता 'वन्दनम् पर्युक' का अनुवाद, 'शतशः धन्यवाद' श्री दिनकर ने रेडियो के दिल्ली केन्द्र द्वारा आयोजित सर्वभाषा सम्मेलन में प्रस्तुत किया था। उसे साभार सम्मिलित किया गया है। एक समर्थ कवि द्वारा प्रस्तुत अनुवाद को सम्मिलित करने का एक विशेष प्रयोजन यह भी था कि कवि की एक कविता का छन्दबद्ध प्रवाह नमूने के रूप में सामने आये और कवि की अन्य कृतियों के अनुवाद के लिए प्रेरणा मिले।

'ओटक्कुष़ल्' में संग्रहीत कविताओं का चयन कवि ने अपनी १९५० तक रचित कविताओं में से ही किया था। इधर के १५ वर्षों में कवि की प्रतिभा ने कौनसी सामर्थ्य और कौनसे आयाम प्राप्त किये हैं, जब तक वह सामने न आयें, कवि कुरुप के कृतित्व का ठीक-ठीक मूल्यांकन नहीं हो सकता। भारतीय ज्ञानपीठ ने 'ओटक्कुष़ल्' के प्रकाशन के साथ-साथ कवि की चुनी हुई परवर्ती दस कविताओं का एक दूसरा संकलन, उनकी एक कविता के आधार पर 'एक और नचिकेता' शीर्षक से प्रकाशित किया है जो इसी प्रथम पुरस्कार-समर्पण-समारोह के अवसर पर पाठकों को भेंट किया जा रहा है।

कवि कुरुप ने अपने काव्य-विकास के सम्बन्ध में जो वक्तव्य 'ओटक्कुष़ल्' की भूमिका के रूप में तैयार किया था उसका अनुवाद सम्मिलित है। हाँ, श्री गुप्तन नायर की विस्तृत, भावपूर्ण भूमिका का अनुवाद सम्मिलित नहीं किया गया है, विशेषकर इसलिए कि हिन्दी के पाठक और समीक्षक कृति का रसग्रहण और मूल्यांकन स्वयं करें।

'शंकर' और कृति का नाम 'वंशी'—जैसे देश का सारा दार्शनिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक चित्र-फलक एक प्रकाश-बिन्दु के आलोक में जगमगा उठा।

पुरस्कार के लिए इस कृति का वरण 'सर्वश्रेष्ठ' के रूप में प्रकाशन-अवधि की सीमाओं से बाधित है, यह बात ध्यान में रख लेना आवश्यक है। पुरस्कार-विधान के अन्तर्गत, १९६५ के पुरस्कार के लिए वे ही कृतियाँ विचारणीय थीं जिनके लेखक जीवित हों, जो 'सर्जनात्मक साहित्य' की कोटि में आती हों और जिनका प्रकाशन सन् १९२० से १९५८ के बीच हुआ हो। कृति के वरण की पद्धति यह है कि भारतीय संविधान-विहित १४ भाषाओं के लिए एक-एक 'भाषा परामर्श समिति' है जो अपनी भाषा की एक कृति को 'सर्वश्रेष्ठ' के रूप में चुन कर, भाषा-वर्ग समितियों के विचारार्थ प्रस्तुत करती है। भाषा-वर्ग समितियों का गठन इस प्रकार होता है कि परस्पर सम्बद्ध क्षेत्रों की दो-दो या तीन-तीन भाषाओं का एक वर्ग बनाया जाता है, क्योंकि (अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त पड़ोस के भाषांचल की भाषा जाननेवाले समीक्षक सुविधापूर्वक मिल जाते हैं) जो सम्बन्धित भाषा-परामर्श समितियों द्वारा पुरस्कृत दो या तीन कृतियों पर विचार करते हैं और उनमें से एक 'श्रेष्ठ' को चुन लेते हैं। इस प्रथम पुरस्कार के संदर्भ में ऐसी ५ वर्ग समितियाँ भी थीं जिन्होंने एक-एक कृति को चुना, और अन्तिम निर्णायक मंडल—'प्रवर परिषद्'—के विचारार्थ प्रस्तुत किया। 'प्रवर परिषद्' ने द्वि-भाषी साहित्यिक समीक्षकों से कृतियों का पारस्परिक मूल्यांकन करवाया, एक विशेष आधार पर; इनका पुनर्मूल्यांकन करवाया गया, हिन्दी-अनुवाद भी सामने प्रस्तुत रहा, अन्तिम निर्णय से पहले सम्बन्धित भाषा समितियों के संयोजकों और कृतियों के हिन्दी अनुवादकों को आमन्त्रित करके प्रवर परिषद् ने उनसे अनुशंसित कृतियों के संबन्ध में विचार-विनिमय किया, प्रश्नोत्तर हुए, मूल कृतियों के चुने हुए अंशों के पाठ द्वारा यह जानने का प्रयत्न किया कि अनुवाद में मूल के छन्द, स्वर, लय की जो प्रतिध्वनियाँ नहीं आ पाईं वे क्या हैं—आदि, आदि। इस प्रकार जो कृतियाँ अन्तिम चरण में विचारणीय थीं, उनमें से प्रवर परिषद् ने सर्व-सम्मति से महाकवि कुरुप की इस कृति 'ओटक्कुषल्' का वरण सर्वश्रेष्ठ के रूप में किया।

प्रत्येक संभव प्रयत्न किया गया कि पुस्तक का वरण सर्वथा निष्पक्ष और प्रामाणिक रहे। हमें प्रसन्नता है कि भारतीय ज्ञानपीठ और प्रवर परिषद् की निष्पक्षता और प्रामाणिकता के विषय में कहीं कोई सन्देह नहीं रहा। कृति के वरण के विषय में कहीं कोई मत-भेद हो सकता है, वह प्रत्येक पुरस्कार के सम्बन्ध में सदा रहा है।

'ओटक्कुषल्' के हिन्दी अनुवाद के सम्बन्ध में दो शब्द कह देना आवश्यक है। अनुवाद का प्रमुख लक्ष्य यह था कि मूल का भाव यथा-संभव अक्षुण्ण रूप से आ जाये, ताकि, कवि के शब्दों में, " 'रिद्म' (लय) की अपेक्षा 'कॉण्टेंण्ट' (विषय-बोध, भाव-बोध) पर ध्यान दिया जाये।"

ज्ञानपीठ श्री पी० एन० भट्टतिरि, सहसम्पादक 'भारतवाणी', श्री जी० नारायण पिल्लै, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय केन्द्र, एर्णाकुलम, श्री के० रविवर्मा, संपादक 'युग प्रभात' और श्री इलयिटम् के प्रति आभारी है कि उनके द्वारा प्रस्तुत अनुवाद के प्रारूप को आधार बना कर रूपान्तर प्रस्तुत किया जा सका है। श्री भट्टतिरि ने अपने अनुवाद में हिन्दी की छन्द और लय-ध्वनि देने का प्रयत्न किया। श्री जी० नारायण पिल्लै की लगन, उनकी क्षमता और श्रम बहुत सहायक रहे। वह दो बार कलकत्ता आये, कुछ दिन रहे और रूपान्तरण के लिए मूल के शब्दों और भावों का स्पष्टीकरण किया। संग्रह की एक कविता 'वन्दनम् पर्युक' का अनुवाद, 'शतशः धन्यवाद' श्री दिनकर ने रेडियो के दिल्ली केन्द्र द्वारा आयोजित सर्वभाषा सम्मेलन में प्रस्तुत किया था। उसे साभार सम्मिलित किया गया है। एक समर्थ कवि द्वारा प्रस्तुत अनुवाद को सम्मिलित करने का एक विशेष प्रयोजन यह भी था कि कवि की एक कविता का छन्दबद्ध प्रवाह नमूने के रूप में सामने आये और कवि की अन्य कृतियों के अनुवाद के लिए प्रेरणा मिले।

'ओटक्कुषल्' में संग्रहीत कविताओं का चयन कवि ने अपनी १९५० तक रचित कविताओं में से ही किया था। इधर के १५ वर्षों में कवि की प्रतिभा ने कौनसी सामर्थ्य और कौनसे आयाम प्राप्त किये हैं, जब तक वह सामने न आयें, कवि कुरुप के कृतित्व का ठीक-ठीक मूल्यांकन नहीं हो सकता। भारतीय ज्ञानपीठ ने 'ओटक्कुषल्' के प्रकाशन के साथ-साथ कवि की चुनी हुई परवर्ती दस कविताओं का एक दूसरा संकलन, उनकी एक कविता के आधार पर 'एक और नचिकेता' शीर्षक से प्रकाशित किया है जो इसी प्रथम पुरस्कार-समर्पण-समारोह के अवसर पर पाठकों को भेंट किया जा रहा है।

कवि कुरुप ने अपने काव्य-विकास के सम्बन्ध में जो वक्तव्य 'ओटक्कुषल्' की भूमिका के रूप में तैयार किया था उसका अनुवाद सम्मिलित है। हाँ, श्री गुप्तन नायर की विस्तृत, भावपूर्ण भूमिका का अनुवाद सम्मिलित नहीं किया गया है, विशेषकर इसलिए कि हिन्दी के पाठक और समीक्षक कृति का रसग्रहण और मूल्यांकन स्वयं करें।

महाकवि और उनकी कविता के सम्बन्ध में विशेष कुछ न कह कर यहाँ हम उस 'प्रशस्ति' को उद्धरित कर रहे हैं जो कवि के सम्मान में समर्पित है :

"भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रवर्तित एक लाख रुपये राशि का यह साहित्यिक पुरस्कार श्री जी० शंकर कुरुप को उनके मलयालम काव्य-संग्रह 'ओटक्कुषल्' के लिए समर्पित है, जिसे पुरस्कार-विधान के अन्तर्गत गठित प्रवर परिषद् ने सन् १९२० से १९५८ के बीच प्रकाशित भारतीय भाषाओं के सर्जनात्मक साहित्य में विधिवत् सर्वश्रेष्ठ निर्णीत और घोषित किया है।

"ओटक्कुषल् का वरण यद्यपि सन् १९६५ के लिए हुआ है, किन्तु इसका प्रकाशन वर्ष १९५० है। इस दृष्टि से यह कृति कवि के न केवल १९५० तक के सर्वश्रेष्ठ कृतित्व का प्रतिनिधित्व करती है, अपितु उनके अगले १५ वर्षों तक के अधिक समर्थ कृतित्व का पूर्व परिचय देती है। 'ओटक्कुषल्' की कविताओं में भारतीय अद्वैत भावना का साक्ष्य है जिसे कवि ने परम्परागत रहस्यवादी मान्यता के अंगीकरण द्वारा नहीं, प्रकृति के नानारूपों में प्रतिविम्बित आत्म-छवि की वास्तविक अनुभूति द्वारा प्राप्त किया है। चराचर के साथ तादात्म्य भाव की इस प्रतीति के कारण कवि कुरुप के रूमानी गीति-काव्य में भी एक आध्यात्मिक और नैतिक उदात्त स्वर है।

"कवि की काव्य चेतना ने ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक युगबोध के प्रति सजग भाव रखा है और उत्तरोत्तर विकास पाया है। इस विकास-यात्रा में प्रकृति-प्रेम का स्थान यथार्थ ने, समाजवादी राष्ट्रीय चेतना का स्थान अन्तर्राष्ट्रीय मानवता ने लिया और इस सब की परिणति आध्यात्मिक विश्वचेतना में हुई जहाँ मानव विराट विश्व की समष्टि से एकतान है; जहाँ मृत्यु भी विकास का चरण होने के कारण वरेण्य है।

"कुरुप विम्बों और प्रतीकों के कवि हैं। उन्होंने परम्परागत छन्द-विधान और संस्कृत-निष्ठ भाषा को अपनाया, परिमार्जित किया और अपने चिन्तन तथा काव्य-प्रतिविम्बों के अनुरूप उन्हें अभिव्यक्ति की नयी सामर्थ्य से पुष्ट किया। इसीलिए कवि का कृतित्व कथ्य में भी और शैली-शिल्प में भी मलयालम साहित्य की विशिष्ट उपलब्धि के रूप में ही नहीं, भारतीय साहित्य की एक उपलब्धि के रूप में भी सहज ग्राह्य है।

कवि दीर्घजीवी हों। शुभं भूयात्!"

—लक्ष्मीचन्द्र जैन

संपादक–नियोजक, लोकोदय ग्रंथमाला

ता

महाकवि जी, शंकर कुरुप

मेरी कविता

प्रकृति की कनिष्ठा सन्तान होने के कारण विश्व की अपेक्षा मनुष्य आयु में वहुत छोटा है। आज भी उसका जीवन शिशु-सहज कौतुकों से भरा है। रूप, नाद, रस, गन्ध तथा स्पर्श के द्वारा उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ निरन्तर जागरूक हैं। ये ज्ञानेन्द्रियाँ हृदय तथा आत्मा को मोहित करनेवाला वृत्तान्त मनुष्य को सदा सुनाती आयी हैं। यह वृत्तान्त कितना भी लम्वा क्यों न हो, मनुष्य की आत्मा को वह कभी वुरा नहीं लगता। आत्मा को तो इस वात का दु:ख रहता है कि नयी अनुभूतियों के वृत्तान्त लाने के लिए मनुष्य के पास नयी इन्द्रियाँ नहीं हैं। आत्मा में इस कारण एक प्रकार की असंतृप्ति वनी रहती है।

ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अवगत होनेवाला विश्व मनुष्य के हृदय में एक कौतुकपूर्ण जिज्ञासा जाग्रत करता है। जव कल्पना, चिन्तन आदि मानसिक प्रक्रियाओं द्वारा प्रकृति का प्रतिविंव आत्मा पर पड़ता होता है, तव मनुष्य हृदय में जाग्रत जिज्ञासा, उस प्रतिविंव का विश्लेषण करने तथा उसको संचय करके एक कथा-वस्तु के रूप में प्रकट करने के लिए तत्पर हो जाती है। विश्व, विज्ञान तथा कला का यह सजीव स्रोत किसी के भीतर निरंतर वहता रहता है तो किसी में तुषार कण की तरह प्रकट हो कर विलीन हो जाता है। मेरी आत्मा के किसी उच्च स्तर पर आज भी वहनेवाले उस स्रोत ने ही कदाचित् मेरे हृदय में प्रकृति एवं मनुष्य-जीवन को ध्यान से देखने तथा उनका अध्ययन व आस्वादन करने का कौतुक उत्पन्न किया हो। यह आत्मीयता का भाव ही मेरी अकिंचन तथा अपूर्ण कविता का उद्गम है।

कुल लोगों का मन्तव्य है कि वैज्ञानिक अभिज्ञता वढ़ने के साथ विलक्षणता कम होने लगती है तथा चिंतनशक्ति के प्रहार से कल्पना का प्रासाद ढह जाता है। मुझे यह मान्यता ठीक नहीं लगती। सूर्य-मंडल के सम्वन्ध में मनुष्य की वैज्ञानिक जानकारी वहुत बढ़ गयी है। क्या उस जानकारी के कारण पृथ्वी तथा ग्रह मनुष्य की दृष्टि में और भी अधिक रम्य नहीं बने हैं? अपने प्रसन्न मुख पर प्रेम की ऊष्मता लिए अनन्त आकाश से कभी झुककर और कभी सीधे निर्निमेष देखने-वाला नित्य प्रेमी सूर्य, तथा ऋतु-परिवर्तन की विचित्रता लिये अपनी तिमिर

केशराशि को पीठ पर फैलाये विविध रंगों में सजकर विविध शब्दों के साथ स्वयं घूम-घूम कर नृत्य करनेवाली पृथ्वी—इन सबके भव्य काल्पनिक चित्र मेरे लिए आज भी दर्शनीय है। एक क्षुद्र 'सेल' रमणीय सुन्दरी शकुंतला के रूप में विकसित हो जाता है। क्या इस वैज्ञानिक सत्य में कल्पना की उड़ान के लिए स्थान नहीं है? वास्तव में विज्ञान से कल्पना का क्षेत्र विस्तृत होता है तथा कौतुक बढ़ता है। बचपन के दिनों की बात है। इडव[1] मास की अंधेरी रातों में जब मैं अकेला अपने छोटे घर के बरामदे में बैठकर, घने बादलों की गोद से निकल कर उसी में छिप जानेवाली बिजली को देखता तो न जाने क्यों, उछल पड़ता। आज मैं बिजली से अनभिज्ञ नहीं हूँ। वह मेरे परिवार का ही अंग बन गयी है और इस समय मेरी मेज़ के पास खड़ी हो कर, पतले काँच के झीने अवगुंठन के भीतर से मेरी लेखनी उसे देख-देख कर मुस्करा रही है। फिर भी विद्युत् की अप्सरा के प्रति तथा उसको बाँध कर रखनेवाले मनुष्य के प्रति मेरा कौतुक रत्ती भर भी कम नहीं हुआ है। अपने शरीर पर हाथ लगाने की अविवेकी कृत्य करनेवालों को भस्म कर देनेवाली बिजली क्या चरित्रगुण में दमयंती से कम है? वैज्ञानिक अभिज्ञता कवि कल्पना के पंखों को सत्य की रक्त शिरायें प्रदान करती है और उनमें उड़ान की शक्ति भर देती है।

कला-कविता :

कौतुक से सजीव कल्पना विश्व तथा मनुष्य जीवन को अपनी ओर खींचने तथा अपने बाहुपाश में करने के लिए हाथ बढ़ाती रहती है। इसलिए उसके हाथ बलिष्ठ होते हैं और उसकी पहुँच दूर तक होती है। मन में बिजली-जैसी उठनेवाली प्रक्रिया जब मनुष्य हृदय में और विश्व-हृदय में भी अपनी प्रतिध्वनि सुनने के लिए मचलने लगती है तब हमें सर्वव्यापी एकता की अनुभूति होने लगती है। कल्पना तथा मानसिक प्रक्रिया का यह कार्य जितना शक्तिशाली होता है उतना ही कलाकार का महत्व भी बढ़ता है। कवि हृदय एवं प्रकृति के बीच, मधुर कल्पना तथा आर्द्र भाव-युक्त संयोग से उत्पन्न होनेवाली अनुभूति का घनीभूत रूप ही कथावस्तु है। कल्पना कथावस्तु का प्राण है तो मानसिक प्रक्रिया है उसकी शिराओं में दौड़नेवाला जीव-रक्त! कल्पना-सुरभित तथा भाव-निर्मित इन कथा-वस्तुओं में प्रकृति तथा मानव आत्मा की छाप स्पष्ट रूप से देख सकते हैं।

---

१. ऋषभ राशि का तद्भव रूप। केरल के महीने का नाम।

यह छाप ही कलाकार का व्यक्तित्व है, कथावस्तुओं का प्रकाश ही कला है। अपने कलात्मक जीवन की अनुभूतियों से कविता के सम्बन्ध में यही कुछ मैं समझ पाया हूँ।

मेरे लिए कविता आत्मा का प्रकाश मात्र है। जैसे धूसर क्षितिज पर सन्ध्या की छवि प्रतिबिंबित होती है वैसे ही बन्धुर छंदों के पदबन्धों में कवि का हृदय प्रतिबिंबित होता है। इस आत्म-प्रकाश से और कुछ बने या न बने, किन्तु एक कलाकार के लिए यह परमानन्द का कारण तो है ही। जैसे मंद पवन हंस के पंखों को ऊपर उड़ा ले जाता है वैसे ही परमानन्द की यह अनभूति एक कलाकार की आत्मा को भौतिक शरीर से परे उठा ले जाती है। प्राचीन मनुष्य द्वारा गुहा-भित्ति पर अंकित हिरन के चित्र को ही लीजिये। जब मनुष्य के हृदय से निकल कर वह हिरन अचल शिला पर दौड़ने लगा तब उसके साथ उस मनुष्य की आत्मा ने कितनी उड़ानें भरी होंगी। उस मनुष्य की अनुभूति का वह प्रतीक जब उसके मित्रों के हृदयों को भी पुलकित करने लगा तब वे भी उसके निकट खिंच आने लगे। इस प्रकार जो केवल एक व्यक्ति की आत्मा का प्रकाश था उसका एक सामाजिक मूल्य उत्पादन हो गया। एक कवि होने के कारण अपनी अनुभूतियों का प्रकाश ही मेरे लिए परमानन्द का विषय है। और यदि उस आनन्द का आस्वादन अन्य लोगों को भी करा सका तो वह मेरी विजय होगी। उससे मेरी कला को एक सामाजिक आधार मिलेगा। लोगों का उत्कर्ष अन्य लोगों के द्वारा हो अथवा मेरे द्वारा! यह अनुभूति कैसी वांछनीय है, और कितनी आत्म-संतृप्ति है उसमें!

कविता व्यक्तिगत अनुभवों का प्रकाश है। 'मुत्तुकळ्' नामक अपने कविता-संग्रह में मैंने अपनी यह धारणा प्रकट की थी। जीवन के यथार्थ-अनुभवों के आघात से हृदय में उत्पन्न होनेवाली मधुर संवेदनाओं को कल्पना का आवरण पहनाकर प्रकट करना ही रचना है। उसमें व्यक्ति की प्रधानता रहती है। 'इल्यूज़न ऐण्ड रियलिटी' नामक एक पुस्तक मैंने पढ़ी थी। उस पुस्तक में उपर्युक्त कथन का प्रतिवादन यह प्रमाणित करने के लिए किया गया था कि कला व्यक्ति की नहीं समाज की सृष्टि है। ये दोनों बातें परस्पर विरोधी लगती हैं। किन्तु वास्तव में है एक ही सत्य के दो पहलू। क्योंकि व्यक्तिगत अनुभव सामाजिक अनुभवों का अंग है और व्यक्ति सामाजिक परिस्थितियों की उपज है।

मेरे गाँव के हरे मैदान, सुनहरे खेत, ग्राम्य हृदय में मस्तक ऊँचा किये खड़े रहनेवाला प्राचीन मंदिर, दरिद्रता में डूबा हुआ प्रतिवेश, कवि कल्पना को अपने पास बुलानेवाली पहाड़ियाँ इन्हीं सब ने मेरे हृदय को स्वप्नों से भर दिया था और फिर

उन स्वप्नों को विविध रंगों से सजाया तथावाणी देकर सजीव वनाया था। वह खेत जिसमें कंगनों-हँसियों की चमक दिखाई देती है, सिर पर धान का वोझा लिए चलने में हाँफती हुई वे कृषक कन्याएँ, अपनी झोपड़ी की ड्योढ़ियों पर बैठे रहनेवाले पुलयंर,[1] सन्ध्या के शान्तिपूर्ण वातावरण में मधुरता फैलाता हुआ मंदिर से आनेवाला शंखनाद——इन सब से मेरे कल्पना-समुद्र में अव्यक्त एवं विचित्र तरंगे उठी हैं।

मरणोन्मुख सामन्तशाही तथा पाखण्डी पुरोहितों के अत्याचार के कारण ही गाँव का जीवन विकृत हो रहा है, यह बात बचपन के उन दिनों में मैं नहीं समझता था। तो भी सामन्ती पाखण्डियों तथा उनके नियमों के प्रति मेरे हृदय में लेश-मात्र आदर नहीं था। मेरे हृदय में जब मेरा व्यक्तित्व अंकुरित हुआ तब उसको वायु तथा प्रकाश का आहार मिला, मेरे गाँव के वातावरण से। इसलिए मेरी कविता भी उस ग्राम-हृदय का एक अंग है। उसके बाद जब अध्यापक का काम करने लगा तब एक और गाँव का प्रभाव मेरे हृदय पर पड़ा। 'तिरुविल्वामला' का विशाल हृदय की तरह फैला हुआ स्वप्न-सान्द्र मैदान, टीलों-वनों में आंखमिचौनी खेलती हुई संकेत स्थान पर आ मिलनेवाली नदियाँ, हाथों में जलकुंभ लिए खड़े रहनेवाले मेघ, तराई के मार्ग पर मन्दगति से जानेवाली वैलगाड़ियाँ ये सव दृश्य हैं जिनके कारण एकान्त में भी मैं एकाकी नहीं था। वे दृश्य मेरे व्यक्तित्व के विकास में सहायक रहे। 'एकादशी' के पर्व के अवसर पर दयालुओं की उदारता की आशा में मार्ग पर मिट्टी की थाली रख कर दूर जा खड़े होने वाले नायाड़ियों[2] को देख कर मुझे दारिद्र्य, तथा छूत-छात की क्रूरता के साथ-साथ किसी समय स्थापित हुए आर्यों के उपनिवेश का स्मरण ही आता तो भी मनुष्य को प्रकृति चित्र के कतिपय विन्दुओं की तरह ही मैं देख सका था। सम्भव है उस समय प्रकृति चित्र को संवेदनाओं के उत्ताप से सजीव वनाने के लिए ही मेरा मन मनुष्य को ढूँढता था। किन्तु आज मैं प्रकृति-चित्र से भिन्न मनुष्य के आदर्शमय अस्तित्व का वास्तविक चित्र देखता हूँ।

वाल्यकाल : स्मृतियाँ

एक ऊजड़ गाँव के छोटे परिवार में मेरा जन्म हुआ था। आर्थिक दृष्टि से दरिद्र होने पर भी माँ तथा मामाजी के वात्सल्य-घन की गोद में मैं पला था।

---

१. एक जाति का नाम जो अछूत मानी जाती है
२. एक अछूत जाति

पिताजी को अभी आँख भर देख भी न पाया था कि उनका देहान्त हो गया। मेरे पिताजी मुझे शोकसागर में छोड़ कर चले गये और मेरे भीतर एक ऐसी रिक्तता छोड़ गये जिसकी पूर्ति असंभव है। उनको स्मरण करते हुए मेरा मन कभी-कभी किसी अदृश्य लोक में पहुँच जाता और आध्यात्मिक ज्ञान से अपनी झोली भर कर लौट आता। मेरी माँ का हृदय प्रकृति के समान विशाल था। मेरे मामाजी चाहते थे कि उनका भानजा शीघ्रातिशीघ्र आदमी वन जाए। तीन वर्ष की आयु में उन्होंने मेरा विद्यारंभ कराया—एवं आठ वर्ष की आयु तक पढ़ाया। उन्होंने न तो मुझे खेलने दिया, न सखाओं के साथ मिल कर ऊधम मचाने दिया। मेरा शारीरिक नहीं, मानसिक स्वास्थ्य उनका अभीष्ट लक्ष्य था। वचपन में ही आदमी वन जाना कोई अच्छी वात नहीं है। किन्तु मैं उसी रास्ते पर चल रहा था। 'अमर कोश' 'सिद्धरूपम्' 'श्रीरामोदन्तम्' आदि ग्रन्थ कंठस्थ हो चुके थे। 'रघुवंश' काव्य के कई श्लोक पढ़ चुका था। ऐसे समय सौभाग्यवश मेरे गाँव में एक प्राथमिक पाठशाला की स्थापना हुई। मामाजी ने मुझे पाठशाला के दूसरे वर्ग में भर्ती करा दिया। इस प्रकार कठिन अनुशासन में संस्कृत काव्यों को कंठस्थ करने के काम से छुट्टी मिली। साथ ही साथ अपनी इच्छा के अनुसार स्वतंत्र रूप से काव्य रसास्वादन की प्रेरणा मन में जाग उठी। मेरे मामाजी के पास भाषा टीका के साथ संस्कृत काव्यों के बहुत से ग्रन्थ थे। मैं उन्हें पढ़ने लगा। कविता के प्रति कौतुक वढ़ानेवाली उस शिक्षा के प्रति अपना ऋण मैं कृतज्ञता के के साथ स्वीकार करता हूँ। संस्कृत काव्य-जगत में प्रवेश करने का जो द्वार मेरे लिए उस समय खुला था, उसको मैंने आज तक वन्द नहीं होने दिया। इसी तत्परता के रूप में मैं अपनी गुरुदक्षिणा देता रहूँ—यही मेरी कामना है।

कविता की ओर मुझे उन्मुख कर देनेवाली एक और घटना भी घटी। १०८७ के (मलयालम संवत्) लगभग, जब मैं ग्यारह वर्ष का था, महाकवि कुंजिकुट्टन तंपुरान अपने कुछ नंपूतिरि मित्रों की प्रेरणा से मेरे घर के समीपस्थ इतिहास प्रसिद्ध मन्दिर में पधारे। (चेरमान्[1] पेरुमाल् द्वारा गुरुपदेशानुसार निर्मित कहे जानेवाले प्रस्तुत मन्दिर के वारे में बहुत-सी दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। मन्दिर की भित्ति पर अंकित चित्र कला-प्रेमियों को आर्कषित कर वाले हैं) चेङङ्लूरमन[2] के हाथी को उत्सवाघोष के लिए लाये जाने पर जो अद्भुत आह्लाद प्रकट किये गये वही सब कुछ महाकवि के आगमन पर भी गाँव में परि-

---

१. अखण्ड केरल का अन्तिम सम्राट्

२. एक प्रसिद्ध ब्राह्मण भवन

लक्षित हुए। "कवि बनना एक महान दैवी-सिद्धि है" शायद मुझे उस दिन ऐसा लगा होगा। तंपुरान् के प्रति मेरे मन में उत्पन्न आदर और पक्षपात वर्षों तक रहा। किन्तु बाद को उनकी कविताओं में से कुछ ही ने कविता की हैसियत से मुझको आनन्दित किया है। शायद केवल भावगीतों को ही (लिरिक) कविता मान बैठनेवाली मेरी मुग्धता ही इसका कारण हो। साहित्य की ओर मुझे आकर्षित करने वाली एक प्रमुख घटना थी यह मुलाकात। मेरी माताजी गर्व का अनुभव किया करती थी कि आठवें महीने में शंकर चलने लगा। उसी तरह मातुल भी कहा करते थे कि उसने नवें वर्ष में कविता लिखी। आज लज्जा के साथ मैं याद करता हूँ कि वे सब पद्य की हैसियत से भी मूल्यवान् प्रयास नहीं थे। जब मैं चौथी कक्षा में पढ़ता था, अपने एक सहपाठी के प्रति उत्पन्न कृतज्ञता पर, अपने पुराने घर के किसी कोने में बैठकर संस्कृत के छन्दों में कुछ पंक्तियाँ लिखीं। (वह सहपाठी, जिसने पीलिया के आघात से कक्षा में चक्कर खाकर गिर जाने पर मुझको अपने कन्धे पर उठाकर एक मील पैदल चलकर घर पहुँचाया था, आज ज़िन्दा नहीं है।) वे पंक्तियाँ भी छन्दों के बन्धन में रहने की शिक्षा-प्राप्त अक्षर मात्र थीं। एक कुटुम्बी मित्र ने, जो 'कान्त छन्द' का लक्षण देखकर मात्रा और पंक्तियों को मिलाते थे, मेरी जो प्रशंसा की, वह शायद उनके सौजन्य के कारण। "अक्षरश्लोक" एवं तुकबन्दी—ये दोनों, विद्यार्थियों में से हम कुछ लोगों के लिए मध्याह्न भोजन के स्थान पर होनेवाला कार्यक्रम बना हुआ था। क्षीरसागर मन्थन की कथा को विभाजित कर मैं और मेरे मित्र ने जो शतक लिखा उसको सुनकर पेरुम्पावूर स्कूल के सातवीं कक्षा के अध्यापक ने कहा—"शतक सुनाने की परीक्षा आ रही है।"

उस अवस्था से ही मैं साम्यवाद के पक्ष में दरिद्रों के साथ रहा हूँ। प्रसिद्ध वाग्मी एवं प्रशस्त समाजसेवक श्री एम० एन० नायर, जो बाद में सर्विस सोसाइटी की सेवा में चले गये, मुवाट्टुपुषा में मेरे अध्यापक थे। वे मुझे बड़े लाड़-प्यार से प्रोत्साहित किया करते थे। ब्रिटिश हिस्ट्री और अर्थशास्त्र वे ही पढ़ाते थे। सोश्यलिज्म के पर्यायवाची शब्दों के तौर पर वे कभी 'समष्टिवाद' और कभी 'समाजसमत्ववाद' के शब्द इस्तेमाल करते थे। "अपनी समस्त सम्पदा को समाज की सम्पत्ति बनाकर समान रूप से उपभोग करने के लिए जो सन्नद्ध हैं वे खड़े हो हो जायें"—एक दिन गुरुजी ने हँसते हुए कहा। मैं उठ खड़ा हुआ। "इससे तो शंकर कुरुप की कोई सम्पत्ति नष्ट होनेवाली नहीं है न?" हँसते हुए फिर जब गुरुजी ने पूछा तो मैं लज्जित भी हुआ ही। बाद को ही मुझे पता चला कि

एशिया के राष्ट्रों में मुझसे कम सम्पत्ति रखनेवाले ही मेरे जैसे सम्पत्तिवालों से कहीं अधिक हैं। रूस उन दिनों आर्थिक क्रान्ति का द्वार खटखटा रहा था।

मामाजी ने मेरे हृदय में ज्ञानतृष्णा की जो लौ लगाई थी उसकी ज्वाला बढ़ती गयी, यही मेरे लिए बड़े सौभाग्य का विषय है। 'तिरुविल्वामला' में जब मैं अध्यापक बन कर गया तब मुझे इस बात का आनन्द था कि वहाँ रह कर अंगरेज़ी भाषा तथा साहित्य से परिचय करने का अवसर मिलेगा। मेरे कविता-संग्रह 'साहित्यकौतुकम्' के प्रथम भाग की कविताएँ 'तिरुविल्वामला' जाने के पहले की हैं। मुझे उस समय ही लग रहा था कि मेरे मन के विकास के लिए आवश्यक प्रकाश मुझे अपनी उस समय की शिक्षा से नहीं मिला था। तिरुविल्वामला में आकर मैंने अपने अध्यापक मित्रों को गुरु बनाया और उनकी सहायता से अंग्रेज़ी पढ़ना आरम्भ किया। टैगोर और उमर खय्याम के अतिरिक्त बहुत से अंगरेज़ी कवियों समालोचकों के पास सविनय पहुँचने का मार्ग इस तरह मेरे सामने न खुलता तो 'साहित्यकौतुकम्' की सीमा से कदाचित् मैं आगे न बढ़ पाता। यह नया मार्ग मुझे संस्कृति की खान की ओर ले गया। मेरे कल्पना-क्षितिज को विस्तृत तथा आदर्श-बोध को विकसित करने में टैगोर का जितना हाथ था उतना शायद किसी और का न रहा हो। उमर खैय्याम 'हाफ़िज़' आदि फ़ारसी कवियों से परिचय होने पर मुझे लगा कि उनकी कविताओं में कल्पना के परिमार्जन पर नहीं, प्रति-प्रतिपादन की रीति पर विशेष ध्यान दिया जाता है। अंगरेज़ी साहित्य मुझे गीति के आलोक की ओर ले गया।

मेरी आयु बीसवीं शताब्दी से केवल छह महीने कम की है। प्रथम विश्व-युद्ध के समय जर्मनी की विजयों की वार्ता सुनता तो मेरा विवेक शून्य हृदय आनन्द से नाच उठता क्योंकि उसमें पराजय हो रही थी मेरी मातृभूमि को पैरों-तले कुचलने वाले ब्रिटिश साम्राज्य की। गांधीजी के नेतृत्व में होने वाले स्वतन्त्रता संग्राम तथा धार्मिक क्रांति ने मेरे हृदय में देश-प्रेम का मंत्र फूंका। रूस की आर्थिक तथा सामाजिक क्रांति और उसके द्वारा होने वाली जनप्रगति से मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ और मेरे हृदय में साम्यवाद की नींव पर सामाजिक व सांस्कृतिक संगठन का संकल्प घर कर गया। एबिसीनिया पर होने वाले फासिस्ट अत्याचारों तथा जापान की चीन पर चढ़ दौड़ने की धृष्टता ने मेरी कल्पना को देश के प्राचीरों से निकाल कर मनुष्य मात्र के दुःख व अभिलाषाओं में साथ देने की प्रेरणा दी। और फिर दूसरे विश्व-युद्ध के बाद मेरी मातृभूमि ने स्वतंत्र होकर अपना सिर उठाया तो मेरा भी सिर ऊँचा हुआ। इतिहास

की इन घटना-बहुल घड़ियों के कारण मृत्यु से जीवन की ओर, अन्धकार से आलोक की ओर निरंतर प्रयाण करते हुए देश के एक कोने में पैदा हो कर बढ़ने वाले एक व्यक्ति के हृदय में उठने वाली समय की, क्षीण प्रतिध्वनि मेरी कविता में पायी जाएगी।

तुच्छ पदविन्यास लिये अधीर हो कर पहले पहल जब मैंने साहित्य-संसार में पदार्पण किया तब मेरे आराध्य देव थे महाकवि वल्लत्तोल्। "साहित्यमंजरी"[1] के कल्पना-सुरभित तथा मधुर भावों से भरे गीतों ने मेरे हृदय को पहले ही मंत्र-मुग्ध कर लिया था। महाकवि उल्लूर के रचना-वैचित्र्य ने मुझे चकित कर दिया था। महाकवि कुमारन् आशान की हृदय की गहराई की भाव-व्यञ्जना करने वाली कविताओं से परमानन्द का अनुभव मुझे बाद में हुआ। वल्लत्तोल् के उपग्रह, 'नालप्पाटन्' तथा 'केशवन् नायर' बुध-शुक्र की तरह साहित्य क्षितिज पर चमक रहे थे।

मेरी कविता का रंग-प्रवेश हुआ 'वल्लतोल्' की पत्रिका 'आत्मपोषिणी' में। मेरी प्रथम रचना पढ़ कर महाकवि ने बड़े प्रेम के साथ एक पत्र लिखा और मुझसे शब्दालंकार की तड़क-भड़क से दूर रहने को कहा। मेरी दूसरी रचना पढ़ कर उन्होंने रचना तथा पदचयन सम्बन्धी कई विशेष बातें समझाईं। मेरी तीसरी रचना 'घनमेघ की पाटी पर इन्द्र धनुष की रेखा खींचनेवाली प्रकृति बाला' के सम्बन्ध में थी। उसको पढ़ कर महाकवि ने अभिनन्दन का पत्र भेजा। उससे मेरा साहस बढ़ा। किन्तु अल्प समय के अन्दर ही वल्लतोल् ने 'आत्मपोषिणी' का सम्पादन छोड़ दिया। उसके बाद कविता रचना के रहस्यों को सीखने के लिए मैं और किसी के पास नहीं जा सका। जिनका सौहार्द-सुरभित सम्पर्क मेरे साहित्य जीवन में लाभदायक हुआ है उनमें सुप्रसिद्ध समालोचक सी० एस० नायर तथा ख्यातिनामा कवि कल्लन्मारतोटि रामुण्णिमेनन् के नाम उल्लेखनीय हैं। श्री रामुण्णिमेनन् मुझे अपना भाई समझते थे। 'इन्द्रधनु' तथा 'वृन्दावन' के ऊपर मेरे गीतों की प्रशंसात्मक आलोचना करके सरदार के० एम० पणिक्कर ने मेरा उत्साह बढ़ाया था। एक बार उन्होंने 'एन्थालोजी आफ वर्ल्ड पोयट्री' आदि पुस्तकें उपहार स्वरूप भेज दी थीं। यही नहीं 'अन्वेषणम्' आदि कई एक कविताओं का अंग्रेज़ी में अनुवाद करके उन्होंने मेरा सम्मान किया। मेरे साहित्य-जीवन के प्रारंभ में ही सरदार के० एम० पणिक्कर और थोड़े समय बाद से प्रिन्सि-पल शङ्करन् नम्पियार ने मेरा जो उत्साह बढ़ाया है उसको मैं कृतज्ञता के साथ स्मरण करता हूँ।

---

१. वल्लत्तोल् का कविता-संग्रह

मेरे विचार में, मेरी प्रारम्भिक कविताओं में जीवन का सञ्चार किया है, प्रकृतिप्रेम तथा देश-भक्ति ने। प्रकृति के प्रति मेरा आकर्षण उसके साथ मेरा निकट सम्बन्ध, उसके साथ एकाकार हो जाने की अनुभूति तथा उससे प्राप्त प्रकृति के परे रहने वाली चेतना-शक्ति का आभास इन सब की पूँजी के बल पर ही साहित्य-लोक में प्रवेश करने तथा उसके एक कोने में घर करने में मैं समर्थ हुआ हूँ। 'सान्ध्य नक्षत्र' जब हँसने लगा तब मेरा हृदय भी हँस उठा था। उसी समय मुझे अनुभव हुआ कि एक ही चेतना-शक्ति हम दोनों में विद्यमान है। इस अनुभूति से मुझे जो आनन्द हुआ उसका वर्णन करने की क्षमता 'सान्ध्य-नक्षत्र' से 'अन्तर्दाह' तथा 'विश्वदर्शन' तक पहुँचने पर भी मेरी भाषा में नहीं है। तरंग-ताड़ित नदी में सम्वेदनाओं की उथल-पुथल मचाने वाले अपने हृदय का आभास देख पाना, सूर्यकान्ति के कम्पित अधरों में अपने भाव तरल अधरों को देख सकना, अरुणोदय की प्रतीक्षा में तपस्या करने वाले कमल के रूप में सत्य-सौंदर्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने वाले अपने जीवन को देख सकना—मेरे लिए परमानन्द का कारण है।

श्री ए० बालकृष्ण पिल्लै के सम्पादन में निकलने वाली 'केसरी' पत्रिका में मेरे कविता-संग्रह "सूर्यकान्ति" की समालोचना हुई थी। उस समय मैंने यह दिखाने की चेष्टा की थी कि उस समालोचना से मेरा कुछ बिगड़ा नहीं है। वास्तव में उससे मेरी कल्पना को बड़ी चोट लगी थी। रोमाण्टिक ढंग की कविताओं का सुन्दर संग्रह कहकर 'सूर्यकान्ति' की प्रशंसा करने के बाद केसरी ने 'रोमाण्टिक' कविता की खिल्ली उड़ाई थी। संक्षेप में समालोचक का कहना था कि जिस लेखनी को 'रियलिज़म' का नेतृत्व करना चाहिए वह पथ-भ्रष्ट हो कर भटक रही है। इस समालोचना से मुझे दु:ख भी हुआ, क्षोभ भी। असमंजस में पड़ कर कई दिनों तक मैं हतोत्साह भी हुआ। मेरी कविताओं की वह प्रथम प्रतिकूल समालोचना थी। इस आघात के बाद 'मेरी कविता से' नामक रचना द्वारा मैंने अपनी कविता को सान्त्वना देने की चेष्टा की। यह नहीं कह सकता उससे मेरी कविता को कोई सान्त्वना मिली। चाहे जो हो, कहानियों व उपन्यासों में पायी जाने वाली रियलिज्म कविता के लिए मुझे अच्छी नहीं जँची। प्रसंगवश, मैं यहाँ पर एक लेख का उल्लेख करना चाहता हूँ जो 'जॉन आव लण्डन' नामक साप्ताहिक में रिचर्ड चर्च ने लिखा है—'कविता व यथार्थवाद पर उस प्रसिद्ध समालोचक के विचार, हमारे यथार्थ-मार्गगामी कवियों को, ध्यान से पढ़ने चाहिए।'

उसके बाद मुझे ऐसा मालूम होने लगा कि कल्पना में जीवित रहने वाली कविता को नयी अनुभूतियों से सजा कर नये परिवेशों से प्रेरणा ले कर लावण्य व

चेतनापूर्ण रूप देना ही कवि का कर्तव्य है। इस अभिज्ञता का प्रथम निदर्शन था मेरा 'नाळे' (आगामी कल) नामक गीत। उसकी रचना शैली 'रोमाण्टिक कवि' की थी तो उसका प्रतीक प्रदान किया था प्रकृति ने। परम्परा से प्राप्त अधिकार के बल पर मनमानी करने वाले मुट्ठी-भर लोगों के आतंक से छूट कर जनता को स्वतन्त्र वातावरण में रहने का अधिकार दिलाने वाले एक 'नाळे' की परिकल्पना थी उसमें। 'केसरी' के ममत्वपूर्ण प्रहार ने मुझे दुर्वल नहीं किया, बल्कि—यद्यपि मैंने उनके कहे मार्ग का अवलम्बन नहीं किया—मुझमें आगे वढ़ने की शक्ति और और स्फूर्ति उत्पन्न की। (उस कविता का मेरी नौकरी पर जो परिणाम हुआ उसके वारे में कहने की आवश्यकता नहीं।)

उस कविता के बाद के तीन-चार वर्ष आलस्य तथा शारीरिक अस्वस्थता की पीड़ाओं में कटे। वह समय किसी प्रकार के रचनात्मक कार्य के लिए अनुकूल न था। एक एकांकी नाटक "इरुट्टिनुमुन्पु", "कालम्", "नक्षत्रगीतम्" आदि गीत तथा कई एक लेख बस ये ही सब उस समय की रचनाएँ हैं। दूसरे विश्व-युद्ध के पहले नई आकांक्षा, देश-प्रेम का आदर्श, अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण तथा मनुष्य की प्रमुखता में विश्वास ले कर जब प्रगतिशील विचार-धारा सर्वत्र फैलने लगी तब मेरी कविता भी अपनी तंन्द्रा से जाग उठी। 'निमिषम्', 'चेंकतिरुकळ्', 'सन्धा', 'मुत्तुकळ्', 'इतळुकळु' आदि मेरे कविता संग्रहों में भारत की स्वतन्त्रता के पूर्व के धूप-छाया के प्रतिबिम्व मिलेंगे। उसके बाद की अनुभूतियाँ संगृहीत हैं— 'वनगायकन्', 'पथिकन्टे पाटटु', 'अन्तर्दाहम्', 'वेळ्ळिळ् परक्कळुम्' आदि में।

कुछ लोगों का कहना है कि 'सूर्यकान्ति' के साथ मेरी कविता का विकास वन्द हो गया है तो कुछ लोग यह भी कहते हैं कि नहीं, सूर्यकान्ति के वाद मेरी कविता विकसित हुई है। किन्तु मेरे लिए मेरी सभी कविताएँ मेरे आत्म-विकास का प्रतिविम्व हैं। "सूर्यकान्ति" मेरे श्मशान का फूल नहीं, वरन् तारुण्य के शिखर पर मधुर सम्वेदनाओं से प्रेरित हो कर खिला हुआ मेरा ही हृदय है। उसके बाद मैं वहाँ से भी ऊपर उठ गया हूँ। मेरी आँखों ने नये दृश्य देखे हैं, कानों ने नई ध्वनियाँ सुनी हैं। मेरे हृदय ने अपनी व्यक्तिगत परिधि को पार कर विश्वमात्र के जन-जीवन के साथ एकाकार होने की चेष्टा की है। हो सकता है, 'सूर्यकान्ति' के वाद की मेरी कविताओं में आध्यात्मिक या लौकिक प्रेम-स्वप्नों का उन्माद छलकता हो। किन्तु मैं दावा करता हूँ कि उन कविताओं में एक अधीर हृदय का स्पन्दन है जो मनुष्य की महत्ता में गर्व करता है जिसमें सुन्दर भविष्य के स्वप्नों का उत्साह है, जो मनुष्यता का मूल्य गिरता देख कर दु:खित है और जो सौंदर्य-वोध को मनुष्य जीवन के लिए मृतसंजीवनी मंत्र समझता है।

[मूल : जी० शंकर कुरुप। हिन्दी अनुवाद—गोविन्द विद्यार्थी]

अनुक्रमणिका

ओटक्कुष़ल्

ओटक्कुषल्

लीलयिल् जीवितगीतिकळ् पाटुम् दि-
क्कालातिवर्त्ति माहात्म्यशालिन् !
आरालुमज्ञातमामेतो मण्णिल् वी-
णाराल् नशिक्कुवान् तीर्न्नोरिन्ने
निन् दयावैभवम् जंगमाजंगम-
नन्दनमामोरु वेणुवाक्कि ।
भावल्क्करवासत्ताल् चैतन्यपूर्णमेन्
जीवितनिस्सारश्शून्यनाळम् ।

मानसमादक, लोकैकगायक,
गानमायङ्ङेन्निल् वर्त्तियक्कुन्नु ।
अल्लेङ्किलिज्जडसाधनम् वल्लुमो
वल्लतुम् हृष्टमायालपिप्पान ?

तूमन्दहासत्तिन् वेण्नुर, निर्म्मल-
प्रेमप्रवाहत्तिन् मन्द्रध्वानम्,
जीवितमत्सरम् तन्नोळम् तळ्ळल्, बा-
ष्पाविलनीलनेत्रोत्पलङ्ङळ्,
दारिद्र्यक्कोटक्कार्च्चार्त्तिन् करिनिषल्,
पारिलेप्पापत्तिन्नावर्त्तनङ्ङळ्,
एन्निव चेर्न्नोलिच्चीटट्टे मेल्क्कुमे-
लेन्निलेस्संगीतकल्लोलिनि !

बाँसुरी

लीला-भाव से जीवित गीतों को गानेवाले
दिशा और काल की सीमाओं से निर्बन्ध हे महामहिमामय !
मैं जनमा था अज्ञात-अपरिचित
कहीं मिट्टी में पड़े-पड़े नष्ट हो जाने के लिए,
किन्तु तेरी वैभवशालिनी दया ने
मुझे बना दिया है बाँसुरी
चराचर को आनन्दित करनेवाली।
तूने अपनी साँस की फूँक से
उत्पन्न कर दी है प्राणों की सिहरन
इस निःसार खोखली नली में।

मन को मगन कर देनेवाले
अखिल विश्व के अनोखे गायक !
तू ही तो है जो मेरे अन्दर गीत बनकर बसा है;
अन्यथा क्या बिसात थी इस तुच्छ जड वस्तु की
किंचित् भी कर सकती राग-आलाप
इस प्रकार हर्षोल्लास से भरकर।

मन्द-हास का मनोरम नवल-धवल फेन,
प्रेम प्रवाह की कलकल मन्द्र ध्वनि,
मानव अहंकार की उद्दाम लहरों का उछाल,
अश्रुसिक्त नेत्रों के नीले कमल,
दैन्य-दारिद्र्य के वर्षाकालीन मेघों की काली छाया,
सांसारिक पापों के भँवर-जाल
—इन सब को साथ लिये-लिये बहती रहे
मेरे अन्दर की संगीत-कल्लोलिनी यह सरिता
हे प्रभु !

ओटक्कुषल्

ओटक्कुष़लितु नीटुट़्ट़ कालत्तिन्--
कूटयिल् मूकमाय् वीषाम् नाळे ;
मण्चितलायेक्का, मल्लेंकिलित्तिरि
वेण्चारम् मात्रमाय् मारिप्पोकाम् ।
नन्मयेच्चोल्लि विनिश्वसिक्काम् चिलर्;
तिन्मयेप्पटि्ट़्टये पाटू लोकम् ।
एन्नालुम् निन् कैयिलर्प्पिच्चोरेन् जन्म-
मेन्नाळुमानन्दसान्द्रम् धन्यम् !

--१९२९

हो सकता है कि कल यह वंशी,
मूक होकर काल की लम्बी कूड़ेदानी में गिर जाये
या यह दीमकों का आहार बन जाये, या यह
मात्र एक चुटकी राख के रूप में परिवर्तित हो जाये।
तब कुछ ही ऐसे होंगे जो शोक-निःश्वास लेकर
गुणों की चर्चा करेंगे ;
लेकिन लोग तो प्रायः बुराइयों के ही गीत गायेंगे।
जो भी हो, मेरा जीवन तो तेरे हाथों समर्पित होकर
सदा के लिए आनन्द-लहरियों में तरंगित हो गया,
धन्य हो गया !

—१९२९

अम्मयेविटे ?

"एविटेये विटेयम्म, यच्छनेन्तो
कविळ् कषुकुन्नितु कण्णुनीरिनाले ?"
पवियुमलियुमार्‌लम् वितुम्पुम्
पविषनिर्‌च्चोटिपूण्ट पैतल् चोल्वू।

चरमजलधितन् करय्क्कु पोकान्
परमरसत्तोटु पूषियार्त्त सूर्यन्
विरवोटमलसन्ध्यतन्टे चेतो-
हरवसनत्ते वलिच्चिषच्चु निल्पू।

पकलरुतियिलम्बरालयत्तिन्
मुकळ्निलयिकलणञ्ञ कोच्चु तारम्
अकमुपरि विळर्त्तुनिल्क्कयल्ली
स्वकजनयित्रियेयङ्ङु कण्टिटाते।

प्रणयविवशयायेटुक्कुवाना
क्षणद, शशांककुमारनोटुकूटि
अणयवेयुरुळुन्नु सागरम् वेण्
मणलोळि मेत्तयिलात्तकौतुकत्ताल्।

माँ कहाँ है ?

"कहाँ है, कहाँ है माँ ?
पिताजी, आपकी आँखों से
क्यों बहे जा रही है आँसुओं की धार,
क्यों आप गालों को धो रहे हैं बार-बार ?"
—पूछ रहा है मुन्ना, इस तरह रो-रोकर
कि वज्र भी पिघल जाये !
लाल प्रवाल जैसे उसके होंठ प्रश्नाकुल हैं।

अस्त सागर के छोर पर पहुँचने के लिए
अत्यन्त उल्लास-विकल सूर्य-शिशु
आह्लाद की किलकारियाँ भरता हुआ
निर्मल सन्ध्या के मनोरम आँचल को
बारबार घसीटे जा रहा है।

दिनान्त हो गया है,
एक छोटा सितारा अम्बर की ऊपरी मंज़िल पर
खड़ा है अत्यन्त विपन्न और पीत-वर्ण
क्योंकि नहीं दिखाई दे रही है कहीं भी उसे
अपनी माँ, रात्रि।

वात्सल्य से विकल होकर गोद में उठा लेने के लिए
जब आती है रात्रि बालचन्द्र के साथ
तो सागर आनन्द-विह्वल होकर
लोट-पोट हो जाता है
सिकताओं की प्रभापूर्ण शैया पर !

कर कटलिविटत्तिलोक्केयुम् दुर्-
भरकदनत्तोटु तायर्येस्सदापि
तिरवोरु चेरुकाट्टु हा ! निराशा-
परवशनाय् करयुन्नु दीनदीनम् ।
एविटेयेविटेयम्म ?–तंकमे, नी
कवियुवोराटलिनाल् विळिच्च देवि
दिवि मरुवुकयाणुड्डुक्कळेत्त-
न्नविरतलाळनयालनुग्रहिप्पान् ।

—१९२४

भूमि और सागर के इन सभी प्रदेशों में
सदा ही माँ को खोजनेवाला बाल-पवन
निराशा से पराभूत और नितान्त दीन
बिलख-बिलखकर रो रहा है
"कहाँ है, कहाँ है माँ ?"
प्यारे मुन्ने !
तूने शोकाकुल होकर जिस देवी को पुकारा है
वह तो स्वर्ग में निवास कर रही है,
देख तो, वहाँ उसे कितने सारे नक्षत्रों को
निरन्तर पालना-पोसना है, अपना प्यार देना है !

—१९२४

पुष्पगीतम् : १

१

श्यामसुन्दरमायि
राजियक्कुमनाद्यन्त–
व्योममे, विश्वव्यापि–
याय निन् हृदयान्तम्
प्रेमशीतळमायि–
त्तुळिक्कुम् मञ्ञान् तुळ्ळि
कोळमयिर्, कोण्टेट्ट्टट्टु
पूर्णकाममिप्पुष्पम् ।
सागरम् निरय्क्कुन्न
कैयिनिल्लल्लो पञ्ञम्
वेगमीयळुक्किनुम्
वेणुन्न निर्वेकान् !
पेलवम् दलपुटम्
भगवन्, भवद्दया–
लोलशीकरम् ताङ्ङ–
ल्लामोदभारानम्रम् ।

नीयारालेटुत्तालु–
मी त्तुळ्ळि तेजोराशे,
पोयालो वेरुम् मण्णि–
लेङ्ङानुम् दौर्बल्यत्ताल् ?
तावकांगश्री पच्च
पिटिप्पिच्चोरिक्कुन्निन्–
ताष्वारप्रदेशत्तिल्
स्वातन्त्र्यम् तानाजन्मम्

पुष्पगीत : एक

१

श्याम सुन्दर,
अनादि अनन्त,
हे आकाश !
तेरे विश्वव्यापी हृदय में से चू पड़ी है
स्नेह की एक शीतल ओस-बूंद
जिसने बना दिया है मुझ पुष्प को
पुलकित और पूर्ण-काम !

जो हाथ सागर को भरते हैं
वे भला इस तुच्छ सीपी को
नितान्त भरा-पूरा बनाने में
क्यों कोई अभाव अनुभव करेंगे ?

किन्तु, मेरा यह मृदुल दल-सम्पुट
तेरे दिये गन्ध आमोद के भार से
पहले से ही विनत है,
फिर, भगवन् ! आपकी कृपा का यह चंचल-शीकर
मैं किस प्रकार वहन करूँ ?

समेट लो इस बूँद को दया करके
हे तेजोराशि !
यह कहीं गिर न जाये सूखी धरती पर
मेरे दौर्बल्य के कारण ।
अपनी अंग-श्री द्वारा तूने
हरा-भरा बनाया है इस टीले की तराई को,
मैंने यहाँ जीवन-भर लूटा है स्वातन्त्र्य-सुख

नुकर्न्नु नुकर्न्नात्त–
कौतुकम् विटरुवा–
नुणर्वेकुकमूलम्
धन्यधन्यमाय्त्तीर्न्नेन् !

२

मन्दारम् तळिर्च्चेम्पोन्–
नीराळक्कुट चार्त्तुम्
वृन्दारकारामत्तिल्,
रत्नशैलोपान्तत्तिल्,
विरिवानाशिक्कुन्नी–
लत्युग्रमाकुम् वेय्लिल्
पोरियुम पुल्क्कूम्पुकळ्–
क्कामोदमेकावू ञान् !

मामकस्वातन्त्र्यत्तिन्
स्वच्छमाम् मुखम् स्वर्ग–
मामरनिष्ल्मूल
माविलमाविल्लल्ली ?
पारतन्त्र्यत्तिन् रत्न–
मेटयेक्काळुम् सौख्यो–
दारमे स्वातन्त्र्यत्तिन्
पुल्लणिच्चेळिमाटम् !
भयमाणेनिक्कल्प–
कल्पवृक्षकच्छाय
प्रियदर्शनमाय
निन्मुखम् मरच्चालो ?
कोमळ, निन्नंगत्तिन्
नीलिम मायिल्लल्ली
हेमशैलत्तिन् पीत–
कान्तितन् तिरत्तल्लाल् ?

तेरी प्रेरणा से मैंने सदा ही भोगा है विकास का उल्लास
तूने मुझे बनाया है नितान्त धन्य !

२

जो पहनते हैं
मन्दार वृक्षों के पल्लवों का
स्वर्णजटित रेशमी छत्र—
उन देवताओं के उद्यान में,
रत्न-शैल के प्रान्तर प्रदेश में,
नहीं खिलना चाहता हूँ मैं !
मैं चाहता हूँ खिलना
उस भूमि में जहाँ
तेज़ गर्मी की आँच से झुलस गयी है
दूब, सिर धुन रहे हैं सूखी घास के झुण्ड !

मेरी स्वतन्त्रता के स्वच्छ मुख पर
स्वर्ग के उन महान् पेड़ों की छाया की कालिमा न पड़े,
यही है मेरी प्रार्थना !

परतन्त्रता के रत्नों से जगमगाते महल की अपेक्षा
मेरे लिए सुखकर और सन्तोषदायिनी है
स्वतन्त्रता की घास में उगी-बनी
मेरी छोटी-सी मलिन झोंपड़ी !
मुझे डर है कहीं इन कल्पवृक्षों की
छिछोरी छाया
तुम्हारे प्रियदर्शी मुख को
मेरी आँखों से ओझल न कर दे !
कहीं ऐसा तो नहीं कि
स्वर्ण शैलों की पीली कान्ति की झिलमिलाहट में
तुम्हारे कोमल अंगों की नाजुक नीलिमा तिरोहित हो जाये ?

मंगलम् भवन्मौन–
  गानत्ते लोभोल्भ्रान्त–
भृंगत्तिन् मुखस्तुति
  विस्मरिप्पिक्किल्लल्ली ?

३

आ रत्नाचलत्तेक्काळ्
  पोङ्ङनिन्नीटुम् काल्य–
तारत्तेप्पोलिक्कुञ्ञि–
  क्काट्टुपूवित्तेक्कूटि
नित्यवुम् समुल्फुल्ल–
  सौभगमाक्कुन्नू नी ;
स्तुत्यमे भवदीय–
  मेकभावनावत्वम् !

शोणजिह्वयालत्यु–
  ग्रान्धकारौघम् लोक–
त्राणार्थम् नक्कित्तिन्नु
  तिन्नङ्ङुन्नोटुक्कुम्पोळ्,
कुट्टिक्काट्ट्टुत्तेत्ति–
  क्कुलुक्कि विळिक्कवे,
ञेट्टि ञानुणर्न्नेन्नु–
  मत्भुतस्तिमितमाय्

निन्नावू नवीनमाम्
  चैतन्यम् वहिक्कुन्न
मन्नाळुमानन्दत्तिल्–
  प्पंकुकोण्टनन्याशम् !
सौरभम् परक्काते
  सादरस्नेहोदार–
पौरलोलचनातिथ्य–
  भाग्यवुम् भवियक्काते,

कहीं ऐसा तो नहीं कि
भौंरों की लोभग्रस्त चाटुकारिता के गीतों की गुनगुनाहट में
मैं तुम्हारे मंगलमय मौन-गान को
भुला बैठूं ?

३

ऊँचा है रत्नगिरि का शिखर,
उससे ऊँचे जगमगाता है भोर का तारा।
प्रभात के उस तारे की तरह ही इस वनपुष्प को भी
सदा सुन्दर और समुत्फुल्ल बनाते हो तुम,
धन्य है तुम्हारी समदर्शिता !

जब अपनी लाल-शोणित जिह्वा से चाट-चाटकर
घने अन्धकार को भी तुम लील जाते हो
ताकि संसार का परित्राण हो तमान्धकार से
तो बाल-पवन पास आकर मुझे झकझोरता है,
मैं चौंककर एक अनोखे विस्मय के साथ जाग जाता हूँ।

मेरी कामना है, मैं खड़ा होऊँ
नव-चेतना से भरी इस भूमि के आनन्द में
मात्र सहभागी बनने के लिए, बिना किसी अन्य आशा के।
भले ही न फैले मेरी सुरभि,
न हो मेरे भाग्य में नागरिकों की दृष्टि का आतिथ्य—
स्नेहसिक्त, आदर-भरा !

ई विनीतमाम् लज्जा–
धीरकाननपुष्पम्
ताविटुम् निन् लावण्यम्
तान् नुकर्न्नेन्नुम् पुण्यम्
मातृभूमितन् शुद्ध––
प्रेमतुन्दिलमाय
मारि़टत्तिङ्कल्त्तन्ने
मालकन्नुतिर्न्नावु !

—१९२६

मैं विनम्र और लज्जाशील
कानन-पुष्प
सदा तुम्हारे पावन प्रवर्द्धित लावण्य को भरपूर भोगते हुए,
प्रेम प्रमुदित और निःशोक झर जाऊँ
मातृभूमि के पवित्र वक्ष पर—
यही है मेरी कामना !

—१९२६

पुष्पगीतम् : २

१

शाश्वतजगल्प्राण,
शान्तनिश्चलमायि
विश्वपूर्णनेन्नालु
मर्धरात्रियिल् निल्क्के,
रूपहीननाम् नीयि—
ल्लेन्नु चिन्तिच्चेनान्ध्य—
चापलम् पोऱ्‌त्तालुम् !
आनन्नम् वनपुष्पम् ।

त्वल्पदार्च्चनय्क्काये—
न्नितळोन्नुतिर्न्नी, ले—
न्नल्पमाम् परिमळम्
निनक्कार्प्पिच्चील ;
चेणुट्‌ट् निन्मार्‌त्तु
लेपनम् चेय्तिल्लात्म—
रेणुवाल्, स्वयम् पुणर्—
न्नङ्ङु निश्शब्दम् निल्क्के ।

अल्लेंकिल् परिमाण—
हीननायनादिया—
युल्लसिच्चीटुम् लोका—
लम्बमाम् पवमान,
तारिनेन्तरियाम् हा !
तव मेन्मयेप्पट्‌ट्
वारिधि वेरुम् मुत्तु—
चिप्पियालळक्कामो ?

पुष्पगीत : दो

१

हे शाश्वत, जगत्प्राण !
जब तुम शान्त निश्चल होकर
खड़े थे आधी रात में, और
यद्यपि थे विश्व-भर में व्याप्त
मैंने समझा यही कि तुम रूपहीन का
अस्तित्व ही नहीं है।
क्षमा करो इस अन्ध चपलता को
मैं अज्ञ वन-पुष्प ही तो ठहरा !

हाय तुम्हारे चरणों की अर्चना के लिए
मेरी एक पंखुरी तक न झरी,
मेरा जो स्वल्प परिमल है
वह भी मैंने समर्पित नहीं किया।
मैंने नहीं किया अपने पराग का आलेपन
तुम्हारे सुन्दर वक्ष पर—
जब तुम स्वयं खड़े थे निःशब्द
मुझे स्नेह-पूर्वक वक्ष से चिपटाये हुए।

किन्तु
हे अनादि,
लोकालम्बन परिणामहीन पवमान !
यह क्षुद्र पुष्प क्या जानता है
तुम्हारी महिमा ?
क्या सीपी नाप सकती है
महासागर को ?

अल्लिलुम् मार्ग्गम् काट्टुम्
दिव्योडुक्कळ्तन् मौन—
च्चोल्लिलेप्पोरुळोन्नुम्
चिन्तनम् चेय्तीटाते ।
क्षुद्रमिप्पुष्पम् भव—
त्सान्निध्यम् मरन्नेवम्
निद्रचेय्तुपोयल्लो
तेनिनाल् तर्प्पिक्काते !

२

विस्मरिच्चीटोल्लेन्नाल्
ञङ्ङळेन्नोर्त्तिङ्ङुन्नु
विस्मयावहम् भावम्
मारियत्युच्चारवम् ।
मारिमेघमाम् जटा-
मण्डलमिळकियुम्
पारिटम् नटुङ्ङीटुम्—
पाटिटय्क्कलरियुम्
वानिनेत्तिळक्कुन्न
वाळिटयिक्कटय्क्कूरि
नीनिन्नु नृत्तम् चेय्तु
नीळेयत्युग्राकारम् ।
नेरकन्नेषुम् भवल्—
क्कोपत्तिन्निरयायि
घोरमामिटित्तीयु
वीणोरिग्गिरिप्रान्तम्,
दग्धमाकवे कण्णु
पोत्तिमेय् विरय्कुन्न
मुग्धतारकवृन्दम्,
कटल् चेयिततात्रन्दम्

नहीं चिन्तन किया कभी
उन तारों के मौन गीत-तत्त्वों का
जो दिखाते हैं रास्ता रात में भी,
नहीं किया तर्पण तुम्हारा कभी
अपने अन्तरंग के मधु से,
तुम्हारे सान्निध्य को भी भूलकर
हो गया था निद्रा-निलीन
यह क्षुद्र वन-पुष्प !

२

शायद ऐसा सोचकर कि
हम तुम्हें भूल न जायें
अत्युग्र घोष के साथ
विस्मयकारी ढंग से रूप बदलकर
वर्षा-मेघों का जटा-जूट प्रकम्पित कर
अपने गर्जन-तर्जन से
बार-बार समूचे संसार को चौंकाते हुए,
बीच-बीच में
खींच लेते हो तुम अपनी नंगी तलवार
जो आकाश को दमका देती है,
भयानक रौद्र रूप धारण कर
रच डाला है सब कहीं ताण्डव नृत्य तुमने।
तुम्हारे इस कृत्रिम क्रोध के कारण
जहाँ गाज गिरी
वहीं गिरिप्रान्त दग्ध हो गया,
भय-विकम्पित मुग्ध तारकों ने
आँखें मूँद लीं,
समुद्र ने करुण स्वर में रुदन किया।

फलसम्पत्तेल्लामे

पोकवे कण्णीर् तूकि

दलरूपमाम् भीति—

वेपितम् वृक्षव्रातम ।

शोकङ्ङलाचार्यन्मार्,

जीवाधारमामङ्ङु

लोकव्यापियाणेन्नु

ञङ्ङळ्क्कु बोधप्पेट्टु ।

भगवन, परिभ्रान्त-

सागरान्तरत्तिलु

मगसंकुलोत्तुंग—

कुल पर्वतत्तिलुम्

दुरतिक्रमम् भवल्—

प्राभवम् वाषि्त्तप्पाटुम्

स्वरमुच्चत्तिलक्केळ्क्काय् !

वेन्नु नी विश्वात्मावे !

३

शान्तमाय् भवल्क्कोप,

मन्धकारम् पोय्, पूर्वा–

शान्तमुज्वलमायि–

त्तीर्न्नितन्नेरम् वीण्टुम् ।

दीनमाम् कटलात्म

शक्ति पिन्नेयुम् नेटि

यानन्दलास्यम् चेय्तु,

कुन्नु कोळ्मयिक्कोण्टु ।

सौम्य, कालिम माञ्ञ

विण्मुखत्तिङ्कल्क्काणाय्

रम्ययाम् शुचिस्मितम्

निन्टे कारुण्यत्ताले ।

जब फल सम्पदाएँ सारी नष्ट हो गयीं
तो भय-कम्पित पादपों ने
पात-पात आँसू बहा दिये।
दुःख ही तो है असली आचार्य!
तब हमें अनुभव हो गया कि
आप जो जीवों के आधार हैं
वास्तव में विश्वव्यापी हैं।

तब परिभ्रान्त सागरान्तर में
अगम संकुल उत्तुंग कुल-पर्वत में
तुम्हारे दुरतिक्रम प्रभाव का स्तुतिगीत
सुनाई पड़ा उच्च स्वर में—
हे विश्वात्मन्
जय हो तुम्हारी!

३

उपशम हो गया तुम्हारा क्रोध,
मिट गया सारा अन्धकार,
प्रदीप्त हुआ फिर से
पूर्व दिशा का छोर।
पुनः प्राप्त कर अपनी आत्म-शक्ति
आनन्द लास्य करने लगा सागर,
पुलकित हो उठा पर्वत!

हे सौम्य!
मिटने लगी कालिमा
दिग्दिगन्त के मुख पर से,
चमक उठी स्मित-रेखा
तुम्हारी करुणा की कोर से
विमल, रम्य।

ओन्नु वाष्त्तुवान मूक—
माकिलुमनङ्ङ्न्नो—
रेन्नितळ्च्चुण्टत्तात्त-
वात्सल्यम् नी चुम्बिच्चु ।
मृदुहस्तत्ताल् प्रेम—
व्याकुलम् वीण्टुम् वीण्टुम्
त्वदुरस्तटत्तिली—
क्काट्टुपूविनेच्चेर्त्तु !
सारहीनमेन्नालु—
मेन्टे जीवितम् पुण्यो-
दारत्तावकस्पर्शम्
परिपावनमाक्कि ।

इळकुन्नतुम्कूटि
निन्हितत्तालल्लो, ञ्ञा—
निळयिल्प्पतिच्चिनि—
प्पोटियाय्प्पोकुम् मुम्पे,
मल्परागम् कोण्टङ्ङ—
य्क्कंगलेपनम् चेय्तु—
मल्पमाम् सुगन्धत्ता—
लामोदम् जनिप्पिच्चुम्
चरितार्थमाय्त्तीर्न्नु
पिन्नयुम् भवदेक—
परितोषार्थम् वल्ल
काट्टिलुम् विरिञ्ञाव् !

—१९२६

मेरे मूक अधर कम्पित होने लगे
तुम्हारी स्तुति के लिए
अत्यन्त वात्सल्य से पूरित
आँक दिया तुमने अपना चुम्बन
उन पर।
प्रेमाकुल होकर
तुमने अपने कोमल हाथों से
इस पुष्प को उठाया, और
बारम्बार अपनी छाती से लगाया।
यद्यपि सारहीन है मेरा जीवन
तथापि हे पुण्योदार,
तुम्हारे स्पर्शों ने इसे बना दिया नित्यपूत।

मेरा प्रत्येक कम्पन है
तुम्हारी इच्छा पर आधारित ;
यही है मेरी कामना कि
इस मिट्टी में मिट्टी बन जाने से पहले
अपने पराग से
कर सकूँ तुम्हारा अंग-लेपन,
यह मेरा अत्यल्प सौरभ
यदि तुम्हें आमोदित कर सके
तो हो जाऊँ मैं कृतार्थ,
मैं फिर भी खिलूँ किसी जंगल में
तुम्हारे ही परितोष के लिए
—यही है मेरी कामना !

—१९२६

सान्ध्यतारम्

आरु नीयानन्दकन्दमे ! लोकत्तिन्
चारुत चार्त्तिन पोट्टुपोले,
वारुणदिक्किन्टे कर्णावतंसमाम्
वारुट्ट वाटामलरुपोले,
नीलिमापूर्णमामाकाशतीर्थत्तिल्-
च्चेलिलिरङ्ङि वणङ्ङिप्पोके,
क्षीणयाम् वासरश्रीयरियातूर्न्नु--
वीणताम् रत्नांगुलीयम्पोले !

वेल वेटिञ्ञुम् पोटिञ्ञ वियर्प्पाला-
लोलनरुमुत्तणिञ्ञुम् लोकम्
आनन्दनामकमादकमासवम्
पानम् कषिच्चतिमत्तमायि,
लाळनीयाकृते, नोक्कुन्नु विश्राम--
वेलयक्ककम्पटि निल्कुम् निन्ने !

नाणम् कुणुङ्ङुन्न सुन्दरितन्नल्प-
शोणमधुराम् तूनेट्टिट्टमेल्
स्वेदकणिकयिल् तङ्ङातेयत्भुतो--
न्मादम् कविञ्ञेषुम् कामुकाक्षि
पाटलपाश्चिमदिक्कु विळिक्कुम् नि-
न्नोटणयुन्नितुल्फुल्लमायि ।

सन्ध्या-तारा

हे आनन्दकन्द !
बताओ तो, तुम कौन हो—
विश्व-सौन्दर्य के ललाट पर अंकित विन्दी के समान,
वारुणी दिशा के कानों पर अलंकृत
अम्लान् मनोहर कर्णफूल के समान,
नीलाकाश के तीर्थ में प्रवेश कर
अर्चना कर के लौटती हुई श्रान्त
दिनान्त लक्ष्मी के अंगुलि-पोर से स्खलित
रत्न-मुद्रिका के समान ?

हे प्रियदर्शिनी,
तुम हो विश्राम की घड़ियों की अग्रदूतिका,
काम-धन्धा सब छोड़कर
श्रम-स्वेद का तरल मुक्ताहार पहनकर
आनन्द की मादक मदिरा पिये,
निहारता है यह उन्मत्त संसार
तुम्हारी ओर एकटक !

पाटल-प्रभ पश्चिमी दिशा को
कान्तिमान करनेवाली
अगाध विस्मय के उन्माद से मत्त प्रेमी की आँखें
तुम्हारा ही पीछा कर रही हैं,
नहीं निहारती हैं वे
लजीली प्रिया के ईषद् आरक्त
सुन्दर ललाट पर झलकनेवाली
स्वेद-कणिकाओं को ।

उत्सवदायिकयाकुम् युवजन-
वत्सलरात्रियोत्तेत्तुम् निन्ने,
मुग्धनीलाळकम् मेल्लेयोतुक्कियुम्
स्निग्धनिविडमिमनन्ञ्जुम्
हर्षविकसितनेत्रत्तालुन्मुख--
कर्षकबालिकयादरिप्पू !

ओमनप्पैतलिन् चेम्पविषप्पोळि--
क्कोमळच्चुण्टिले वेण्निलविल्
अञ्जनक्कण्मुन चेल्वीलत्यद्भुत--
पुञ्जमे, नीयन्तिच्चोप्पिल् निल्क्के !

निन्मुखदर्शनत्ताले मति मर-
न्नुन्मुखनायप्पोकुमाट्टिटयन्,
ईणत्तिल्मूळुमाग्गानत्ताल् ग्रामत्तिन्--
प्राणन्नु कोरित्तरिप्पेकुन्नु !

पारमषञ्जु कणङ्कषल् मूटुम् पोन्-
नीराळम् चार्त्तिय सन्ध्यालक्ष्मि
चन्तम् वळर्न्न निन् नेर्क्कतिपेलवम्
चेन्तळिरंगुलि नीट्टिनिल्प्पू ;
वाट्टमो तोट्टाकिलेन्न भयत्तालो
वाय्क्कुन्न संभ्रमाल् कै वलिप्पू ?

तरुणों की प्यारी
उत्सव का रंग बाँधनेवाली रजनी के साथ-साथ
आती हो तुम
अपने नीले-नीले अलकों को हाथों से सँवार,
गर्दन ऊँची कर,
गीली घनी नीलम पलकोंवाली
आनन्द-विस्मित आँखों से
तुम्हें देखती है कृषक-बाला,
करती है तुम्हारा स्वागत।

हे विस्मय पुंजिके!
जब तुम खड़ी होती हो सन्ध्या की अरुणिमा में
तब माता के अञ्जन-रञ्जित नयनों की कोर
नहीं जाती है अपने प्यारे शिशु के
विद्रुम अधरों पर चमकनेवाली
चाँदनी की ओर!

देखते ही तुम्हारा मुख
उन्मुख हो चलता है चरवाहा
बिसार कर सुध-बुध
छड़ता है मधुर तान
पुलकित करता है गाँव का मन-प्राण!

एड़ी तक पहने
नीले-ढीले सुनहले पटम्बर से
सुशोभित सन्ध्या
बढ़ा रही है
तुम्हारी ओर
कोंपलों की मृदुल लाल उँगलियाँ,
किन्तु सिकोड़ लेती है
अपना हाथ डर से
कुम्हला न जाओ कहीं।

२

आरु नीयानन्दकन्दमे ! शान्तितन्
चारुस्मितत्तिन्ट् विन्दुपोले,
पल्लवितमाय लोकसमाधान—
मुल्लतन्नाद्यत्ते मोट्टुपोले,
प्रेमपरिमळम् वीशान् तुरन्नोरु
हेममयमाय् चेप्पुपोले !

उच्चयिक्कु तीवारि वर्षिच्चु वर्त्तिच्चो—
रुच्चाण्डवासरम् वार्धकत्तिल्,
पावनदर्शन, निन्ननघोदार—
पादरजस्सु शिरस्सिलेल्क्के,
भूवलयत्तिने रागसुलळित—
भावम् कलर्न्नु तटवुकयाय् !
चेम्पट्टु नल्कुन्नु वृक्षलतादिक्कु,
पोन्पोटि सागरवीचिकळ्क्कुम् ।
तारकङ्ङळ्क्कु पकुत्तु कोटुक्कुन्नु
सारसुषममामात्मराज्यम् !

वेन्तकम् नीरिटामाननम् वाटिटा—
मन्तिमलरिप्पूवेन्नाकिलुम्,
पाटे मरन्नुम् चिरिच्चुम् पकलिन्टे
पादत्तिल् चेय्वू सुगन्धलेपम् ।
सौम्य, निन्, संगमम्मूलम् परिणाम—
रम्यमी ग्रीष्मदिनत्तिन् जन्मम् !

२

हे आनन्दकन्द,
बताओ तुम कौन हो—
शान्ति के मन्द हास की कणिका के समान,
विश्वशान्ति की पल्लवित कुन्दलतिका की
प्रथम कलिका के समान,
प्रेम का सौरभ प्रसारित करने के लिए
खुले हुए स्वर्ण सम्पुट के समान !

यह प्रचण्ड तप्त-वासर जो मध्यान्ह में
बरसा रहा था अंगार,
अब ढलती आयु में मस्तक पर चढ़ा रहा है
तुम्हारे अमल उदार चरणों की रज,
सहला रहा है भूमण्डल को
सुराग-ललित दुलार से,
दे रहा है पेड़ों और लताओं को
लालिम पटम्बर,
प्रदान करता है सागर-वीचियों को
स्वर्ण कणिकाएँ,
बाँटता जा रहा है तारक मण्डल को
अपनी सुषमा का साम्राज्य !

यद्यपि दुखता है मन,
परिशुष्क होता है आनन,
तथापि
यह सान्ध्य-मल्लिका-सुमन
भूलकर सारे सन्ताप
कर रही है दिवस के पैरों पर परिमल लेपन
प्रसन्न-वदन ।
हे सौम्य,
परिणाम-रम्य है तुम्हारी संगति से
ग्रीष्म दिवस का जन्म ।

३

आरु नीयानन्दकन्दमे, दैवत्तिन्
कारुण्यत्तिन्टे कणिकपोले,
ध्यानसमयमायेन्नरियिक्कुवान्
वानिन्टेयुम्मर्त्तिण्णयिन्मेल्
मेत्तिन सौन्दर्य तैलम् पकर्न्नारो
कत्तिच्च पोन्निन् विळक्कुपोले,
लोकतत्वङ्ङळेयेल्लामोतुक्कुन्नो—
रेक कनकलिपियेप्पोले !

ईयक्षरत्तिन् वेळिच्चत्तिलुल्बुद्ध—
मायिट्टुमन्तरात्मावु पोङ्ङिङ,
पारिन् निषलुकळ् विट्टकन्नङ्ङने
पार्क्कुन्न पोत्तिने विस्मरिच्चुम्
भावन मन्दम् विरुत्तिप्परक्कुन्नु
पावनमेतो नभस्थलत्तिल् !
केवलनिर्वृतितन् नवलेपमेन्—
जीवनिल्प्पूशुम् नभस्थलत्तिल् !

क्लेशत्तिन् जीर्णमाम् वस्त्रम् वलिच्चेरि—
ञ्ञाशयम् पीयूषमग्नमायुम्,
अंगम् तरिच्चपोल् मेवुन्नू लोकम् ; नी
मंगलात्मावे, मरञ्जीटोल्ले !
निन्निलुमेन्निलुम् द्योतियक्कुम् ज्योतिस्सु—
मोन्निन् पोरितन्नेयायिरियक्काम् ।
मूलमेन्तल्लेङ्किल् नीयुज्वलियक्कुम्पोळ्
मालकन्नेन्नात्मावुल्लसिप्पान ?

३

बताओ तो हे आनन्दकन्द
कौन हो तुम दृश्यमान
प्रभु की कारुण्य-कणिका के समान—
उस स्वर्णिम दीपक के समान—
उजाला है जिसे किन्हीं अज्ञात हाथों ने
आकाश की वेदिका में दुर्लभ कान्ति-तैल भरकर
इसलिए कि
उद्भासित हो जाये ध्यानमग्न होने का मुहूर्त।

इस प्रणवाक्षर की दीप्ति में उद्बुद्ध होकर
ऊपर को उठती है मेरी आत्मा
छोड़कर संसार की परछाइयों को
भूलकर अपने नीड को
धीरे-धीरे फैलाकर भावनाओं को
किसी अज्ञात दिव्याकाश में
कर रही है विहार उस नीलाम्बर में
जो लाता है मेरे प्राणों में निर्वृति का लय।

संसार अपने क्लेशों का जीर्ण वसन
उतार फेंक रहा है,
हो गया है उसका अन्तरंग
अमृत-स्रोत से प्लावित,
खड़ा है आनन्द से स्तब्ध ;
हे आनन्द-ज्योति,
न हो जा अदृश्य,
मेरे और तुम्हारे भीतर
प्रोज्वलित है एक ही ज्योति का स्फुलिंग ;
अन्यथा कैसे था यह सम्भव
कि जब तुम होती हो द्युतिमान
चमक उठता है मेरा मन दुःख-मुक्त !

ओट्टुम निरमट्टुम् पाष् पोटि पटि्टयुम्
केट्टुम् किटक्कुम् मनुष्यात्माविल्
ओन्नु मुकर्न्नावू निन्कुळिर्च्चुण्टिना,
लोन्नु पकर्न्नावु निन्सौभाग्यम् ।

—१९२७

चूम लो अपने शीतल अधरों से
मानव की आत्मा
जो मलिन-धूसरित पड़ी है;
भर दो उसमें
अपनी ही कान्ति की दमक।

—१९२७

पिन्नत्ते वसन्तम्

१

मधुमासत्तिन्टे विजयकाहळम्
मधुरकण्ठत्ताल् मुषक्कुम् कोकिलम्
विळम्बरम् चेय्वू :—"विळम्बमेन्त्येया—
गळम् स्वजीवितमधु नुकरुविन् !
समयपीयूषमोषुकुन्नू तृष्णा—
शमम् वरुत्तुवान् कषियिल्ला पिन्ने ।
चिरियुम् कण्णीरुम् कलर्त्तिय कुष—
ल्परिय जीवितममूल्यमाकिलुम्
क्षणिकमल्लयो वेयिलेट्ट् हिम—
कणिकपोलतु ; कळकयो वृथा ?"

अषकेषुम चित्रशलभङ्ङळ् निर—
मषविल्लिन् पोटि वितरियपोले
पिटञ्ञणयुन्नू पिकगीति केट्टु
विटर्न्न काननमलरिनु चुट्टुम् ।
मदकरमधु नुकर्न्नु मेल्क्कुमे—
लुदयभानुविन् मयूखमुज्वलम्
चोकचोकेयाय मुखत्तिनाल् वानि—
नकमुरङ्ङुन्न कृशाभ्रमालये
उटनुटन् मुकर्न्निळम् कविळ्त्तटम्
तुट्टुतुटुयाक्किप्पुणर्न्नुणर्त्तुन्नु ।

बाद का बसन्त

१

अपने मधुर कण्ठ से
मधुमास की विजय-तुरही बजानेवाली कोयल
घोषणा कर रही है :
"पान करो अपने जीवन का मधु
अविलम्ब, आकण्ठ,
बहता जा रहा है समय-रूपी पीयूष
सम्भव है तृषा-शमन का अवसर तुम्हें फिर न मिले ।
यह प्यारा जीवन—
अश्रु-हास्य का रसायन,
अमूल्य होने पर भी क्षणिक है—
जैसे धूप में नन्ही-सी हिम-कणिका—
क्यों खोते हो इसको व्यर्थ ?"

प्यारी-प्यारी तितलियाँ
सतरंगी इन्द्रधनुष की फुहार-सी
भावातुर होकर मण्डरा रही हैं
कानन-कलिकाओं के चारों ओर,
खोल दी हैं आँखें जिन्होंने
कोयल की कूक सुनकर ।
उदयारुण का उज्ज्वल मयूख
है आरक्त आनन
मानो पी है मदिरा वारम्वार,
करता है आलिंगन
आसमान पर सोयी कृश मेघमाला का
जगाता है उसे चुम्बनों से ऐसे
कि हो जाते हैं मृदुल कपोल लाल ।

अरुणमाम् गण्डम विकसिच्चु निल्क्कुम्
पुरुसुषमयीप्पुतुपनीरलर्,
निरुपमलज्जानिरुद्धमाकया—
लोरु मोषि चोल्वानशक्तमाकिलुम्
सुरभिलदीर्घश्वसितमोटिळम्—
मरुत्तु पोकवे तटवानायुन्नु।
सुलळितस्मितवदनयाय् निल्क्कु—
मलघुसौभगम् कलर्न्न मुल्लये
अतिकुतुकत्ताल् तरळमाय् नोक्कि
मतिमरन्नेषुमहर्म्मुखतारम्
पकल् तुटुमिषि तुरन्नतुम् कूट्ट—
रकन्नुपोयतुमरिञ्ञतेयिल्ल!

२

मरिञ्च रात्रितन् स्मरणकारणम्
चिरिक्कुवान्कूटि मरन्न सोमनो
निरम् पकर्न्नु मेय् मेलिञ्ञुमक्कण्णीर्—
क्करयार्न्नुम् पोयानपरदिक्किनाय्।
ओरिटत्तु सुखम् कतिरिटुन्नेर—
मोरिटत्तु दुःखमतिने नुळ्ळुन्नु!
मुखम् चुवक्कोळम् तळिरिनु दिव्य—
सुखमयमद्यम् वसन्तमेकवे,
भरितनैराश्यम् ञरङ्ङुन्नू चिल
करियिल निलत्ततिपरुषमाय्!

मम मिषिकळ्क्कु महमायूषिक्कु
महस्सुकूटिय मनोहरोषस्साय्
मरुविय पुण्यमटिपरिकयाल्
मरुवाय्त्तीर्न्नल्लो मदीय जीवितम्।

यह नवल पाटल सुन्दरी
अरुण और द्युतिमय हैं गाल जिसके,
बोल ही नहीं पाती है लज्जा-निमग्न कुछ भी ;
किन्तु जब प्रयाणोन्मुख होता है तरुण पवन
तब रोकना चाहती है बाट उसकी
अपने सुललित निश्वासों से ।
यह भाव-तरल प्रभात का तारा
भूल गया है स्वयं को
विस्मय से देख-देखकर लावण्यवती कुन्दलता को
खड़ी है जो मनोरम मन्द-हास लिये मुख पर,
नहीं जानता है वह कि
दिवस ने अपने अरुण नयन खोल दिये हैं
और साथी सारे दूर चले गये हैं !

२

दिवंगता रजनी की स्मृतियों में डूबा यह चाँद
हँसना ही भूल गया है,
चला गया है
क्षीण, विवर्ण, अश्रुपंकिल होकर ;
जब सुख खिलता है एक ओर
तो दुःख आ पहुँचता है उसे चुनने को दूसरी ओर !
वसन्त ने कोंपलों को
दिव्य सुख की इतनी सारी मदिरा पिला दी
कि उन के आनन नशे से लाल हो गये—
तभी कराहने लगीं निराशा से भरे
अत्यन्त परुष-स्वर में
कुछ सूखी पत्तियाँ ।

जो थी मेरी आँखों की सुषमा,
जो थी इस पृथ्वी के लिए सुन्दर देदीप्यमान ऊषा
वह पुण्यलतिका आमूल उखड़ गयी है,
बन गया है मेरा जीवन मरुभूमि ।

कुसुमकालमे, भवानणकिलु—
मसुन्दरमामेन् हृतहृदयान्तम्
कनिवट्टु विधियरिञ्ञता, णाशा—
कलिकयुम् सुखत्तलिरुमुण्टामो ?
विळिप्पतेन्तिनु वृथा पिकङ्ङळे,
अळिञ्ञुमण्णायिक्कषिञ्ञल्लो सखि !
नरुम्सुमङ्ङळे, नेट्टुवीर्क्कुन्नतुम्
वेरुतेयेन्तिनु पकच्चुनिल्पतुम्
मरणमाकुन्न महाजलधितन्
नुरयाय लोकम् परिणामियन्त्रे ।

"तरुणमाम् रविकिरणम् पुल्कुमी
निरुपममाय पनिनीर्च्चेम्मलर्,
स्वकपात्रमोरु पुतियजीवित—
मकरन्दम् कोण्टु निरच्चेत्तुन्नेरम्
तिरिच्चरियुमो ?" वितुम्पिनोक्किनि—
न्नोरिक्कलोमलाळुरच्चाळिङ्ङने !
कमनीयमेतो पुतियताम् रूप—
ममलयामवळणञ्ञिरिक्कणम् !
अथवा चेन्नेत्ताम् मनोज्ञमाय् वीत—
व्यथमाय नित्यवसन्तलोकत्ते,
परिणतप्रेमपरिमलभरम्
परत्तिज्जीवितम् विटरुम् लोकत्ते !
मणम्तकुम् चुरुण्टिरुण्ट वार्कुष—
लणिञ्ञ कैकळाल् श्मशान भूमिये
विकचपुष्पम्कोण्टलङ्करिक्कट्टे
विकलभाग्यनी निहतजीविततन् ।

—१९२७

हे कुसुम-काल !
तुम्हारे पदार्पण की वेला में भी
मेरा मन क्यों बना हुआ है
निराशा-निहत और असुन्दर ?
निर्दयता से उजाड़ दिया है विधि ने इसे,
कैसे फूटेंगी इस में आशा की कलियाँ और सुख के पल्लव ?
कोकिलाओ, व्यर्थ क्यों पुकार रही हो ?
तुम्हारी सखी तो गलकर मिट्टी में मिल गयी है।
क्यों भरतीं लम्बी उसाँसें
नवकलिकाओ ?
क्यों होती हो अकारण ही चकित ?
यह जगत् तो फेन है मृत्यु-सागर का,
परिणामशील है यह !

"तरुण रवि किरणों के आलिंगन में बद्ध,
अनुपम सौन्दर्यमय यह अरुण गुलाब
भरकर अपना प्याला नवजीवन के मकरन्द से
जब लौटकर आयेगा, तो पहचान पाओगे उसे ?"
—उसने पूछा था मुझ से एक बार,
शोकाकुल दृष्टि लिये।
शायद, पाया हो कोई नया कमनीय रूप
उस पुनीता ने !
अथवा पाया हो उसने वह शोकहीन चिर-वासन्ती संसार
जहाँ जीवन विकस्वर होता है
अपना परिपूर्ण प्रेम-सौरभ फैलाकर !
जिन हाथों से मैंने
उसकी परिमल-वाहिनी काली अलकें सजायी थीं,
उन्हीं से अलंकृत करूँ मैं विकल-भाग्य, निहत-जीवन
उसकी समाधि को—
प्रफुल्ल पुष्प द्वारा।

—१९२७

वृन्दावनम्

वृन्दावनमरक्कोम्पिलक्कळिक्कुन्न
मन्दानिलनेट्टु मानसमे !
सावधानम् नी परन्नालुम् क्षीणिच्च
पावन भावनापत्रम् वीशि ।

वृन्दारकन्मार्क्कुम् रोमांचकंचुक–
सन्दायकम् पोलिप्पुण्यारण्यम् ;
सुन्दरमी वनमुल्ल सूक्षिप्पता
नन्दन्टे पुण्यक्कुरुन्निन् बाल्यम्,
भूवलयत्तिन्टे भाग्यविलसितम्,
देवकीदेवितन्नुच्छ्वसितम्,
मंगलगोपालमङ्कमार् चार्त्तिय
मञ्जुळमाय मणिप्पतक्कम्,
लोकत्तेयाकेत्तेळिप्पानुळवाय
लोभनीयाभमाम् सुप्रभातम् ।

ई निलमल्लीयात्तिङ्कळिन्नानील–
त्तूनिलावुण्टोरिळम् चकोरम् !
श्यामळमायिटत्तूर्न्नेषुम् पुल्लिलुम्,
कोळ्मयिर् कोलुम् कटम्पिन्मेलुम्,
आ मणिवर्ण्णन्टे कान्ति मयङ्ङुन्नु,—
ण्टामन्दम् काळिन्नियल्लेन्नाकिल्
लोलमृदुलतरंगावरपुटत्तालव
चुम्बियक्कुमायिरुन्नो ?

कालिक्किटाङ्ङळेच्चालेत्तेळिच्चु नल्–
क्कोलक्कुपलिटयक्कूतियूति

वृन्दावन

वृन्दावन की विटप शाखाओं पर विहार करनेवाले
मन्दानिल का स्पर्श पाकर, हे मेरे मन
अपनी पूत भावना के झीने पंखों को फैलाकर
धीरे-धीरे आगे बढ़ो !

देवताओं को भी पुलक-कंचुक-प्रद है
यह पुण्यमय कानन।
यही वन आज भी सुरभित कर रहा है
नन्दगोप के उस पुण्यांकुर के शैशव को
जो इस भूमण्डल का भाग्य है,
देवकी-देवी का प्राणोच्छ्वास है,
मंगलमयी गोप-बालिकाओं का
मंजुल रत्न-पदक है,
समस्त विश्व को आलोकित करने के लिए अवतरित
मुग्धकारी सुषमा-पूरित सुप्रभात है।

यह वन-स्थली ही तो है वह चकोरी
जिसने सुधाकर की नवनील चन्द्रिका का पान किया,
यहाँ आज भी सुप्त पड़ी है
उस नीलमणि-वर्णवाले की कान्ति
इन घनी नीली घासों में,
इन पुलक-कण्टकित कदम्ब के पेड़ों में।
अन्यथा उन्हें कालिन्दी क्या चूमती
अपने तरल मृदुल लहरों के अधरों से ?

गायों को चराता, बीच-बीच में बंसी बजाता,
वह माया-बालक यहाँ ही तो विचरा था !

मायाकुमारन् नटक्कवे कोमळ–
माय तृक्कालेट्.ट् मण्तरियिल्
मायातेयिन्नुम् किटक्कुन्नुण्टावामा
माधुर्यमेरुन्न पाटोरोन्नुम् ;
तिङ्ङिवळर्न्न वनत्तोटनुवाद–
मेङ्ङिनेयेङ्किलुम् नेटुवानाय्
सायन्तनार्क्ककरङ्ङळ् तिरक्कुव–
तायव चुम्बिप्पानायिरिय्क्काम् !

चेणुट्.ट् तल्पादपल्लवम् मेलेट्.ट्
रेणु निरञ्ञ निलत्तु नीळे
वीणुरुण्टेत्तुन्न वीताघवातत्ते
वेणुकदम्बकमाश्लेषिप्पू !
सारुन्धतीकराम् सप्तर्षिमारोत्तु
चेरुन्न तारकमण्डलत्ते
वानिलुम्, रागार्त्तमाराय वल्लव––
मानिनिमारे निकुञ्जत्तिलुम्,
पाटट्.टणय्क्कुवान् पाटवम् कूटियो––
रोटक्कुष़लिन्ट् दिव्यनादम्
तूविक्किटप्पुण्टाम् कल्लिलुम् पुल्लिलु–
माविलभूविलु, मल्लेन्नाकिल्
द्योविविटेय्क्कु चेविकोटुत्तिङ्ङने
मेविटान् मूलमेन्तात्तमौनम् ?

प्रेमस्वरूपनाम् लोकैकात्माविन्ट्
कोमळच्चुण्टिण चुम्बियक्कवे
स्नेहमाम् वेणुविल् सर्वचराचर––
मोहनमाकिन भव्यगानम्
स्वैरम् श्रविच्च मृगङ्ङळ् परस्पर–
वैरम् मरन्नु मदिच्चुपोलुम् !
अन्नितिन् माधुर्यम् कोण्टु निरञ्ञुपोल्
कुन्निन्ट् भीकर कन्दरङ्ङळ्

उसके पैरों की वे मधुर मुद्राएँ
आज भी वन-प्रान्तर की सिकताओं में
अमिट अंकित हैं।
सान्ध्य सूर्य की किरणें
शायद उन्हीं को चूमने के लिए
इस बीहड़ वन की अनुमति पाने को
आतुर हैं।

उस मनोहर पद-पल्लवों से अंकित
सिकता-भूमि पर
लोट-पोट होकर चला आया है पवन,
और गले लगा लेता है वेणुवन
उस अघहीन को !
शायद प्रकीर्ण पड़ा हो
उस बाँसुरी का दिव्यनाद
यहाँ के काँटों में, कंकड़-पत्थरों में,
और इन आविल भू-विभागों में,
जो अनायास खींच लाने में पटु है
नभ में अरुन्धती और सप्तर्षियों से युक्त
नक्षत्र मण्डल को,
केलि-कुंजों में प्रेमार्द्र गोप-मानिनियों को।
इसीलिए तो यह आकाश कान लगाये
नितान्त मूक खड़ा रहता है।

चराचर को मुग्ध कर देनेवाला भव्य गीत
जब प्रवहमान हुआ, प्रेमिल प्रभु के
कोमल अधरों का स्पर्श करनेवाली स्नेह मुरलिका से
तो आनन्दोन्मत्त होकर सुनने लगे मृग-सिंह
भूल गये जाति-वैर !
तब भर गयीं पर्वत की भयानक गुफाएँ भी
इस की मधुरिमा से,

नाकवुम् भूमियुमन्तरमोक्केत्ती–
न्नेकगृहत्तिन् मुरिकळायि ।
नित्यवधिरङ्ङळ् वृक्षङ्ङळ्पोलुमा
निस्तुलगीतम् नुकर्न्नुहृत्ताल्
आनन्दनर्त्तनम् चेय्तू निरन्तरम् ;
काननच्चोलकळेट्टु पाटि ।
मन्मातृभूविनियेन्नतु काणुमो
मुन्मातिरिक्कोन्नु मारिक्काण्मान् !

बालकदम्बकच्चिल्ल मुकरुमी
नीलशिलातलमायिरिक्काम्
माधवदर्शनप्रार्थिनियाय् वन्नु
राध वसिच्च विहाररंगम !
आ महाभागतन् प्रेमसुरभिल–
कोमळालापमधुकणङ्ङळ्,
भूतलम् मुन्पोट्टेरिञ्ञु मरिच्चोरु
भूतकालत्तिन् पूणेल्लुपोले
काणुमिक्कल्लिनुळ्ळोरोविटविलुम्
वीणु वट्टाते किटक्कुन्नाण्टाम् !
नल्पाळुम् मञ्जरि ताण, तुनोक्कित्तान्
निल्पाणिटि्ट्ट्टु तेन्कण्णीर् तूकि :
कोमळनादत्ताल्क्कोरकराजिये–
क्कोळ्मयिक्कोळ्ळिक्कुम् कोकिलाळि
कैविटुन्निल्लेन्नुम देवितन् पादत्ताल्
पावितमाक्कियोरिप्रदेशम् !
जीवितच्चालिन् मरुकरपट्टीटु–
मीविधमुळ्ळ स्मृति तन् निषल् !

मुल्लकळ् सूक्षिक्कुन्नाण्टावाम् पूंचेप्पि–
लल्लणिवेणितन् श्वासगन्धम् ;

मिट गया स्वर्ग और भूमि का अन्तर
बन गये एक ही भवन के वे दो कक्ष,
नित्य बधिर वृक्षों ने भी
उस हृद्य संगीत का पान किया प्राणों से
करने लगे आनन्द-नर्तन,
अनुगान किया कानन के झरनों ने उसका।
न जाने कब देखेगी मेरी मातृभूमि यह दृश्य
परिवर्तित होने के लिए पूर्ववत्!

हो सकता है
यही शिलानल हो
माधव-दर्शन के लिए उत्सुक राधा की विहार-स्थली
चूम रही है जिसे बाल कदम्ब की मृदुल डाल।
उस पुण्यशालिनी की
मृदुल प्रेमालाप की कोमल मधुकणिकाएँ
आज भी अक्षुण्ण पड़ी होंगी यहीं
इन शिलाखण्डों की दरारों में
जिन्होंने आगे धकेल दिया है धरा को
और स्वयं बन गये हैं
मृत अतीत की रीढ़ की हड्डी।
राधा-देवी के पद-स्पर्शों से
पावन बने हुए इस प्रदेश को
छोड़ना नहीं चाहता कोयलों का झुण्ड,
पुलकित किया है अपने कोमल नाद से
कलिकाओं को जिन्होंने।
जीवन-सरिता के पार तक फैली हुई हैं
ऐसी स्मृतियों की छायाएँ।

मल्लिकाओं ने आज भी सुरक्षित कर रखा है
अपने पुष्प-सम्पुटों में
गहरे तम-सी कुटिल कुन्तला राधा की
श्वास-सुरभि को;

अल्लेंकिलेन्तिनु वीर्प्पिट्टिळम्काट्टु
चेल्लुन्नतेन्तुमवय्क्करिकिल् ?
हेमन्तरात्रि करञ्ञुपोकुन्नुण्टि–
श्रीमल्प्रदेशत्तेस्सन्दर्शिक्के ;
ई मणल्त्तट्टिन्मेलल्लो विहरिक्का–
रोमनक्कण्णनुम् गोपिकयुम् ।

ओरो पोटियिलुम् तूविक्किटक्कुन्नु–
ण्टारोमल्प्पूविळम्पुंचिरिप्पाल् !
अन्तिवन्नेन्तिनाणल्लेंकिल् नित्यवुम्
पिन्तिरियुन्नतुम्, तन्मुखाब्जम्
श्यामचिकुरभरत्ताल् मर्प्पतु,–
मामन्दम् मौनम् भजिक्कुवतुम्,
ध्यानत्ताल् मूकनाम् वानमिटक्किटे–
क्कानन्दपूर्वमिङ्ङोट्टु नोक्कि
मन्दस्मितत्तिनाल् शारदनीरद–
वृन्दमाम् मीश वेळुप्पिच्चतुम् ?

सोमनाम् तूमलर्मंजूषयेन्तिव–
न्नीमणल्त्तट्टिन्मेल् संचरिक्के
कण्णिनु कौतुकमेट्टुमारेल्क्कुन्नु
वेण्णिलाविन्नुम् वेळुप्पु वेरे !

आराञ्ञयायि नी राधे ; महर्षिमा–
राराञ्ञु काणात्त नीलरत्नम्
श्रीमति, निन् कैकळ् तेटिवन्नीलयो,
प्रेमम् महत्तरम् ज्ञानत्तेक्काळ् !

अन्यथा
क्यों जाता यह तरुण पवन
नित्य उस ओर
अपनी साँसों में गन्ध भरने ?
इस श्रीमय प्रदेश पर आकर फूट-फूट पड़ती है
हेमन्त की रजनी ;
हाय, इसी सैकत पर ही तो होता था
प्यारी राधा और कृष्ण का बिहार !

यहाँ के प्रत्येक धूलि-कण में
बसा हुआ है
उस प्यारे फूल-से कोमल मन्द-हास का दुग्ध !
नहीं तो क्यों सन्ध्या
यहाँ नित आकर श्यामल केशों से
मुँह ढँककर लौट जाती है नितान्त मूक,
और ध्यान-मग्न मूक गगन
बीच-बीच में जब इस ओर निहारता है
तो अपनी मन्द-स्मित प्रभा से
और भी धवल कर लेता है
अपना शरदभ्र-श्मश्रु ?

जब इस सैकत पर टहलती है स्निग्ध चन्द्रिका
हाथों में लिये सोम पुष्प की मंजूषा,
तब अत्यधिक नयन-मोहक हो जाती है
उसकी अलौकिक धवलता !

ओ राधिके, वन्दनीय है तू,
सतत खोजने पर भी
जिस नीलरत्न को न पाया ऋषियों ने
वह तुम्हारे हाथों को स्वयं खोजता आ पहुँचा !
निश्चय ही प्रेम ज्ञान से श्रेष्ठ है।

श्रीलवृन्दावनलक्ष्मिक्कु नीराळ–
नीलञ्जरियुटयाट तुन्नि
कालम् कषिक्कुम् कळिन्दकुमारी, निन
कूलत्तिल् वाणुवाणेन् जीवितम्
अन्तरंगत्तिल् नी लाळिक्कुम् श्रीराधा–
कान्तस्मृतियोट्टु योजिच्चावू !

मर्मरव्याजत्ताल् गोपिकामाधव–
नर्मसंभाषणम् चोल्लिच्चोल्लि
चारुवृन्दारण्यम् चेर्क्कट्टे नल्त्तीर्थ–
चारिकळक्केन्नुममन्दानन्दम् ।

—१९२६

हे कालिन्दी !
बिताया है तुमने जीवन
मृदुल नीलांशुक बुन-बुनकर
सुन्दरी वृन्दावन-लक्ष्मी के लिए।
निरन्तर तुम्हारे तट पर बसकर
विलीन हो जाऊँ मैं राधाकृष्ण की उन स्मृतियों में
जिन्हें तुमने अपने अन्तरंग में सँजो रखा है।

राधाकृष्ण के मृदुल प्रेमालापों को
मर्मर ध्वनियों के बहाने गुंजरित करता हुआ.
यह मनोहर वृन्दावन
विशुद्ध तीर्थचारियों को
सदा ही आनन्द प्रदान करे !

—१९२६

कुयिल्

"ओरु चाण् तिकयिल्ल
जीवितम् ; व्योमम्पोले
पेरुताम्तानुम् कृत्य,–
मेन्निट्टुम् पिकोत्तम,
पषुते पाटिप्पाटि
प्पायुमी वसन्तत्ते
मुषुवन् कळञ्ञालो ?"
तुटर्न्नू चोद्यम् पान्थन् :

"ई विशालारामत्तिल्—
क्काट्टटिक्कूट्टम् निन्नु
जीवितप्पोरिन्नुळ्ळ
काहळम् विळिक्कुम्पोळ्
अलसम् वसिक्कुम् निन्
मुग्धगीतत्तिन्नेन्तु
विलयाण, पहास्य—
जीवितम् परभृतम् ।

तंकमालकळ् पूण्टु–
निल्क्कुन्न कोन्नक्कूट्ट–
त्तिङ्कल्निन्नतृप्तितन्
मर्म्मरम् केळ्क्काकुन्नु !
मतियेन्नताम् भावम्
श्रेयस्सिन् प्रतिवन्ध—
मतियामसंतृप्ति–
यौन्नत्यसौधद्वारम् ।
अभ्रलक्ष्मियादित्य—
मण्डलचक्रत्तिन्मेल्
शुभ्रनूल् नूट्टिट्टुन्नु—
ण्टालस्यम् भावियुक्काते ;

कोयल

"जीवन तो नहीं है उँगली की पोर जितना
किन्तु कर्तव्य है विशाल व्योम-सा ;
तो फिर पिकवर,
क्यों खोये दे रहे हो दुर्लभ वसन्त को
व्यर्थ ही गा-गाकर ?"

पथिक ने अपना प्रश्न जारी रखा—
"इस विशाल उपवन में खड़े होकर
चपल तरुगण
जब जीवन-संग्राम की भेरियाँ बजा रहे हैं
तो तुम निरे आलसी के गीतों का मूल्य ही क्या है ?

"हे परभृत,
परिहासमय तुम्हारा जीवन है।
स्वर्णमाल-विभूषित कर्णिकारों की ओर से
आ रही है अतृप्ति की आवाज़,
अलंभाव बाधक है श्रेय का
किन्तु
चिर-अतृप्ति द्वार है
उन्नति के सौध का।
यह आकाशलक्ष्मी
आदित्य मण्डल के चरखे पर काते जा रही है शुभ्र सूत
बिना किसी आलस्य के;

दिवसम् सिताम्भोद–
च्छेदमाम् पुत्तन्पञ्ञ्ञि—
यवळ्तन् समीपत्तु
नन्नाक्कि वेच्चीटुन्नु।
पकलिन्निल्ला नीळम्,
वेळिच्चम् कक्कुम् रात्रि–
यकलत्तल्लेन्नय्क्कु—
माय्प्पतच्चिटुम् मुम्पे,
स्वकपोलान्तम् तुटु–
प्पोळवुम् कणम्पोलुम्
मिकवेर्टीटुम् जीवि–
तासवम् पोयीटाते
नुकरुन्नतिन्नल्ली
पोल्पनीर्प्पूविन् वक्त्रम्
मुकरुम् समीरणन्
मन्त्रिप्पू सनिश्वासम्?
कटल् तन्साम्राज्यत्ते
नीट्टुवान् तिटुङ्ङुन्नू;
कर कीषटङ्ङाते
निल्क्कुवान् यत्निक्कुन्नु।"
कोकिलम् चोल्ली :—"साधो,
मंगळम्! भवान् चेन्नु
पूकुकुद्दिष्टस्थानम्
पुण्यमार्ग्गत्तिल्क्कूटि।
लोकलावण्यक्करिम्—
कूवळप्पूविन्पत्र–
माकम्रस्वातन्त्र्य श्री—
देवितन् पुण्य क्षेत्रम्,
नाकमण्डलम्, काण्के–
तन्नेत्तान् मरन्नव–
नाकयाम् ञ्ञा, नेन् पाट्टु
सार्थमो निरर्थमो।

और यह दिन
उस के निकट रखे जा रहा है
श्वेत नीरद की नयी-नयी पूनियाँ
धुन-धुनकर।
दिन लम्बा नहीं है
और उजाले को
लूट ले जानेवाली रात भी दूर नहीं ;
हमेशा के लिए सो जाना पड़ेगा,
उससे पहले ही दोनों हाथों लूट लो
जीवन की मदिरा,
व्यर्थ न करो उसकी एक कणिका भी,
हो जायें तुम्हारे कपोल नशे से लाल—
यह समीर
जो गुलाब के अधरों का चुम्बन ले रहा है,
निश्वास भरकर यही तो कह रहा है !
सागर
अपने साम्राज्य का विस्तार करना चाहता है
और धरातल
पराधीन न होने का यत्न करता है।"

कोयल बोली—
"भद्र, कल्याण हो तुम्हारा,
पुण्य-पथ द्वारा तुम अपने लक्ष्य को प्राप्त करो !
स्वातन्त्र्य की श्री-देवी का पावन निवास-मन्दिर है
विश्व-लावण्य के नीलोत्पल दलों में,
इस नभोमण्डल को देखकर
भूल जाता हूँ मैं स्वयं को,
मालूम नहीं
मेरा गीत सार्थक है या निरर्थक।

तारणिक्केषुम् भंगि—
            यिल्ल मे, कषुकन्ट्
दूरदृष्टियुमिल्ली
            मामरक्कोम्पत्तेङ्ङान्
आकाशत्तिन्ट् नित्य
            सौन्दर्यम् पाटिप्पाटि
श्शोकास्पृष्टात्मावायि—
            क्कालयापनम् चेय्वेन ।
जीवितप्पोरिल् तोट्ट्
            तोट्टुळ्ळम् कीरिक्कीरि
मेवीटुम् सहोदर—
            न्मारिलार्क्कानुम् पक्षे
आनन्ददानम् चेय्वान्
            शक्तमायेक्कामेन्ट्
गानम्, ञ्ञानतिक्षुद्र—
            पक्षियायिरुन्नेङ्कि !"

—१६२६

मुझ में न तो फूलों की सी सुकोमलता है
न गीध की सी दूर दृष्टि ;
मेरी तो कामना यही है—
पेड़ की इस डाली में पड़ा रहूँ कहीं शोक-मुक्त
आकाश की अनश्वर सुन्दरता का गीत गाता हुआ !
जीवन-संग्राम में निरन्तर पराजित होनेवाले
विदीर्ण-हृदय बन्धुओं में अवश्य होंगे ऐसे कोई,
जिन्हें मेरा गाना आनन्द-दान करेगा ;
मैं तो क्षुद्र पक्षी हूँ,
यही सही !"

—१६२६

काट्टुमुल्ल

नियतितन् मृदुनिर्म्मलहासमे,
नयनचुम्बियाम् नव्यप्रकाशमे,
वियति निस्तुलविश्वोत्सवत्तिना-
युयरुम् नीराळच्चेङ्कोटिक्कूर् नी।

निरघ, निन्द्युतिनीरषि़यिल् द्विज—
निरयिळक्कुन्नु नीळवे वीचिकळ्।
नुरकळ् चेर्क्कुन्नु मालयमारुत-
तरळितङ्ङळाम् वेण्मलर्त्तोत्तुकळ्।

वषि़युम् हर्षत्ताल् वानिनु तारक-
मिषि़ तव स्पर्शमीलितमाकुन्नु।
कटलिन्मारि़टमानन्दजृंभित,—
मटवियापादचूडम् पुळकितम्।

मुखमिरुण्ट जीमूतत्तिनु, कविळ्
सुखमदरागसुन्दरमाकुन्नु,
दलकुलम् भवदंशुकतल्लज—
त्तल मुकरुन्नु ताण्डवम् चेय्युन्नु।

जनगणादरमेन्तेन्नरि़याते
विनयलज्जाविधुरमाय् निल्क्कुम् ञान्
ओरु वनमुल्ल, दिव्यातिथे, भवा-
न्नरुळिटेण्टुन्नतेङ्ङने स्वागतम्?

बन-जुही

हे नियति के मृदु निर्मल हास,
नयनों को चूमनेवाले नव्य प्रकाश,
तुम हो अनुपम विश्वोत्सव के निमित्त
आकाश पर ऊँचे फहरानेवाली लाल रेशमी ध्वजा।

हे निष्पाप,
तुम्हारी सुन्दरता के सागर में
हिलोरें ले रहे हैं पखेरू ;
तरुण-पवन के स्पर्श से दोलायमान
ये विकसित श्वेत सुमन मंजरियाँ
उठा रही हैं धवल फेन।

आकाश के तारक नयन
मूँद लेते हैं पलकें हर्षातिरेक से ;
तव पाकर तुम्हारा स्पर्श-पुलक
आनन्द से फूल उठा है
सागर का वक्षस्थल
और पुलकित है अरण्य नख-शिखान्त।

श्यामलता से भरा बादल का कपोल
अभिराम वन गया है आनन्द की अरुणिमा से,
चूमकर तुम्हारे अंशुक का आँचल
ताण्डव कर रहे हैं ये पल्लव-दल।

मैं हूँ एक वन-जुही,
नहीं जानती जनगण का आदर,
विनय और लज्जा से विह्वल,
कैसे करूँगी तुम्हारा स्वागत ?
हे मेरे दिव्य अतिथि !

पुरटवर्ण्णमाम् पूम्पट्टु मेलिट्ट
मरतकमणिशैलपीठान्तिके
ललितशाखाग्रलम्बियाम् कांचन—
त्तळिरुपट्टिनाल् वीशान् लतकळुम,
फलभरोपहारत्तेस्समर्प्पिप्पा—
नलमुयर्न्नेषुम् नाना नगङ्ङळुम्,
रजतनक्षत्ररत्नदीपत्तोटे
भजनलोलप्रभातवुम् निल्क्कवे
मृदुलहासम् कलर्न्नु वन्नू भवान्
मदुपकण्ठत्ति, लेऱे लज्जिप्पू ञ्ञान् ।

कटलिनेप्पोले मन्द्रमधुरमाम्
पटहमिल्लादरिच्चेतिरेल्क्कुवान् ;
हृदयमल्लातेयिल्लिरुत्तीटुवान्
सदनमी क्षुद्रपुष्पत्तिनङ्ङ्ये ;
नवपनिनीरलरिन्टे वासना—
लववुमिल्लेनिक्कानन्ददायकम् ;
परिचितमल्ल हारियाम् पाट्टेनि—
क्करिमकोलुमरुवियेप्पोलवे ;
मधुवुमिल्लविटेय्क्कु समर्प्पिप्पान्
मधुरदर्शन, हा ! त्रपामूक ञ्ञान् ।
करळिलेन्तविटत्तेय्क्कु तोन्नुमो ?
परमशुद्धमेन् प्रेममरियुमो ?
हिमकणाश्रुक्कळ् शक्तङ्ङळाकुमो
मम मनोगतमाकेयुरय्क्कुवान ?

सुनहरे पटम्बर से समाच्छादित
मरकतमय शैल-पीठ के समीप
खड़ी थीं लतिकाएँ।
अपनी ललित शाखाओं में
स्वर्णिम पल्लव-वसन लेकर
चामर झुलाने के लिए,
अनेक ऊँचे पर्वत
फलों का उपहार समर्पित करने के लिए,
सेवा-निरत प्रभात
रजत-नक्षत्रों का दीप लिये ;
तब आप मृदुल मुस्कान के साथ
मेरे ही समीप आये, मैं लज्जा-विभोर हूँ।

आपकी सादर अभ्यर्थना के लिए
समुद्र का सा मन्द्र-मधुर वाद्य नहीं ;
आपको विराजमान करने के लिए
हृदय को छोड़कर दूसरा सदन नहीं
इस क्षुद्र पुष्प के पास।
सद्यःस्फुटित गुलाब की
आनन्द-दायक सुरभि का एक लघु कण तक मुझ में नहीं,
मुग्ध झरनों की तरह
मनोरम गीत गाना भी मुझे नहीं आता।
तुमको समर्पित करने के लिए
मधु भी तो मेरे पास नहीं ;
हे मधुर दर्शन, मैं लज्जा से बोल भी नहीं पाती ;
न मालूम, आप क्या सोचेंगे अपने मन में ?
कैसे जानेंगे मेरे परम विशुद्ध प्रेम को ?
क्या ये ओस-कणों के अश्रु
प्रकट कर सकते हैं मेरे मन के सब भाव ?

मुकरुकेन्ने मुकरुकेन्नुळ्ळल् नि–
न्नकलुवोळम् तमोभरम् मेदुरम् ।
प्रणयियाम् निन् वषियिलेन् जीवित–
क्षणमपङ्किलम् वेळ्ळ विरिच्चावू !

—१९२९

चूम लो मुझे, चूमते रहो
जब तक कि मन का तुमुल अन्धकार न मिट जाये ।
हाय !
मेरे जीवन का प्रतिक्षण
तुम प्रणयी के पथ पर
अपंकिल पाँवड़ा बिछा पाता ।

—१६२६

एन्टे पुण्यम्

पुंचिरि तंचिनिन्नोमलाळोतिना–
ळेंचिरसंचितपुण्यपुञ्जम्,
"तूमलर्त्तोप्पिलेक्किन्नेन्ते पोकुवान्
तामसम्, पूक्कळे वेण्टेन्नायो ?"

मामकस्वप्नत्तिन् कोमळक्कैकळे–
क्कोळ्मयिक्कोंण्टु पिटिच्चु चोन्नेन् :—
"आरब्धतारुण्यचैत्रयाय्, विश्लथ–
नीरन्ध्रवेणिक्कार् वण्टिळकि,
प्रेमसुरभियामी नेटुवीर्प्पिनाल्
तैमणिक्काट्टत्र वीशिवीशि,
मुल्लप्पूमोट्टट्टम् काणवे रण्टिळम्–
पल्लवम् मर्म्मरमेन्तियेन्ति,
चेम्पट्टुसारितन् तूम्पाल्त्तळिरान्नं
पोन्पाणिवल्लिये नीट्टिनीट्टि,
पादविन्यासत्तालेन्नरिकत्तोरो
पाटलविद्रुमम् चिन्तिच्चिन्ति,
मन्दम् चिलय्क्कुन्न नूपुरपक्षितन्
मंञ्जुळनिस्वनम् पोङ्ङिप्पोङ्ङि,
नीळमेऱीटुन्न नीलमिषिकळि–
लोळम् प्रणयत्तालेरियेरि,
मोहनचुम्बनसूनदळङ्ङळे
स्नेहसुरभिलम् तूकित्तूकि,
मुट्टुमट्टुत्तेन्टे 'नन्दनम्' निल्कुम्पोळ्
मट्टु मलर्क्काविल् पोवुकयो ?

मेरा पुण्य

मेरे चिर-संचित पूंजीभूत पुण्यों की प्रतीक
मेरी प्रिया ने मनोहर मन्द-हास के साथ मधुर स्वर में पूछा—
"आज फुलवारी जाने में इतना विलम्ब क्यों ?
क्या फूलों से उदास हो गये हो ?"

पुलकित होकर
मैंने अपने मधुर स्वप्न के दोनों हाथ ग्रहण कर उत्तर दिया—
"तारुण्य का वसन्तारम्भ हुआ है
वन्ध-विमुक्त निबिड़-कुन्तलों की भ्रमर-पंक्तियाँ डोल रही हैं,
प्रेम-सुरभिल निश्वास का मन्द पवन बह रहा है,
कुन्द कलिकाओं के रुचिर अग्र अस्पष्ट दीख रहे हैं,
मृदुल पल्लव-युगल मर्मर कर रहा है,
पाटलवर्णी रेशमी साड़ी के झूमते आँचल के पल्लव-भार से
कनक हस्तवल्लियाँ हिल रही हैं,
पाटल अपने प्रत्येक पदविन्यास में
विद्रुम बिखेर रहा है मेरे समीप,
मन्द-मन्द कूजनेवाले नूपुर पक्षी का
मंजु स्वन गूँज रहा है,
लम्बे विस्फारित नील नयनों में
प्रेम की लहरियाँ उठ रही हैं,
स्नेह-सुरभित प्रसूनों की चुम्बन-वर्षा
मेरे ऊपर हो रही है,
खड़ी है यों जब मेरी नन्दन-लक्ष्मी मेरे सामने
तो मैं कैसे किसी अन्य उपवन की ओर जाऊँगा।

तेट्.टु पोरुत्तालुम् तेट्.टाकि, लार्ये, निन्–
चुट्.टुम् पारुन्नतेन् चित्तभृंगम्"

२

चेंकतिर्त्तुम्पुकळ् नीट्टियरिकत्तु
तंकक्कतिरवनुल्लसियक्के,
अञ्जनवर्ण्णविण्पञ्जरबद्धयाम्
पंचवर्ण्णक्किळियाय सन्ध्य
सञ्जनिताह्लादम् मेल्ले विटर्त्तिनाळ्
तञ्जगन्मोहनचित्रपत्रम् ।

पुंचिरि तंचिनिन्नोमलाळोतिना–
ळेंचिरसंचितपुण्यपुंजम् :—
"वेण्मुकुळङ्ङळ् विटर्न्नु तुटङ्ङिय
विण्मुल्लवल्लिक नालुपाटुम्
भारत्ताल् तूङ्ङिक्किटक्कुन्नु ; पश्चिम–
भागत्तु वन्नन्ति पूनुळ्ळुन्नु ।
ऐन्तित्र तृष्णयिल्लातावान् कण्णिण–
यक्कन्ति चेम्मद्यवुमेन्तिनिल्क्के ?"

चेवटिच्चेन्तारिलोळमटियक्कुन्न
पूवणिक्कार्.वेणित्तुम्पु वारि
आमन्दम् चुम्बिच्चुचुम्बिच्चु चोल्लि ञान्
प्रेमविकसितलोचनान्तन् :—
"चोप्पिरट्टिच्चोरिस्सुन्दरफालत्तिल्
वेर्प्पिनाल् तारकळ् मिन्निमिन्नि,

अगर है यह अपराध
तो प्रिये इस अपराध को क्षमा करो,
मेरे मन का भौंरा तुम्हारे चारों ओर मँडरा रहा है।"

२

जब कनक-सूर्य अपनी अरुण रश्मियाँ फैलाये
पास खड़ा हुआ तो
अंजनवर्ण गगन-पिंजरे में बन्द
पञ्चरंगी सारिका सन्ध्या ने
अत्यन्त आनन्द के साथ
अपने जगन्मोहन रंग-विरंगे पंख धीरे-धीरे फैला दिये।

मेरे चिर-संचित पुण्य की पुंजीभूत प्रतीक प्रिया ने
मन्द-हास के साथ
मुझसे मधुर स्वर में कहा—
"खिले हुए धवल मुकुलों से लदी
यह नभ-मालती
अपने भ र से चारों ओर से
नीचे की ओर झुकी जा रही है
और पश्चिमी दिशा से आकर
सन्ध्या फूल चुन रही है।
खड़ी है वह अरुणारुण मदिरा लेकर
आज क्यों आपकी आँखों की तृषा सूख गयी है?"

समेटकर हाथों में गन्ध-मदिर नील अलकावलि
जो लहरा रही थी अरुण-चरण कमल पर
मैंने उन्हें चूमा
और प्रणयाकुल दृष्टि लिये बोला—
"इस अरुणाये हुए ललाट पर
श्रम-कणिकाओं के तारे चमचमा रहे हैं,

तेल्लिळकीट्टुन्न नीलाळकङ्ङळा–
लल्लिन् समागममोतियोति,
वेलकळेल्लाम् वेटिञ्ञोरेन्निन्द्रिय–
वेलक्कावर्कानन्दमेटि्ट्टयेटि्ट,
रागमधुरमाम् नोट्टत्तालेन्मन–
स्सागरमारक्तमाक्कियाक्कि,
नानाविकारत्तिरकळुणर्त्तुवो–
री नेट्टुवीर्प्पुकळ् वीशिवीशि,
म्लानमाम् मामकसन्तप्तजीवित–
सूनत्तिन्नुन्मेषमेकियेकि,
अन्तिके मोहनदर्शने, नी निल्क्के–
यन्तिये वेऱ्यारन्वेषिक्कुम् ?
तेट्टु पोऱ्त्तालुम्, तेट्टाकि, लार्ये, निन्
चुट्टुम् चरिप्पतेन् चित्तमेघम् ।"

——१९२८

धीमे-धीमे दोलायमान नील अलकें
रजनी के आगमन की सूचना दे रही हैं,
कर्मजाल को समेट लेनेवाले
कर्मेन्द्रिय-भारवाहकों को श्रम-मुक्ति का
आनन्द दे रही है,
नेह-भरी मधुर चितवन से
मेरे मन के सागर को आरक्त कर रही है,
नाना विकार - वीचियों का विक्षोभ पैदा करनेवाली
लम्बी-लम्बी साँसें चल रही हैं,
दे रही हैं नवोन्मेष
मेरे म्लान मलिन तप्त जीवन के सुमन को,
तू जब खड़ी है अत्यन्त निकट, मोहनदर्शिनी !
तो कौन क्यों किसी दूसरी सन्ध्या की खोज करेगा ?
अगर यह अपराध है,
तो क्षमा कर दो इसे प्रिये !
मेरा हृदय-घन घुमड़ रहा है तेरे चारों ओर ।

—१९२८

निषल्

ञानर्थमट्.ट् निष् ;   लस्थिरमाम् किनावु–
तानल्लयो मलिनमाय मदीयजन्मम्
आनन्दवुम् तेळिवुमट्.टषयुन्नु पारिन्–
क्कानल्ज्जलत्तिलोरु निद्रयिल् मुङ्ङ मुङ्ङ ।

घोरम् निदाघवेयिलेट्.टु तकर्न्नु निल्क्कुम्–
नेरम् तुणय्क्कणयुमेन् कुळिर्.मेनि पट्.ट्
स्मेरम् मुखम् सुरभि निश्वसितम् कुनिच्चु
पारम् त्रपामधुरमाम् मलर्. निल्प्पु मूकम् ।

मत्तिल्च्चिरिच्चुमरुवुम् पकलिन्टे कण्णु
पोत्ति, स्सनिद्रवयलिन्टे कविळ्त्तटत्तिल्
मुत्ति, क्करिम्पुमुळयाल् पुळकांकुरम् क–
ण्टुळ्त्तिङ्ङुम् सुखमोटङ्ङने ञान् चरिप्पू ।

मारुन्नु मल्स्थितियिटय्क्कटे, युग्रवेय्लिल्
नीरुन्न ताष्.वरयिल्निन्नरियातेतन्ने
केरुन्नु शीतळमहाद्रियिलेन्ने मिक्क–
वारुम् नयिप्पतोरदृश्य वलिष्ठशक्ति ।

गन्तव्यमाकुमिटमे, तिविटेक्किटन्न–
त्यन्तम् भ्रमिप्पतिनियेतोरु वस्तुविन्नो ?

छाया

मैं हूँ एक अर्थहीन छाया-रूप,
मेरा मलिन जीवन केवल अस्थिर स्वप्न है,
जग की मृग-मरीचिका में आनन्द और उल्लास से वंचित
किसी स्वप्न में डूबता-उतराता सरकता हुआ चला जा रहा हूँ मैं।

निदाघ की कड़ी धूप में
जब मल्लिका म्लान हो जाती है
तो मैं उसकी सहायतार्थ पहुँच जाता हूँ ;
मेरे शीतल शरीर से लिपटकर
मुस्कान से मनोहर मुख झुकाकर
सनिश्वास मूक खड़ी रहती है
वह लज्जा-मधुर लता-वधू।

मैं भींच देता हूँ नयन दिन के
जो परिहास-क्रीड़ा में ठहाका मारकर हँस उठता है,
और चूमता हूँ निद्रा-निमग्न कृषिस्थली के कपोल,
और आनन्दित होता हूँ
ईख के प्ररोह-पुलकों को देख-देखकर।

कैसी-कैसी दशा बदलती रहती है मेरी !
कभी मैं कड़ी धूप से तपती तराई में रहता हूँ,
कभी अनजाने शीतल शैल शिखर पर चढ़ता हूँ—
निश्चय ही कोई महान् अदृश्य शक्ति
चला रही है मुझे।

कहाँ है मेरा गन्तव्य स्थान ?
किस वस्तु को प्राप्त करने के लिए भटकता रहा हूँ मैं ?

एतन्तरम् गिरिनिरय्क्कुमेनिक्कु ;   मद्रि
कान्तम्, स्थिरम् ; चपलमेन्टे विरूप जन्मम् ।

अल्ला, महागिरियुमाषियुमीनिलय्क्कु
निल्लाते मायण, मताणु निस्र्गरीति !
एल्लात्तिलुम् परमसुन्दरमेकसत्य-
मिल्लाय्कयिल्लि, वयतिन्टे बहिःस्वरूपम् ।

हा !   वन्नु सन्ध्य रमणीयधरे !   पिरिञ्ञु-
पोवट्टे, ञानिरुळिलाशु लयिक्कयायि ;
एवम् पोषिक्करुतु पिच्चकवल्लि, कण्णीर्-
प्पूव ;   ल्पधैर्यमिवनुळ्ळतलिच्चिटोल्ले !

—१९२८

मुझ में और इन पहाड़ों में कितना अन्तर ?
पर्वत है अचल मनोहर,
किन्तु मैं जनमा हूँ चपल विरूप।

नहीं,
महाशैल और महासागर भी मिटेंगे एक दिन,
कोई भी यहाँ न रहेगा तद्वत्—
यही तो है सृष्टि की स्वाभाविक गति।
सब के भीतर है किन्तु एक परम सुन्दर शाश्वत सत्य,
ये जो दीखते हैं, उसी के बाहरी रूप हैं।

हाय ! सन्ध्या आ पहुँची,
विदा, अयि मनोहारिणी धरिणी,
मैं क्षण-भर में तम में विलीन हो जाऊँगा।
हे मल्लिके ! पुष्प-अश्रुकण न झरने दो,
इस तरह न खोने दो मुझे, रहे-सहे धैर्य को।

—१६२८

प्रभातवातम्

संजातमाकट्टे जयम् प्रभात–
समीर, भावल्कमहोद्यमत्तिल् !
वरुन्नु नी वानवदिक्किल् निन्नुम्
वानिन्टे सन्देशमिळय्क्कु नल्कान ।

उदारयाकुम् पुलर्काललक्ष्मि–
युत्क्षिप्तहस्तांगुलिपल्लवत्ताल्
आरब्धयात्राविजयोपलब्धि–
क्काशीर्वदिक्कुन्नु विकारमूकम् ।

पकञ्चुनोक्कुन्नु तमस्सिनुळ्ळ्
पारावुकाराकिय तारकङ्ङळ् ;
प्रत्यक्षमाकुन्नु विळर्प्पवयक्कु
प्रकाशदूताग्र्य तवप्रभावाल् ।

मन्दम् चरिक्कुम् महनीय, निन्मेल्
मरम् तळिप्पू पनिनीर्क्कणङ्ङळ्,
परागसिन्दूरमुणर्न्नुनिन्न
लताकदम्बम् तोट्टुविच्चिट्टुन्नू ।

तट्टुत्तुनिल्क्कुम् गिरितन् तटत्ते–
त्ताने विरप्पिच्चोरु सत्ववाने,
चुम्बिच्चिट्टुम् कोञ्चुतृणांकुरत्ते–
क्कोंचित्तलोट्टुम् प्रणयार्द्रनो नी !

हा ! निन्टे नेर्क्के तिरियुन्नु हारि–
हर्षत्तुटुप्पार्न्न हरिन्मुखङ्ङळ् ;

प्रभात समीर

जय हो तुम्हारी, हे प्रभात-पवन !
सफल हों तुम्हारे महान् यत्न ;
तुम आ रहे हो देवताओं के देश से
स्वर्ग का सन्देश पृथ्वी को देने के लिए।

उदार-हृदया प्रभातलक्ष्मी
अपनी पल्लव-हस्तांगुलियों को उठाकर
तुम्हारी आरब्ध यात्रा की विजयोपलब्धि के लिए
विकारमूक होकर आशीर्वाद दे रही है।

तारे जो तम के पहरेदार हैं,
देख रहे हैं चौंक-चौंककर तुम्हारी ओर,
हे प्रकाश के अग्रदूत !
तुम्हारे प्रभाव से दिखायी देते हैं वे कैसे पाण्डुवर्ण !

मन्दगति से चलनेवाले महात्मन् !
पेड़-पादप सुरभिल गुलाब जलकण छिड़क रहे हैं।
सजग लतिकावाला कदम्ब
पराग-सिन्दूर लेप रहा है।

हे महासत्व !
रास्ता रोककर खड़े रहनेवाले गिरि-निकरों को
तुम अकेले ही हिलाकर रख देते हो,
किन्तु चूम-चूमकर दुलारते हो
नन्हे-नन्हे नवल तृणांकुर को।

दिशाओं के हर्षारुण मनहर मुख
तुम्हारी ओर घूम गये हैं,

परन्निट्टुन्नू तव पुण्यनामम्
पत्रङ्ङळ्तन् कम्पितमा़य चुण्टिल् ।

निलयिक्कळक्कम् कलराते नीळे
निल्क्कुन्न पुल्क्कुन्नणिमेय् तरिञ्चुम्,
विश्वैकविस्मापक, कन्दरास्यम्
पिळर्त्तियुम् निन्गति नोक्किटुन्नु ।

उऱक्कमिच्छिप्पवरोतिटट्टे–
युन्मत्तनेन्नाय् सुखपानमत्तर् ;
तदङ्गभावम् करुतिक्कनिञ्ञु
तान् वीर्प्पिटुम् नी पुळकप्रदायि ;

इरुण्टु जीर्णिच्चेषुमिन्नलत्ते–
यिळातलम् नूतनशोभमाक्कान्
मुतिर्न्न मूलप्रकृतियक्कु हृत्तिल्
मुळच्च दुर्वारनवाश्यम् नी !

चराचरङ्ङळ्क्करियाम् भवान्टे
चातुर्यमेऱम् सुकुमारभाष ;
अल्लायिकलासेतुहिमाचलान्त–
माविर्भविक्किल्लितुपोलिळक्कम् ।

अकन्नु तन् 'मास्मर' विद्ययालि–
ङ्ङालस्यमुण्टाक्कियोरन्धकारम् ;
पुण्यप्पुळप्पार्न्न पुराणदेशम्
पुणर्न्नु वीण्टुम् पुतुपोल्प्रकाशम ।

विशिष्ट सन्देशमरिञ्ञतापि-
वीचिप्परप्पुम् गिरितन् निरप्पुम्

पत्तों के कम्पित अधरों पर
छा गया है तुम्हारा पुण्यनाम ।

अविचल रहनेवाले ये हरे-भरे पर्वत
पुलकित हो विस्मय से विस्फारित गुहा-मुख,
निहारते रहते हैं तुम्हारी गति
हे विश्व के एकमात्र विस्मायक !

कहते हैं, सुखपान-मत्त जागरण-विरोधी
कि तुम पागल हो—
किन्तु हे पुलकप्रद,
उनकी इस अज्ञता पर द्रवित होकर
तुम उसाँसें भर लेते हो ।

तुम्हीं हो
विगत काल के जीर्ण-मलिन धरातल को
नयी द्युति से जगमगानेवाली
मूल प्रकृति के मन में अंकुरित
अप्रतिरोध्य नव-संकल्प !

जानता है चराचर जगत्
तुम्हारी चतुर सुकुमार भाषा ;
अन्यथा,
आसेतु हिमाचल
ऐसा स्पन्दन कैसे आविर्भूत होता ?

हट गया है वह अन्धकार
जिसने भर दिया आलस्य अपने इन्द्रजाल से यहाँ,
सुनहले नवीन प्रकाश को
फिर से आलिंगन कर रहा है
यह पुण्यपूर्ण पुरातन देश ।

जान गये हैं तुम्हारे सन्देश को
ये शैल-शृंखलाएँ और यह तरंगित विपुल पारावार ।

आटुन्नु शैलद्रुमराजि, याञ्ञा–
ञ्ञाटिच्चिटुन्नू कटलिन्टे चित्तम् ।

एरिञ्ञिटुन्नू निज जीवितङ्ङ–
ळेन्नाट्टिलेप्पूक्कळ् भवान्टे मुम्पिल् ;
मत्तेटि्टटुन्नुण्टवतन् सुगन्ध–
मटुत्तोलिक्कुम् पुष्कळ्क्कुकूटि ।

मुळय्क्ककत्तुम् भवदीयशक्ति
मूळुन्नु चैतन्यदनाम् महात्मन् !
प्रेमप्पुतुप्पुंचिरियार्न्नु तम्मिल्—
क्कैकोर्त्तु निल्क्कुन्नितु नालु दिक्कुम् ।

चुवन्नु पच्चच्चु वेळुत्तु मेले
चुटि्टप्परक्कुन्नु मुकिल्प्पताक ;
उन्मेषदायिन् ! मम जन्मभूमि—
युगन्तिन् छाययिल् निन्निटावू !

—१९२८

लो, पहाड़ों की पादप-पंक्तियाँ
नृत्य कर रही हैं,
और सागर का उरस्थल भी
उच्छलित और तरंगित हो रहा है।

मेरे देश के सुमन
समर्पित कर रहे हैं आपको अपना जीवन,
उनकी मदिर गन्ध वना रही है उन्मत्त
आस-पास बहनेवाली सरिताओं को।

हे चैतन्यदायक महात्मन्,
गूँज रही है तुम्हारी शक्तिध्वनि वेणुवन में !
प्रेम-मग्न मन्दस्मित के साथ
खड़ी हैं चारों दिशाएँ हाथों में हाथ डालकर।

ऊपर मँडरा रही है
श्वेत-लाल-हरी मेघपताका,
हे उन्मेष-दायक !
मेरी जन्मभूमि जाग उठे
और खड़ी रहे सदा इसी झण्डे की मंगलछाया में !

—१९२८

मेघगीतम्

निष़लुम् वेळिच्चवुम्
　　　　लीलयिल् निर्म्मिच्चूषि़-
क्कष़ुम् वचित्र्यवुम्
　　　　वायि़प्पय्क्कुम् सवितावे,
हिमशीकरत्तिलुम्
　　　　सागरत्तिलुम् काणु-
ममलप्रकाशमे,
　　　　लोकचक्षुस्से, स्वामिन्,
गेयमाम् भवदीय-
　　　　माहात्म्यमाक्कोंतावू,
नीथल्लो सनातनन्
　　　　प्रकृतिप्रवर्त्तकन् ।
प्रेमत्ताल् भवानोटु
　　　　लोकबन्धो, नी लोक-
स्तोमत्तेव्बन्धिक्कुन्नू,
　　　　नी कालम् निर्म्मिक्कुन्नु !

पल धातुजातमामंगलेपनम् पटि़्ट़
विलसुम् वनप्पच्चमेल्क्कच्चयुलयवे,
कुटिलायतम् सरिल्क्कुन्तळमषि़ञ्ञु त-
न्नुटलिल् सुमाकीर्ण्णम् चितरि़क्किटक्कवे,
अलयाषि़याम् ञेरि़प्पट्टुष़ञ्ञ्ञाषयवे,
मलरिन्मणम् वीशुम् वीर्प्पुकळुदियक्कवे,
राविनालिटयि़क्कटेक्कण्णिम चिम्मिव्भूमि-
देवि चेय्युन्नू नित्यशयनप्रदक्षिणम्,
आरुटे पवित्रमाम् पादत्तिन् परागङ्ङळ्
तारकळ्, सर्वोपास्यनाकुमाव्भगवाने ।

मेघगीत

हे सविता,
छाया और प्रकाश की सलील रचना कर
जग को सुन्दर और विचित्र बनानेवाले,
ओस-कण में और महासागर में
समभाव से प्रतिबिम्बित होनेवाले अमल प्रकाश,
लोकचक्षु, हे स्वामिन्,
कौन कर सकता है कीर्तन
तुम्हारी गेय महिमा का ?
तुम हो सनातन, प्रकृति के प्रवर्तक !
प्रेम की डोर से बाँध लिया है तुमने
अखिल विश्व को,
तुम्हीं करते हो निर्माण काल का भी !

यह धरित्री-देवी,
विविध धातुओं के अंगरागों से अंकित
मनहर कानन-हरीतिमा के उजागर उत्तरीय से शोभित
अंगों पर बिखरे हैं सुमन
शोभित है वक्र चंचल सरिताओं की कुन्तल राशि से
ऊर्मिल सागर के विलुलित शिथिल वसन धारण कर
कुसुम सुरभित निश्वास के साथ
मूंद लेती है रजनी की पलकें,
कर रही है तुम्हारी शयन-प्रदक्षिणा ।
हे सर्वोपास्य,
ये तारागण हैं तुम्हारे पदयुगल के पराग मात्र ।

मूकमामोरु वेरुम—
मुकिल् ञान्, घनीभूत–
लोकबाष्पम् निन्सर्ग–
सामर्थ्यनिदर्शनम् ।
इन्नमेलिरुण्टोरेन्
जीवितम् भवान् तीर्त्तू
चित्रवेष्टितन् वेण्म
वितय्क्कुम् करत्तिनाल् ।

हा ! जडात्मकनाम् ञा–
नत्भुतसनातन–
तेजस्से, रूपान्तरम्
प्रापिप्पू वीण्टुम् वीण्टुम् ।
सर्वदा तमोमय–
माकुमेन्नात्माविकल्
दुर्वहमोरुग्राग्नि–
येन्ति ञानुषलुन्नु ।

मामकेच्छय, ल्लाक्कुम्
दृश्यमल्लातुळ्ळेतो
भीमशक्तितन्लील
मल्गति नियन्त्रिप्पू ।
ओन्नतूतियाल् धीर–
सागरम् जाताकम्पम् ;
उन्नतमहागिरि
मून्नालु मणल्त्तरि ।
ज्ञानपेतलक्ष्यमा–
याकयाल् भ्रमिक्कुन्नु
वानत्तिलिट्टिट्टश्रु
वार्त्तुवार्त्तीशालम्बि ।

मैं हूँ क्षुद्र मेघ, निरीह,
और हूँ संसार का घनीभूत वाष्प,
मैं तुम्हारी सृजन चातुरी का निदर्शन हूँ।
हे चित्रचेष्टित,
प्रकाश बोनेवाले अपने हाथों से ही तो
तुमने बनाया है मेरा जीवन
कालिमामय !

हे निरतिशय सनातन तेज,
मैं जडात्मक
बारम्बार रूपान्तर पाता हूँ,
अपनी तमोमय आत्मा में
दुर्वह ज्वाला लिये सर्वदा भटकता फिरता हूँ।

नहीं है मेरी इच्छा से यह,
करती है मेरी गति का परिचालन
कोई महती अदृश्य शक्ति।
उसकी एक फूंक से
घीर सागर प्रकम्पित होता है,
उन्नत महाकाय पर्वत
परिवर्तित होता है लघु धूलि-कणिकाओं में।
मैं तो लक्ष्यहीन हूँ,
इसलिए आँसू बहाता हुआ
नभ में आशावलम्बी होकर
भटक रहा हूँ।

३

चित्रहेतियाम् देव,

नाकत्तिल्क्कूटिज्जैत्र–

यात्र नीयारंभिक्के–

येन्नुळ्ळु पोट्टुम् शब्दम्

भेरिनादमामेंकिलिन्द्रकार्म्मुकरत्न–

तोरणम् केट्टान् वेणमेन्नाकिलेन् हृद्रक्तम्,

एन्निरुण्ट जीवित–

मानीलत्तषयायि

मुन्निलित्तिरि नेरम्

मिन्नुवान् मतियाकिल्,

नेंचकत्ताळिक्काळुम् दुस्सहानलज्वाल

कांचनपताकयाय् काल्क्षणम् भविच्चाकिल्,

अषकार्न्न वीथियिल् पट्टुकळ् विरिप्पाने–

न्नषलिन् निषलिनालेङ्ङनुम् साधिच्चाकिल्,

पनिनीर् तळिप्पानेन् नेत्रनीरुतकुकि,–

लिनियुम् ञानाशिप्पू मेघमायृत्तन्ने तीरान्।

मलिनम्, क्षणनाशि,–

लेन्नालेन्ता मार्ग्गत्तिल्

ज्वलिताभिमानम् हे,

देव! निन्नभिमुखम्।

निन्नावू हर्षस्तंभलज्जादिभावत्ताले

वन्नाळुम् नानावर्ण्णम् कविळिल् पकर्न्नु ञान्!

लोकत्ते प्रेमत्तिन्टे

वशवर्त्तियाक्कीटा–

नाकट्टे बाष्पापूर्ण्ण–

मेन् समार्द्रमाम् जन्मम्!

नित्यनामविटुत्तेस्सुप्रकाशसौन्दर्य–

मत्यन्तम् नुकर्न्नेन्टे हृदयम् तेळिञ्ञावु!

—१९३०

३

हे चित्रहेती भगवन् !
स्वर्गपथ से जब तू जैत्र-यात्रा करने लगता है
तब यदि मेरे हृदय के टूक-टूक होने की ध्वनि
बन सके तुम्हारा भेरी-रव,
यदि मेरे हृदय का शोणित काम आ सके
तुम्हारे हेतु तोरण बाँधने के,
मेरा श्यामल जीवन
हो सके थोड़ी देर के लिए ही सही, तुम्हारा अलंकार चिह्न,
मेरे अन्तरंग की असहनीय ज्वाला
बन जाये कांचन पताका,
मेरे दुःख की छाया
बिछा सके क़ालीन तेरे सुभग मग में,
मेरे आँसू छिड़का सकें गुलाब-जल,
तो मैं चाहूँगा यही
कि अगले जन्म में भी मैं मेघ ही बनूं।

मैं मलिन हूँ और हूँ भी नश्वर—
किन्तु इससे क्या ?
प्रोज्ज्वल गरिमा के साथ
हे देव, तुम्हारे सम्मुख
हर्ष-स्तम्भ-लज्जा आदि
विविध भावों की रंजक रंगीन छटा
कपोलों पर खिलाये,
खड़ा रह पाऊँ, और
मेरा आर्द्र बाष्पपूर्ण जीवन
जग को प्रेमाधीन करने में सफल हो।
हे सनातन,
तुम्हारे सुप्रकाश की सुन्दरता पाकर
मेरा मन जगमगाता रहे।

—१९३०

आ मरम्

आ मरम्—आमरमिन्नु काणुम्पोषुम्
कोळ्मयिर्. कोरियिटुन्नितेन् जीवनिल् !
कालिटरुन्नु ; जलार्द्रमाकुन्नु कण्–
पीलि ; व्रणितम् तुटिक्कुन्नु मन्मनम् ।
एन्करळे, नीयिनियुदिक्कात्त पू–
न्तिङ्ङळिनायिक्कुतिप्पतेन्तिङ्ङने ?
सन्तप्तजीवन्नु नष्टसुख स्मृति–
तन् तणल्पोलुमत्यन्तमाश्वासदम् ।
कालविहंगिक राप्पकलाकिय
लोलच्चिरकटिच्चेत्र मुन्पोट्टु पोय् ।
एत्र तारङ्ङळ् तेळिञ्ञु मरञ्ञुपो,–
येत्र पुष्पङ्ङळ् विरिञ्ञु कोषिञ्ञु पोय्,
चेतोहरङ्ङळाम् सन्ध्यकळेत्रपो–
येतो किनाविन् चुषियिलाणोक्केयुम् ।
"प्रेमत्तिनाल् ञानटिम" एन्निङ्ङने–
या मधुराधरत्तिकल्निन्नुम् स्वयम्
तू मधुस्यन्दम् नुकर्न्नु ञान् निन्नोरा
श्रीमन्निशामुखम् मात्रम् विभिन्नमाम् ।
अन्नत्ते नक्षत्रमन्नत्तेयन्तियु–
मन्नत्ते मन्दसमीरनुम् वेरेयाम् !

वह पेड़

वह पेड़ . . .
आज भी जब वह पेड़ दिखाई देता है
मेरे प्राणों में पुलक फूटने लगता है
पैर लड़खड़ाने लगते हैं
बरौनियाँ गीली हो जाती हैं
और व्याकुल मन स्पन्दित होने लगता है।
ओ मेरे मन !
जिसे आगे कभी उदित नहीं होना है
उस चन्द्रमा के लिए क्यों चौकड़ियाँ भरते हो ?
किन्तु, नहीं—तप्त प्राणों के लिए
लुप्त मधुर सुख की स्मृति की छाया भी
अत्यन्त आश्वासदायक हो सकती है।
पंख फड़फड़ाकर दिन-रैन के
कालविहंगिनी कितनी दूर चली गयी है !
कितने ही तारे टिमटिमाकर बुझ गये,
कितने ही सुमन खिल-खिलकर झर गये
कितनी ही मोहक सन्ध्याएँ अस्त हुईं—
हाँ, सब कुछ किसी स्वप्न के भँवर में घूम रहा है।
किन्तु वह सन्ध्या—
जब मैंने उन मधुर अधरों से
यह मधु स्पन्दी वाणी सुनी
"मैं अनुराग की दासी हूँ"—
वह कितनी भिन्न थी !
उस दिन के तारे कुछ और ही थे
उस दिन की सन्ध्या कुछ और ही थी
और, उस दिन का मन्द पवन भी भिन्न था !

अन्तिक्कतिरवप्पात्रत्तिल् नल्च्चुव-
प्पेन्तिय मद्यम् पकर्न्नु पकलुमाय्
स्वैरम् नुकर्न्नु मदिच्चु सन्ध्यादेवि
पारम् तुट्टुत्त कविळुमाय् निल्क्कवे,
मर्म्मरत्ताल् प्रतिषेधवपुसुकळ्
नर्म्मपरनाय तन्नोटुरयिक्कलुम्
भीरुलतकळ्तन् वेपितांगङ्ङळे
मारुतन् पिन्नेयुम् पिन्नेयुम् पुल्कवे,
प्रीतित्रपाभरमूकमाय्त्तीर्न्नु कण्
पातितुरन्नेमषुन्तिमलरिये
सौरभ्यमत्तमधुकरम् चुम्बनो-
दारसौख्यत्ताललम् मदप्पिक्कवे,
दूरेयाणेंकिलुम्, वीक्षणत्ताल् चिल
तारकळ् भावम् ग्रहिप्पिक्कवे स्वयम्,
नन्मणम् वीशुन्न निश्वसितत्तिनाल्
रम्यपुष्पाळि मरुपटि नल्कवे,
पोमहर्ल्लक्ष्मिये मिन्नुन्न पाटल-
हेमनीराळांशुकत्तिन्टेयंचलम्
व्योमम् ग्रहिच्चु चुम्बिच्चु चुम्बिच्चुतान्
तामसिप्पिक्कुन्नु पिन्नेयुम् पिन्नेयुम् ।

अट्टम् चुरुण्ट करिम्कून्तल् केट्टिव-
च्चोट्टप्पनीरलर् चूटियतिन्नुमेल्
हारियामुच्चलवक्षसिल्नेरिय
सारियश्रद्धमाम् मट्टिलिट्टङ्ङने,
अत्यन्तमोहनम् नूतनयौवनम्
प्रत्यंगकम् विकसिक्कुमटलुमाय्

सान्ध्य-सूर्य के चषक में
भरकर अरुणासव
पान कर रही थी सन्ध्यादेवी दिन के संग
मदारुण गुलाबी कपोल थे उसके।
रसिक पवन
चकित लतिकाओं के अंगों को
वारम्बार आलिंगन में भर रहा था,
यद्यपि वे करती थीं प्रतिरोध मर्मर स्वर में
सुरभि-मत्त मधुकर
प्रीति-संभार से मौन-मूक
अध-खिली चमेली को
उदार चुम्बन रस से
बना रहा था उन्मत्त !
नभ में दूर स्थित तारे
जता रहे थे भाव लोल लोचनों द्वारा,
उत्तर दे रही थीं
रम्य सुमनराजियाँ
सुरभिल निश्वासों के द्वारा,
कामुक व्योम
गमनोद्यत दिन-लक्ष्मी के
सौवर्ण कौशेय का अंचल पकड़कर
चूमता था उसे वारम्बार—
जाने ही नहीं देता था।

खड़ी थी वह
घुँघराली नील केशराशि का जूड़ा बाँधे
गुलाब-शोभित,
हिल्लोल मनोहर उरोजों पर डाले मसृण-साड़ी,
अंग-अंग में प्रस्फुटित
मोहक यौवन से उद्‍भासित तन,

प्रेमवाचालमाम् स्निग्धार्द्रपक्ष्मळ-
श्यामळक्कण्कोणिनालतिरम्यमाय्
मामकयौवनस्वप्नङ्ङळोक्केयुम्
कोमळरूपमेटुत्ततिन्मातिरि
आ मधुभाषिणिया निन्न निलिपन्नु-
मामत्तमाक्कुन्नु मामकात्माविने !

ओमलाळ् पूर्ण्णसौभाग्यमाम् जीवितम्
हा, मल्क्करत्तिल् सबाष्पमर्प्पिक्कवे
ञ्ञानभिमानिच्चु साम्राज्यनायक-
स्थानम् लभिक्कुन्न निस्वनेप्पोलवे !

आ निमिषत्तिन्टे दुर्ल्लभसौभगम्
ञानिन्नयविर्क्कीटुवान् मात्रमाय् ।
प्रेममहाजैत्रयात्रयुम् निल्क्कणम्
प्रेतप्परम्पिल्, मृतिराज्यसीमयिल् !
चारमाय्त्तीर्न्निता लावण्यसर्वस्व-
सारवुम् मामकसंकल्पनाकवुम् ।

कार् विल्लु काल्क्षणम् कोण्टु मायिल्लयो ?
पूविन्नोरु पकल् मात्रमत्रे निल ;
नेञ्चिन्प्रभातम् मुकरुम् हिमबिन्दु
पुञ्चिरिक्कोळ्ळुम्पोषेक्कुम् मर्ञ्ञुपोम् ;
मानत्तु मायुन्नु मिन्नलुदिच्चुटन् ;
माधुर्यधर्म्मम् स्वभावक्षणिकत !

स्निग्ध गीली पलकों से युक्त
प्रेम-वाचाल नील नयनांचला
मेरे युवा हृदय के सपनों की साकार
प्रतिमा बनी हुई,
आज भी मधुभाषिणी की उस
मुद्रा-भंगिमा की याद
बना देती है मेरे मन को उन्मत्त !

जब कोमल कामिनी ने
अपना पूर्ण सुभग जीवन
सानन्दबाष्प सौंपा मेरे हाथों में
तो मैंने अनुभव किया सगर्व,
मानो कोई अकिंचन
अकस्मात् बन गया हो राजाधिराज !

अब तो उस घड़ी के दुर्लभ सौन्दर्य का
केवल रोमन्थ करने के लिए ही मैं बच गया हूँ।
हाय, प्रेम की विजय-यात्रा को भी
रुक जाना पड़ता है श्मशान में
मृत्यु की साम्राज्य-सीमा श्मशान में पहुँचकर !
लुट गया लावण्य का वह साम्राज्य
और नष्ट हो गया मेरे स्वप्नों का स्वर्ग !

पल-भर में ही मिट जाता है इन्द्रधनुष,
मात्र दिन-भर में मुरझा जाता है सुमन;
अपने वक्षस्थल में प्रभात का चुम्बन पानेवाली हिमकणिका
मुस्कराने भी नहीं पाती है कि मिट जाती है
बिजली नष्ट हो जाती है उत्पन्न होते ही;
क्षणिकता ही तो है धर्म लावण्य का !

प्रेमवाचालमाम् स्निग्धार्द्रपक्ष्मळ–
श्यामळक्कण्कोणिनालतिरम्यमाय्
मामकयौवनस्वप्नङ्ङळोक्केयुम्
कोमळरूपमेटुत्ततिन्मातिरि
आ मधुभाषिणिया निन्न निलिपन्नु–
मामत्तमाक्कुन्नु मामकात्माविने !

ओमलाळ् पूर्ण्णसौभाग्यमाम् जीवितम्
हा, मल्क्करत्तिल् सबाष्पमर्प्पिक्कवे
ञानभिमानिच्चु साम्राज्यनायक–
स्थानम् लभिक्कुन्न निस्वनेप्पोलवे !

आ निमिषत्तिन्टे दुर्ल्लभसौभगम्
ञानिन्नयविरक्कीटुवान् मात्रमाय् ।
प्रेममहाजैत्रयात्रयुम् निल्क्कणम्
प्रेतप्परम्पिल्, मृतिराज्यसीमयिल् !
चारमायत्तीर्न्निता लावण्यसर्वस्व–
सारवुम् मामकसंकल्पनाकवुम् ।

कार् विल्लु काल्क्षणम् कोण्टु मायिल्लयो ?
पूविन्नोरु पकल् मात्रमत्रे निल ;
नेञ्चिन्प्रभातम् मुकरुम् हिमविन्दु
पुञ्चिरिक्कोळ्ळुम्पोषेक्कुम् मरञ्ञुपोम् ;
मानत्तु मायुन्नु मिन्नलुदिच्चुटन् ;
माधुर्यधर्म्मम् स्वभावक्षणिकत !

स्निग्ध गीली पलकों से युक्त
प्रेम-वाचाल नील नयनांचला
मेरे युवा हृदय के सपनों की साकार
प्रतिमा बनी हुई,
आज भी मधुभाषिणी की उस
मुद्रा-भंगिमा की याद
बना देती है मेरे मन को उन्मत्त !

जब कोमल कामिनी ने
अपना पूर्ण सुभग जीवन
सानन्दबाष्प सौंपा मेरे हाथों में
तो मैंने अनुभव किया सगर्व,
मानो कोई अकिंचन
अकस्मात् बन गया हो राजाधिराज !

अब तो उस घड़ी के दुर्लभ सौन्दर्य का
केवल रोमन्थ करने के लिए ही मैं बच गया हूँ।
हाय, प्रेम की विजय-यात्रा को भी
रुक जाना पड़ता है श्मशान में
मृत्यु की साम्राज्य-सीमा श्मशान में पहुँचकर !
लुट गया लावण्य का वह साम्राज्य
और नष्ट हो गया मेरे स्वप्नों का स्वर्ग !

पल-भर में ही मिट जाता है इन्द्रधनुष,
मात्र दिन-भर में मुरझा जाता है सुमन;
अपने वक्षस्थल में प्रभात का चुम्बन पानेवाली हिमकणिका
मुस्कराने भी नहीं पाती है कि मिट जाती है
बिजली नष्ट हो जाती है उत्पन्न होते ही;
क्षणिकता ही तो है धर्म लावण्य का !

रागमे ! नीयोरु पोल्पनिनीरलर् :
वेगम् सुभगदलङ्ङळुतिर्न्नुपोम् ;
केवलम् मुळ्ळुकळ्कोण्टु कीऱुन्नु नी
जीवनेप्पिन्ने ; वेरुक्कुन्नु निन्ने ञान्

—१९३०

हे अनुराग,
तुम हो स्वर्णिम गुलाब
झर जाते हैं जल्दी ही सुन्दर दल—
फिर काँटों से बेधते हो तुम हृदय—
तुम से मैं घृणा करता हूँ।

—१९३०

श्री

इल्लाय्कयल्ल समरेच्छ ; भटाग्निमन्नु
पुल्लायिरुन्नु मरणम् रणमेन्नु केट्टाल् ;
निल्लाते पोरिनु निजालयमेत्तुवाना-
युल्लासि विक्रमनिटय्क्कु तिरिच्चु पोन्नु ।

क्ष्वेळाघनस्तनितमार्न्नु करोच्चलत्ताम्
वाळाय मिन्नलोट्टु वाशि पिटिच्चटुत्ताल्,
चूळातेयिल्ल चुणयेरिय शत्रुयोध-
काळाहिमण्डलियिलोन्नुमवन्टे मुम्पिल् ।

तन् नाटिनाणु पट ; मातृधरित्रियेन्नु
चोन्नालयाळ्क्कु परदेवतयायिरुन्नु ;
अन्नाथतन् महितवेदियिलात्मरक्तम्
अन्नाळोषुक्कुवतिनुत्सुकनायिरुन्नु ।

पारम् रसत्तोटरिसैनिकयूथरक्त-
पूरत्तिलाण्टवनोराण्टु पुळच्चु नीन्ति ;
दूरत्तिलाणिनियुमज्जयलक्ष्मि निल्क्कुम्
तीरम् ; गृहत्तिलणवान् कोतियायि तानुम् ।

स्नेहत्तिनालुरुकुमेकमनस्सेपुम् तल्-
गेहत्तिल् निन्नुमोरु वीर्प्पविटत्तिलेत्ति ;
साहन्तशत्रुकरवाळ् वेऋमोलयेतु-
देहत्तिनाच्चेरिय काट्टतिनेत्तळित्ति ।

स्त्री

नहीं था ऐसा कि उस वीर योद्धा के मन में
समर की इच्छा न रही हो
रण था उसके लिए तृणवत्——तो भी
वह विलासी 'विक्रम' भरे युद्ध के बीच
छोड़-छाड़कर समर लौट पड़ा आतुर अपने घर।

उसकी हुँकार ऐसी जैसे बादलों की गरज
कर की कृपाण ऐसी जैसे चमचमाती तड़ित्
जब वह सामर्ष संघर्ष करता तो बड़ी से बड़ी रिपु-मण्डली
काल-सर्प-कुण्डलियों-सी सभय सहम-सिकुड़ जाती।

चल रहा था समर उस मातृभूमि की रक्षा के लिए
जो थी उसकी आराध्य देवी जिसकी पवित्र बलिवेदी पर
वह सन्नद्ध रहता था
सदा अपना रक्त बहाने के लिए।

शत्रु-सैनिक-समूह की रक्त-सरिता की धारा में वह
तैरता रहा था वर्ष भर
किन्तु जयलक्ष्मी खड़ी रही दूसरे ही तट पर
वह लालायित हो उठा घर पहुँचने के लिए।

प्यार से भरा जो एक हृदय उसके भवन में द्रवित हो रहा था
उसी का एक निश्वास उसके मन में आ लगा; कर दिया उसने
वह तन प्रक्षीण जिसके सामने शत्रुओं की दर्पीली असि
रह जाती थी काँपकर एक सूखे पत्ते की तरह!

प्रेमत्तिनुळ्ळ दुरितक्रममाम् प्रभाव–
स्तोमम् महात्भुतदम् ; अल्पमतेट्ट्ॅवेन्नाल्
श्रीमज्जलद्रवि ; विकस्वरपुण्डरीकम्
भीमन् मृगाधिपति साधुतयाळुमेणम् ।

प्रेमम् नटत्तुवोरु सैनिकशासनत्ति–
नामत्तनायेतिर् परञ्ञु तटञ्ञु निल्पान्,
सामर्थ्यमिल्लवनु, तानतु चेय्तुपोयाल्
भूमण्डलम् चुटल ; कीर्त्ति वेळुत्त चारम् !

प्राणाधिनाथये वियोगविषण्णयायि–
क्काणामयाळुटे विचारशतत्तिलेल्लाम्
एणाङ्कलेखयेयकन्नलसम् नभस्सिल्
वाणालुमाषियुटे कोळ्ळलयिल्क्कणक्कें ।

तान् जागरूकतयोटेट्टिट्टवे, रणोर्वी–
संजातमत्तद्रतरं भेरिरवत्तिनेक्काळ्,
कञ्जातपेलव वधूपदनूपुरत्तिन्
शिञ्जारवम् श्रुतिपुटम् स्फुटमाय् श्रविच्चू ।

नीराल् ननञ्ञोरिम नीलिम पूण्टु नीण्टो–
रारागविह्वल विलोलविलोचनङ्ङळ्,
नाराचमेय्युकिलुम् एतुमटन्निटात्त
धीराशयन्टे हृदयत्ते नुरुक्कि नूराय् ।

तारुण्यमाम् नववसन्तमुदिच्चु रण्टु
वारुट्ट पोन्नुकुळिर् मोट्टु कुरुत्त मारुम्
चारुत्वमार्न्न निषल्पोलेयषिञ्ञु मेले
चेरुम् करिंकुषलुमेङ्ङने विस्मरिक्कुम् ।

कैसा विस्मयकर होता है प्रेम का दुर्निवार प्रभाव
उसके सामने मध्याह्न का प्रखर सूर्य
बन जाता है सुकोमल मनहर कमल
भीम मृगाधिपति बन जाता है सीधा-सादा मृगशावक ।

वह था प्रेमोन्मत्त, प्रेम के कठोर सैनिक शासन के विरुद्ध
नहीं बोल सकता था वह एक शब्द
यदि उसका प्रेम-पथ अवरुद्ध कोई करे तो
भूमण्डल बन जायेगा स्मशान, कीर्ति बनेगी श्वेत भस्म !

कल्पनाओं में वह देखता था अपनी प्राण-प्रिया को विरह-विषण्ण
जैसे सागर अपनी वीचियों में देखता है
प्रतिबिम्ब उस शशि-कला का
जो रहती है ऊपर नभ में बहुत दूर ।

रणक्षेत्र में युद्ध की सजग वेला में
सुनायी पड़ता है जो मन्द गम्भीर भेरी-रव
उससे भी अधिक स्पष्ट सुनायी पड़ने लगी उसे
प्रेयसी के पैरों की नूपुर-झंकार अपने कानों में ।

प्रिया की हठीली गीली पलकें और
राग-विह्वला नीली-नीली लम्बी आँखें
दोनों की स्मृति ने कर दिये शत-शत खण्ड
उस धीर-गम्भीर हृदय के जिससे टकराकर
हो जाते थे शत्रुओं के तीर कुण्ठित ।

कैसे भूल सकता है वह
तारुण्य के नव वसन्त का उदय
कमनीय सौवर्ण कुड्मलों से सुशोभित वह उर
विश्लथ होकर अंगों पर पड़ी रहनेवाली नील-वेणी !

इल्ला तनिक्कु चिरकानिमिषत्तिलङ्ङु–
चेल्लान् ; युवावतु निनच्चु शपिच्चु तन्ने,
अल्लाम् करिंकटल् ; अहर्मरुभूतलङ्ङळ्
एल्लाम् कटन्नु ओटि कोण्टवनेत्ति नाट्टिल् ।

नानापदानमियलुम् भटनेत्तियप्पो–
ळानाट्टु कोळ्मयिरियन्नु तृणांकुरत्ताल्,
मानातिगोत्सुकत पूण्ट मरुत्तु वेप्पो–
प्पानाय् मुतिर्न्नितु मुकर्न्नु मुकर्न्नु मेय्यिल् ।

वेण्पू निरञ्ञ चरमांशुमदंशुमाल
पोन् पूशुमग्रमोट्टु मुल्ल पटर्न्नु केरि
संपूर्णशोभमोरु कुन्निनट्टुत्तु काणुम्
तन् पूर्वपुण्यसदनम् नयनम् विटर्त्ति ।

वेगम् गतिक्कधिकमाय् ; युवयोधभाग्या–
भोगप्रसन्नवदनेन्दुदिदृक्षयालो,
रागम् क्षणत्तिलुयरुम् हृदयत्तिल् निन्नु–
मागण्डभित्तितलमेत्ति ; यट्टुत्तु सौधम् ।

आळट्ट् विण्मुरियिलेरि निरन्न तारा–
गोळङ्ङळाम् लिपिकळार्न्नोरु कामलेखम्
चीळेन्नु नीर्त्तिळवु कोमळमाय सान्ध्य–
वेळय्क्कु पूंकविळ् तुटुत्तु मिन्नि ।

लोलस्वरम् सुभगनिम्नग पाट्टु पाटि–
क्कूलद्रुमङ्ङळे मयक्कि मदिच्चोलिच्चु ;
मेलत्रयुम् पुळकमेन्ति मेलिञ्ञ मेघ–
मालय्क्केपुम् कुळिर्मुखम् मुकरुन्न शैलम् ।

चाहता था वह उड़कर घर पहुँचना उसी पल
किन्तु पंख कहाँ ? कैसा अभागा हूँ, उसने सोचा।
किन्तु रजनी-रूपी नीलसागर को और
दिन रूपी मरुस्थल को पार करके
पल-भर में वह अपने देश पहुँच ही गया।

विविध विरुदावलियों से विभूषित वह अवदानी वीर योद्धा
जब आ पहुँचा तो देश की भूमि पुलकित हो उठी
रोमांचित तृणांकुरों से; अभिमान और औत्सुक्य से भरे पवन ने
लहराकर उसके शरीर के श्रम-सीकरों को चुम्बन से पोंछा
—उसे आश्वस्त किया।

रम्य पहाड़ी की उपत्यका में स्थित उसका सदन
उसके पूर्व पुण्यों का फल, आँखों के सामने उत्फुल्ल हो उठा
उस पर फैली हुई थी धवल कुसुम-राशियों से भरी जूही वल्लरी
जिस पर चढ़ा रही थीं सोने का मुलम्मा अस्तंगामी सूर्य की रश्मियाँ।

युवक योद्धा आतुर था अपनी भाग्य-सर्वस्व का चंद्रमुख निहारनेको
शायद इसीलिए भर गया उसकी वेग गति में
हृदय उच्छलित हो रहा था प्रतिपल,
अत: उसमें का राग चढ़ गया उसके कपोलों पर, आ पहुँचा समीप सौध।

कोमलांगी सन्ध्या
विजन आकाश के सौध में पहुँचकर
तारक लिपियों से अंकित काम-लेख को जब खोलकर वाँचने लगी
तो उसके मृदुल कपोल आरक्त होकर चमकने लगे।

सुभग सरिताओं ने लोल स्वर में गीत गाया—
बढ़ गयीं आगे तट के तरुओं को गान-मग्न बनाती हुई
कृशांगी नीरद-माला का मुख चूम-चूमकर
पर्वत नख-शिख पुलकित हो गया।

आसन्नरात्रियुटे काल्च्चुवटोच्च केळ्प्पा–
नासक्तमाम् गगनमन्यविचारमेन्ये
श्वासम् विटाते निल कोण्टु ; युवावणञ्ञु
वासस्थलत्तु निज वाजियिल् निन्निऱङ्ङि ।

पारम् कितप्पोरु बहिश्चरजीवनाय
धीरप्पटक्कुतिर तन् मुखमोन्नु मुत्ति ।
चारत्तु चाञ्ञ तरुशाखयिलाशु बन्धि–
च्चारक्तमानसनणञ्ञु गृहांकणत्तिल् ।

एन्नाणभूतचरवीरयशस्सु नेटि
य्यन्नाथनेत्तिटुवतेन्निलयिट्टु नोक्कि
तन्नार्द्रमाम् मिषियिटय्क्कु तुटच्चु मुट्.ट्–
त्तन्नाळुम् 'इन्दुमति' निल्क्कुकयायिरुन्नु ।

सोमन्ट् वेण्कतिरु कोण्टु चिरिच्चिरुन्नि–
ता मञ्जुळक्कुळिर् मणल्त्तेळिमुट्.ट्मेट्.ट्म् ;
आ मङ्कतन् शिथिलमेचककैशिकत्ति–
लोमन्निलावु पुतुपिच्चकमाल चार्त्ति ।

इल्ला विभूष, विलयेऱिय वस्त्रमोन्नु–
मल्ला धरिप्पतवळ् ; मेनि मेलिञ्ञिरुन्नु ;
सल्लाळनीयमळकम् पोटि पट्.टियिट्टु
वल्लातिरुन्नु ; मुटि केट्टियिरुन्नुमिल्ल ।

पूविन्नु वेण्टणियल् ; पुष्कलशोभ वेण्णि–
लाविन्नु वेण्टुटलोळिय्क्कु नवांगरागम्,
आविर्भवल्प्पुळकमात्तनुविल् प्पतिञ्ञु
तावित्तुळुम्पि निरवद्यनिसर्गकान्ति ।

आकाश खड़ा था आतुर साँस रोके अनन्य चित्त
आसन्न रजनी के पैरों की आहट सुनने के लिए
तभी वह युवक पहुँचा अपने सदन––
उतर पड़ा घोड़े से।

चूमा उसने मुख अपनी वहिश्चर आत्मा-से तुरग का
हाँफ रहा था जो समर-धीर
अत्यन्त वेग गति से चलने की थकान के कारण
बाँध दिया उसे एक समीपवर्ती विलम्बित शाखा से
पहुँचा वह प्रेमातुर वीर अपने घर के आँगन में।

"कब लौटेगा मेरा हृदयेश्वर अप्रतिभ यश को प्राप्त करके ?"
––पत्रा उलटकर देखती थी वह करती थी भाग्य-परीक्षा
पोंछती जाती थी वीच-बीच में अपनी अश्रुपूर्ण आँखें
खड़ी हुई थी अपने आँगन से 'इन्दुमती'।

मनोरम सिकताओं से भरा वह विमल आँगन
चन्द्रमा की धवल करों का स्पर्श पाकर उन्मुक्त हास कर रहा था
सजा रही थी मोहक चन्द्रिका उसके विश्लथ
कजरारे केश-पाशों को जूही की नवल-धवल मालाओं से।

नहीं थे उसके अंग पर गहने
नहीं था परिधान अमूल्य वस्त्रों का
शरीर वन गया था कृश, हो गयी थीं धूल-धूसरित
उसकी लालनीय अलकें, चिकुर था असज्जित।

किन्तु, क्या आवश्यकता है पुष्प को अलंकार की ?
सौन्दर्य से परिपूर्ण कौमुदी को अंगराग की ?
उसके शरीर पर विराजित अकृत्रिम सौन्दर्य
स्वयं पुलकित हो रहा था, नया निखार पा रहा था।

क्षामांगितन् मधुरदर्शनमाय तोळिल्
प्रेमाकुलन् मृदुलपाणियणच्चु निन्नु ;
रोमाळियोक्केयुमुणर्न्नु ; विटर्न्न कण्णा–
श्रीमान्टे नेक्कुं निपतिच्चतु पाति कूम्पि ।

चेरुन्नु सौरभमेषुम् चेरुकाट्ट्टु वीशि
वारुट्ट् रण्टु मुकिलिन् शकलङ्ङळ् तम्मिल् ;
चोरुन्नु चन्द्रकरचुम्बि मुखत्तु निन्नु
चारुस्मितम् तनु विकम्पितमायिटुन्नु ;

वल्लिक्कु मेल् तल चुरुण्टु तष्च्चुलञ्ञो–
रल्लिद्धकान्तियोटषिञ्ञु किटन्निषञ्ञु ;
चिल्लिल्प्पतिञ्ञु पविषङ्ङळ् ; तेळिञ्ञु तिंकळ्–
त्तेल्लिल्स्सुधाकणिक ; अङ्ङने निन्नितल्पम् ।

वीरन्नु तन् कठिनवेदनमाय मारिल्–
क्कूरम्पु कोण्टु निर्युम् मुरिविङ्कलेल्लाम्
आ रम्य कोमळ करत्तळिराल्त्तलोटु–
न्नेरत्तु वेण्ण पुरळुन्नतु पोले तोन्नि ।

चिन्नुम् करिंकुष्लषिञ्ञतोलुक्किटाते,
तन्नुन्नतस्तनपटम् शरियाक्किटाते,
मिन्नुन्न पोन्नुटलोटत्तरुणन्टे देहम्
ओन्नुल्वणप्रणय वीण्टुमणच्चु चोन्नाळ् :

"लावण्यमिल्ल, धनमिल्ल, कुलीनयेन्न
भावत्तिनिल्ल वक, एंकिलुमेन्तुकोण्टो,
जीवन्नु नेरिवळ् भवान ; नुकूलमाय
दैवत्ते येङ्ङनेयेनिक्कु पुकष्त्तिटेण्टा ?

वह अधीर युवक आकर खड़ा हो गया
उस कृश-रम्य रमणी के मनोहर कन्धे पर
अपना मृदुल हस्त रखकर, पुलकित हो गया अंग-अंग
अर्ध-मीलित नयनों की दृष्टि गयी उसकी ओर ।

सुरभित मन्द पवन चली तो मानो
दो मनोहर मेघ-खण्ड आपस में आ मिले
चन्द्र-किरणों से मण्डित मुख पर मन्द हास खिल उठा
और शरीर पुलक-विकम्पित हो गये ।

कांचन लतिका के ऊपर मानो कंटकित तम
मनोहारिता के साथ विश्लथ होकर आ झुका
शशि-कला पर सुधा-कणिकाएँ प्रस्फुटित हुईं
शीशे के खण्ड पर मानो विद्रुम जड़ गये—
इस प्रकार बीत गये कुछ क्षण ।

वीर की छाती में लगे वाण-व्रणों में जहाँ घोर पीड़ा हो रही थी
वहाँ चलने लगीं मनहर मृदुल करांगुलियाँ
उसे लगा जैसे नवनीत का लेप हो रहा हो ।

अपने खुले हुए केश-पाशों को बिना सँवारे
उन्नत उरोजों पर से खिसक आये उत्तरीय को बिना ठीक किये
रमणी ने आलिंगन-वद्ध कर लिया उत्कट प्रणय भाव से,
तरुण का तन अपने रम्य कांचन-गात से ।

"लावण्य नहीं मुझमें, धन नहीं मेरे पास
कुलीनता का अभिमान करूँ, सो भी नहीं
फिर न जाने क्यों मैं हूँ आपको प्राणों-सी प्यारी ?
किन शब्दों में सराहूँ मैं अपने इस अनुकूल भाग्य को ?

"भीतम् रिपुप्रकरनीरदमार्य, खड्ग–
वातत्तिनाल् च्चितरि ; दुर्द्दिनमस्तमिच्चु ;
स्वातंत्र्यहंसियुटे पूञ्चिरकाम् पताका–
जातम् जनिक्षितिनभस्सिल् निरञ्ञु तानुम् ।"

आ नेरमोतियुयरुम् त्रपयाल् शिरस्सु
ताने कुनिञ्ञ तरुणन्, "पट तीर्न्नतिल्ल ;
मानेलुमक्षि, यनुरागकृताज्ञ तळ्ळान्
ञानेर् नोक्कि ; योट्टुविल्ग्गतधैर्यनायि ।

भीरुत्वमो ! भयमेनिक्करिविल्ल ; वेल्ला–
नारुळ्ळु ? वेन्नतु जलाविलमीमिषिक्कोण्,
ई रुक्मरम्यतनु, वी नेट्टुवीर्प्पु ; पैन्तेन्
चोरुन्नोरीमोषि ; पराजितपौरुषन् ञान् !"

"हृन्नाथ, विक्रमनोरुत्तरनेन्नरिञ्ञ–
तिन्नाणु ; वीरवधुवेन्नु वृथा नटिच्चेन्
इन्नाटिनायिवळेयङ्ङु मरक्किलेत्र–
नन्नायिरुन्नु !" कुलनारि तटञ्ञु चोल्लि ।

"प्रेमत्तिनुळ्ळ विल ञानरियुन्नु, मातृ–
भूमण्डलत्तिनोटेषुम् मुर नोक्किटुम्पोळ्
तूमञ्ञुतुळ्ळियतु ; मट्टतनर्घहीरम् ;
धीमन् ! स्वधर्मरतनाम् नरनाणु धन्यन् ।

"जीवन् ज्वलिक्कुवतिनुळ्ळ विळक्कु देहम्
एवम् भ्रमिक्करुतु नश्वरमण्चेरातिल्
लावण्यमायतिलेषुन्न मयक्कुवेल ;
भावल्ककबुद्धि मिषि साहसि पोत्ति रागम् ।

शत्रुओं का भय-प्रकम्पित मेघ-समूह विदीर्ण हो गया
आपके असि की झंझावात से; उड़ने लगीं सब कहीं
जन्मभूमि के अन्तरिक्ष में पताकाएँ
स्वतन्त्रता की मुस्कान के पंख फैलाकर।"

युवक की लज्जा उत्तरोत्तर बढ़ रही थी।
बोला विनम्र होकर,
"समर का अन्त नहीं हुआ है अभी सुन्दरि, मृगशावकाक्षि,
बहुत किया मैंने यत्न अनुराग की आज्ञा टालने का
किन्तु अन्त में छूट ही गया मेरा धैर्य।

क्या यह भीरुता है? भय तो मैंने जाना ही नहीं,
कौन है मुझे पराजित करनेवाला?
किन्तु पराजित किया है मुझे इन सजल बाँकी चितवनों ने
इस स्वर्णिम रम्य शरीर-यष्टि ने, इस निःश्वास ने,
इन मधुस्रावी वैनों ने—मेरा पौरुष पराजित है इनके आगे।"

"हृदयनाथ, आज मालूम हुआ कि आप विक्रम नहीं, उत्तर[१] हैं!
हाय, व्यर्थ ही मैं गर्व अनुभव करती रही कि मैं वीर-पत्नी हूँ!
कितना अच्छा होता यदि इस मातृभूमि के लिए
भूल जाते आप मुझे"—बीच में ही टोककर कहा कुलांगना ने,

"मैं भी जानती हूँ प्रेम का मूल्य, किन्तु जब तुलना करती हूँ
उसकी मातृभूमि के प्रति कर्त्तव्य-भावना से, तो बन जाता है प्रेम
एक तुषार की कणिका-सा और दूसरा दिखाई देता है अनर्घ्य रत्न-सा
धीमन्, केवल वही मनुष्य धन्य है जो स्वधर्म में निरत है।

"यह शरीर केवल एक दीपक है, प्राणों के प्रज्वलित होने के लिए
मिट्टी के इस दीप के प्रति इस प्रकार मुग्ध हो जाना क्या उचित हुआ?
लावण्य तो मात्र इन्द्रजाल है उस दीप का
हाय, साहसी अनुराग ने आपकी बुद्धि की आँखें मूँद दीं।

१—महाभारत का एक कथा-पात्र जो युद्ध से डरकर रास्ते में ही रथ से उतरकर भागने का उपक्रम करने लगा था।

"आयायि ! दुस्सहमेनिक्कितु भारतीय–
स्त्रीयाणु ञान् ; सुविदितम् करणीयमिप्पोळ्
प्रेयान्टे धर्मपथसञ्चरणैकविघ्न–
मायालिरिक्करुतु" वाळु वलिच्चेटुत्ताळ् ।

"स्वातंत्र्यलक्ष्मियिह नाटकमाटुकल्प–
वातछलाल् सुरभियाम् नेटुवीर्प्पु विट्टुम्
स्फीतप्रभम् गगनवीथियिलुल्प्पताका–
जातच्चुळिप्पुरिकवल्लियिळक्कि निन्नुम् !

"वीरप्रभो, तव सुगेययशस्सु पौरि–
मारत्भुतोल्प्पुळककम्पकळ् पाटिटुम्पोळ्
स्फारप्रहर्षभरमेन् विजनश्मशान–
च्चारम् किटन्निळकिटुम् ; चरितार्थयाम् ञान् ।"

तन् गर्हणीयनिलयोर्त्तवळ् नैजजीव–
भंगम् वरुत्तिटुवतिन्नु मुतिर्न्नु निल्क्के,
अंगम् विर्प्पोरु विकारतरंगितान्त–
रंगन् पिटिच्चु करम् ; इत्तरमोति पिन्ने :

"प्राणाधिके, वेटिक साहसचिन्त निन्ना–
लाणाय विक्रमनिरंङ्कुकयायि वीण्टुम् ;
वाणालुमत्र मम पौरुषमोन्नुरच्चु
काणान् महासमरमाम् निकषोपलत्तिल् ।

"ई विश्रुतासियिनियज्जयलक्ष्मि पुल्कान्
भाविक्के वेक्कुमथवा मृति कै पिटिक्के ;
जीविच्चिटुन्नु मृतियाल् चिलर् ; चत्तु कोण्टु
जीविक्कयाणु पलर् ; मृत्युविल् ञान् मरिक्का ।"

नहीं सह सकती मैं इसे, मैं हूँ एक भारतीय वनिता
मैं जानती हूँ अच्छी तरह, अब क्या करना चाहिए मुझे
बने जो प्रियतम के धैर्यपथ-विहार की बाधा
उसे जीते रहने का अधिकार नहीं,"—खींच ली उसने अपनी तलवार

"कामना है मेरी कि यहाँ स्वातन्त्र्य लक्ष्मी
मन्द पवन के सुरभित निश्वास लेती
गगन में फहराती विजय-पताकाओं में अपना भ्रू-विलास व्यक्त करती
सदा नृत्य करती रहे !

हे वीर, जब पौर-वनिताएँ आश्चर्य से पुलकित
तुम्हारी कीर्ति के अनुरूप निर्मल यशोगान गायेंगी
तो दूर निर्जन स्मशान भूमि में मेरी चिता-भस्म
यदि चंचल-पुलकित हो उठेगी तो मैं धन्य हो जाऊँगी।"

सोचकर अपनी गर्हणीय दशा,
चाहा वीर भामिनी ने जीवन का अन्त करना,
तब विकम्पित शरीर, भावाकुल-उर युवक ने
हाथ पकड़ लिया और बोला।

"प्राणाधिके, छोड़ दो इस दुःसाहस का प्रयत्न,
तुम्हारे आदर्श से प्रेरणा पा यह विक्रम फिर से पुरुष बन गया है
लौट जाता है रणक्षेत्र की ओर; महासमर की कसौटी पर
खरा निखरेगा मेरा पौरुष, रहो तुम यहीं उसे देखने।

"म्यान में वापिस जायेगी यह तलवार अब उसी दिन
अब विजय-लक्ष्मी करेगी इसका आलिंगन
अथवा मृत्यु आकर मेरा हाथ पकड़ ले जायेगी
कुछ लोग मरण का वरण करके जीवन जीते हैं, कुछ लोग जीते हुए भी
मृत होते हैं—मृत्यु द्वारा मेरा मरण नहीं होगा कभी।"

राजन्यरक्तमोषुकुम् तरुणन्टे चत्तो–
रोजस्सु वीण्टुमुयिर् कोण्टतु पोले तोन्नि ;
तेजस्सुयर्न्नु मिषियिल् ; तिरिये गमिप्पा–
नाजन्मधीरनथ वाळवळोटु वाङ्ङि ।

वीरन्टे मारिलवळ् चाञ्ञु ; ननञ्ञु नील–
नीरन्ध्रपक्ष्ममिषि ; हृत्तटमुच्चलिच्चु ;
आ रम्यमाकिय विळर्त्त मुखत्तेयेरे–
नेरम् मुकर्न्नु पटयाळि ; परञ्ञु पिन्ने :

"पोरिल्ज्जयापजयनिश्चयमिल्ल ; चेन्नु–
नेरिट्टु निन्टे पतियावतिनर्हनावेन् ;
वैरित्वमट्टु विधि निल्क्कुकिलोत्तु चेराम्
चारित्रशालिनि, नमुक्किनियिस्थलत्तिल् ।

"मालार्न्निटाय्क ! पिरियामिनि ; यिल्ल, निल्कु–
न्नीला ; मुखाम्वुजमुयर्त्तु ; पोरुक्कणम् नी ।"
मेलातेयायिळकुवान् रसनय्क्कु, यात्र
लोलार्द्रलोचनपुटङ्ङळ् परञ्ञिरिय्क्काम् ।

तूमिन्नल् पोलथ मरञ्ञु युवाव ; वळ्क्कु
भूमिक्कु मेलिरुळ् पुरण्टतु पोले तोन्नि ।
यामिन्यधीशमुखि निन्नितु नोक्कियश्रु–
व्यामिश्रदृष्टिमुनया वषि नीट्टि नीट्टि ।

कार् मूटियम्पिळिये ; रावु विटुन्न वीर्प्पा–
लामूलशाखमोरु कोळ्मयिरार्न्नु वृक्षम् ;
नी मूकयायविटे निल्क्कुवतेन्तु ? राग–
व्यामूढनायिनि वरा धृतधर्मवोधन् ।

प्रतीत हुआ, मानो शौर्य-शोणित से भरा
नवयुवक का मृत उर फिर से जी उठा
आँखों में दीप्ति चमक उठी,
उठा ली उसने तलवार रणक्षेत्र में लौटने के लिए ।

हठात् वह युवती वीर योद्धा के वक्ष पर झुक गयी
सजल हो गये उसके सान्द्र नील-पक्ष्मल नयन
तरुण वीर देर तक वारम्बार चूमता रहा
उन पाण्डुर किन्तु कान्तिमय कपोलों को
बोला वह फिर यों रमणी से;

"समर में निश्चित नहीं जय, न ही पराजय
तो भी मैं रण में कूदकर प्रयत्न करूँगा कि बनूँ
तुम्हारे योग्य वीर पति; अनुकूल है यदि विधि हमारे
तो मिलेंगे हम फिर इसी जगह, पुण्य-चरिते !

"मत करो शोक, प्रिये, विदा दो मुझे
नहीं अब खड़ा रहना चाहता मैं अधिक देर
लो, उठाओ तो अपना मुख-कमल, क्षमा कर दो मुझे"—
जिह्वा तो हिल भी नहीं पायी उसकी—किन्तु कहे हों मानो
ये शब्द विदा के तरल वाष्पाकुल नयनों ने ।

बिजली की गति से वह युवक आँख-ओझल हो गया
युवती को लगा जैसे महोतल में सब जगत् अन्धकार हो गया
निशीथ के शशांक-सी वह सुमुखी साश्रु-लोचनों के कोनों को
फैला-फैलाकर राह की ओर ठगी-सी खड़ी देखती रह गयी ।

चन्द्रमा को घेर लिया बादलों ने, रजनी के निश्वास से
तरुओं पर नख-शिखान्त पुलक प्रस्फुटित हो गया—
अब क्यों खड़ी हो मूक यहाँ ? जान गया है वह युवक
अपने धर्म को; अब नहीं लौटेगा वह प्रेमान्ध होकर ।

धीरांगने, मिषि तुटय्क्कु, मुकन्नु कोळ्ळु–
का रागतुन्दिलपदङ्ङळ् पतिञ्ञ मण्णिल्
तारागणङ्ङळुटे निश्चलदृष्टि निन्ने–
त्तीरात्त लज्जयिललिक्कुकयिल्लयेंकिल् !

नी नाथजीवितरथम् शरियाय्त्तेळिच्चु
मानार्हमाम् वषियिल् विट्टु, कृतार्थयाकू ;
म्ळानाभमाक्करुतये, मुख, मिच्चरित्र–
मी नाट्टुकार्क्कु पुळकोद्गमकारियेन्नुम् !

—१९२८

पोंछ लो अपने नयन धीरवनिते !
यदि तारकदलों की एकाग्र दृष्टि
तुम्हें असीम लज्जा में डुबा नहीं देती तो चूम लो
उस मिट्टीको जिसे प्रेमवान प्रियने अपने पादस्पर्शसे पवित्र बनाया है।

तुमने अपने प्रियतम का जीवन-रथ
ठीक प्रकार से प्रचलित किया है,
ले गयी हो उसे अभिमान-योग्य मार्ग पर
अब बनी रहो कृतार्थ मत करो अपना मुख म्लान
तुम्हारा यह चरित देशवासियों के लिए सदा पुलकोद्गमकारी रहेगा।

—१९२८

विळम्बरम्

वेल नाळे ; जगत्तिनिन्नुत्सव–
वेळयेन्नु विळम्बरम् चेय्युक !
विक्रमियाय् विलसुमृतुकुल–
चक्रवर्त्ति, वसन्तमेषुन्नळ्ळि :
चित्रवर्ण्णक्कोटिकळिळक्किक्को–
ण्टन्न पारिप्पुळप्पु पूम्पाट्टकळ् ।

गानम् चेय्विनपदानमां वीर–
नानन्दत्तिन्टे साम्राज्यमाकवे
कोळ्ळचेय्तल्ली वन्निरिक्कुन्नत–
ङ्ङुळ्ळतोक्के यथेच्छमरुळुवान् ।
वेल नाळे ; च्चिल निमिषङ्ङळाल्
कालत्तेप्पिच्चयाक्कीययय्क्कुक !

'लोकत्तिन्निन्नोषिवुदिवसमा–
णाकमानम्' पवमाननिङ्ङने,
स्वामियाम् वसन्तत्तिन् विळम्बरम्
भूमि चुट्टि नटन्नरियिक्कुन्नु ।
ई मुतलिन्नवकाशमोप्पमाम् :
नामुणर्न्नतनुभविच्चीटुक ।

घोषणा

कर दो घोषणा
कि काम सब होंगे कल,
आज तो उत्सव की वेला है!
पधारे हैं
पराक्रमी वसन्त
ऋतुओं के सम्राट्!
देखो ना,
रंग-बिरंगी झण्डियाँ फहराती हुई तितलियाँ
उन्मत्त होकर मँडरा रही हैं!

गाओ उसकी विरुदावलियाँ,
वह वीर
आनन्द का साम्राज्य लूटकर
वहाँ की सारी सम्पदाएँ
जी-भर बाँटने को ही आया है।
काम सब होंगे कल,
अभी तो हम
कुछ क्षण
काल को भिखारी बनाकर छोड़ देंगे!

"जगत् के लिए आज छुट्टी का दिन है"—
अपने स्वामी वसन्त की यह घोषणा
पृथ्वी के चारों ओर घूमकर
मन्द पवन सब को सुना रहा है।
इस धन पर
सब का समान अधिकार है,
सब जागें और इसका उपभोग करें।

वीणक्कम्पि मुरुक्कु, मुरुक्कु मल्–
प्राणप्रेयसि, पाटू मधुरमाय् ;
गानत्तिन्टे लहरियिलेन्निले
ञानलिञ्ञलिञ्ञिल्लातेयावट्टे !
जीवितत्तिन्टे नूलिट्टालेत्तात्त
भूविलेय्क्कतिल्मुङ्ङि ञानेत्तट्टे !

हा, नियतितन्नाज्ञयाल् निर्त्तियो—
रा निलविट्टिळकात्त कुन्नुकळ्
कोकिलगळनाळत्तालुच्चत्तिल्
कूकिप्पोकुन्नितेन्तिनेन्निल्लाते !
पारतन्त्र्यत्तेयानन्दम् स्पर्शिक्के—
प्पारमुण्टायोरस्वास्थ्यमाय् वराम् ।

तुळ्ळिट्टुन्नू वेळिच्चम् कुटिच्चल–
तळ्ळिट्टुन्न मदत्ताल् मलरुकळ् ;
पुंचिरि तूकि निल्क्कुम् पकलिन्टे
कुंचिताळकमाकुम् निषलुकळ्,
संचलिप्पिच्चु सील्क्कृतिपूण्टिटा
संचरिप्पू विलासि मन्दानिलन् ।

मेच्चत्तिल्प्पल पूवच्चु तुन्निच्च
पच्चप्पट्टुटयाटयणिञ्ञता,
कोमळांगत्तिलाकेयकारणम्
कोळ्मयिर्‌क्कुळ पूण्टु मदाकुलम्
काननस्थलि निल्पू विहंगम–
स्वानत्ताले चिरिच्चु किलुकिले ।

प्रिये, और दृढ़तर कसो
अपनी वीणा के तार,
छेड़ो उस पर मधुर-मधुर तान,
गीत की ख़ुमारी में
विलीन हो जाये
मेरे भीतर का 'मैं'!
उसके सहारे पहुँचूँ
जीवन के सीमा-रहित अतल-तल तक!

नियति की आज्ञा से
अविचल विवश खड़े रहनेवाले ये टीले
कोकिल के कण्ठों में
अप्रत्याशित कूक उठते हैं,
जब परतन्त्रता को छूता है
आनन्द अपने कर-स्पर्श से
तो भारी हलचल उत्पन्न हो जाती है,
यही कारण है शायद।

प्रकाश का पान कर
उन्मत्तता की तरंगों में
नर्तन कर रहे हैं सुमन!
खड़ी है दिन-लक्ष्मी मुस्कुराती,
बह रहा है यह रसिक पवन स-सीत्कार
उसकी कुंचित अलक-छायाओं को
संचालित कर के!

यह वनस्थली खड़ी है,
विविध पुष्प-चिह्नों से सज्जित
हरित साड़ी पहनकर
अपने कोमल शरीर पर
अकारण अंकुरित पुलक से सिहरी
पक्षियों के कलरव में
वारम्वार कलहास करती हुई।

लोकचित्तम् समाक्रमिच्चीटुन्न
शोकयोद्धाक्कळायुधम् वय्क्कट्टे !
जीवनेट्.ट् मुरि्वुणङ्ङीटट्टे
केवलमतिन् पाटुमे काणाते !
ई वसन्तत्तिलारानुम् दुःखिच्चाल्
दैवकोपमवनिल् पतियुमे !

—–१९३४

दुनिया के दिल पर
हमला बोलनेवाले शोक के सैनिकों,
अब हथियार रख दो !
भर जायें जीवन के सारे घाव !
मिट जायें उसके सारे क्षत-चिह्न !
करेगा दुःख यदि कोई इस वसन्त में
ईश्वर-कोप की गाज उसी पर गिरेगी।

—१९३४

साक्षात्कारम्

मुकळिलेक्काळ् मुकळिलाय् वर्त्तिक्कुम्
सकलगमाम् सनातनाकाशमे !
परममेयमाय् शुद्धमाय् मिन्निटुम्
परमलावण्यतत्वमे, वन्दनम् !

गिरिपरम्पर दूरमोर्त्तंभुत—
भरितमुन्मुखम् नोक्कुन्नु निन् मुखम्,
करुककळो तणुत्त कविळ्त्तटम्
नेरुकयिलेट्ट् कोळ्मयिर्क्कोळ्ळुन्नु !
अकलेयेक्काळकलेयाकुन्नु नी—
यरिकिलेक्काळरिकिलाणत्भुतम् !

ओरु हिमकणम् मात्रमाणन्धया—
मिरविन् सन्ततियाय ञानेंकिलुम्,
भवदनुग्रहत्तिन्टेयाकस्मिक—
नवकिरणमेन्नात्माविलेल्क्कवे,
इटयिलुण्टायिरुन्न तमोमय—
पटमतिनालुटनकन्नीटवे,
क्षणिकमाकिलेन्त्तेन्टे यिज्जीवित—
कणिकयिल् कण्टितङ्ङ्येत्तन्ने ञान् ।
उलकम् कण्टु ञान् कालमाम् पुल्क्कूम्पिन्—
तलयिल् मिन्नुन्न तूमञ्ञुतुळ्ळियाय् !

साक्षात्कार

हे सर्वव्यापक,
सर्वोच्चि विराजमान,
अति अमेय, अनुपम लावण्य-सार,
परमशुद्ध, सनातन आकाश !
नमस्कार है तुम्हें !

ये पर्वत पंक्तियाँ
तुम्हारी दूरी से स्तब्ध
आश्चर्य के साथ मुँह उठाये
तुम्हें ताक रही हैं।
किन्तु दूब,
तुम्हारे शीतल कपोल का स्पर्श माथे पर अनुभव कर
पुलकित रहती है।
कितना आश्चर्य है यह कि
तुम दूर से भी दूर हो
और निकट से भी निकट !

मैं हूँ एक क्षुद्र हिमकणिका,
अन्ध-रजनी की सन्तान,
किन्तु जब तुम्हारे अनुग्रह की नवल किरण
अचानक मेरी अन्तरात्मा पर पड़ी
और बीच का तमोमय आवरण हटा
तो इस अपने क्षणभंगुर जीवन की कनी में
मैंने आप ही को देखा ;
और देखा इस दुनिया को
काल-रूपी दूब के सिर पर चमकनेवाली
शबनम के रूप में !

वळरुमत्भुतहर्षङ्ङलाल्त्तळ–
न्निळकिट्टुमेन्ट् मूकमाम् जीवनिल्
किळरुमानन्दपारवश्यम् पक–
न्निळ पुळकमुळकळणिकयाय् !
निमिषमात्रानुभूतियालात्माविल्–
क्कुमियुमानन्दवेलियेट्ट्त्तिनाल्
करकळोक्केयुम् मुङ्ङिय जीवित–
क्कटलु कण्टु ञानेकमाय्, पूर्णमाय् !

—१९३२

विस्मय और आनन्द के मारे
मैं शिथिल-सा हो गया,
और मेरे प्राणों में तरंगित होनेवाले
आनन्द की विवश हिलोरों में घुल-मिलकर
यह धरती पुलक-कण्टकित हो गयी !
तब इस पल-भर की अलौकिक अनुभूति से
आत्मा के भीतर उमड़नेवाले आनन्द के ज्वार-भाटे में
मैंने जीवन-सागर को
सीमा-विहीन, एक, अखण्ड, और परिपूर्ण देखा !

—१९३२

मुन्ना

कितना आश्चर्य है, मुन्ना !
इस विशाल विश्व में
कोई भी तुझ से अपरिचित नहीं !

सवेरे
जब तुझे गोद में लेकर
मैं बरामदे में खड़ा था तो मैंने पाया
तू मन्द हास कर रहा है और
प्रभात का तारा आँखें झपका-झपकाकर
तुझ से वार्तालाप कर रहा है।
मुझे डर है
कहीं वह तेरा छोटा भाई
बुलाकर न ले जाय,
तू जो मेरी आँखों का तारा है !
मैं अपने प्रेम को ही क्यों न बना दूँ
तेरा पहरेदार ?
फिर देखूँ कैसे मेरा मुन्ना कहीं जाता है।

२
कितना आश्चर्य है, मुन्ना !
इस विशाल विश्व के भीतर ऐसा कोई भी नहीं
जो तुझे गोद में उठा लेने को तरसता न हो !

यह अम्बर
चन्दा को गोद से नीचे उतार कर
सिर झुकाये मुस्कुराता खड़ा है ;

ओमन

ओमने, निन्नेप्परिचयमिल्लाते-
यी महाविश्वत्तिलारुमिल्लत्भुतम् !

राविले निन्नेयेट्टुत्तुम्मर्त्तेत्ति
मेविटुम् नेरमा वेळ्ळिनक्षत्रवुम्
पुंचिरि तूकुन्न नीयुम्, परस्परम्
कण्चिम्मियेन्तो पर्वतु कण्टु ञ्ञान् ।
पेटियाणक्कोच्चनुजन् विळिच्चुको-
ण्टोटिक्कळयुमो कण्णिन् वेळिच्चमे !
प्रेमत्तिनेत्तन्ने कावलाय् निर्त्तुवेन् :
ओमनयेङ्ङने पोमेन्नु काणणम् ।

२

ओमने निन्नेयेट्टुक्कान् कोतिक्काते-
यी महाविश्वत्तिलारुमिल्लत्भुतम् !

अम्पिळि तन्नेयुम् तापत्तु वेच्चता,
कुम्पिट्टुनिल्पू चिरिच्चुकोण्टम्बरम् ;

मुन्ना

कितना आश्चर्य है, मुन्ना !
इस विशाल विश्व में
कोई भी तुझ से अपरिचित नहीं !

सवेरे
जब तुझे गोद में लेकर
मैं बरामदे में खड़ा था तो मैंने पाया
तू मन्द हास कर रहा है और
प्रभात का तारा आँखें झपका-झपकाकर
तुझ से वार्तालाप कर रहा है।
मुझे डर है
कहीं वह तेरा छोटा भाई
बुलाकर न ले जाय,
तू जो मेरी आँखों का तारा है !
मैं अपने प्रेम को ही क्यों न बना दूँ
तेरा पहरेदार ?
फिर देखूँ कैसे मेरा मुन्ना कहीं जाता है।

२
कितना आश्चर्य है, मुन्ना !
इस विशाल विश्व के भीतर ऐसा कोई भी नहीं
जो तुझे गोद में उठा लेने को तरसता न हो !

यह अम्बर
चन्दा को गोद से नीचे उतार कर
सिर झुकाये मुस्कुराता खड़ा है ;

चेंकुरुन्नंगुलिकोण्टलिवोटिता
निन् कुळिर्. नेट्ट्. तलोटुन्नु पोन्वेयिल् ;
फुल्लपुष्पत्ताल् चिरिप्पिच्चुकोण्टिळम्-
चिल्लियाम् कै नीट्टिनिल्क्कुन्नु मल्लिक ।

निन्ने ममत्वच्चरटु मुरुक्कि ञ्जान्
नन्ने नोविक्कयाणेंकिल् क्षमिक्कुक !

—१९३३

यह सुनहली धूप
निज कोमल करांगुलियों से
तेरा ही मृदुल ललाट सहला रही है ;
यह मल्लिका खड़ी है
नवल शाखा करों को फैलाये तेरी ओर
और दिखाकर खिले हुए फूल
बहला रही है तुझे ।

मुन्ना, क्षमा करना मुझे
यदि मैं ममता की डोरी में कसी गाँठ लगाकर
तुझे व्याकुल करूँ !

—१९३३

जीवितम्

१

जीवितपतंगमे
　　देहपञ्जरवद्धम्
नी विषादिप्पू पारम्
　　पारतन्त्र्यत्तेच्चोल्लि
पेलवच्चिर्किने
　　विटर्त्तान् पोलुम् तीरे
मेलल्लो चुषन्नेषुम्
　　विधि तन्नषिमूलम् !
कालम् निन् नेरे नीट्टि–
　　वलिच्चु निन्नीटुन्नू
लीलय्क्काय् सुखत्तिन्टे
　　पविषक्कतिर् क्कुल ।

वल्ल नेरत्तुम् कोत्ता–
　　नेत्तियाल् पतिरल्ला–
तिल्ल ; नीयारेट्ट्टेन्त्र
　　वेदन विषुङ्डील !

द्योविनेक्किनाविनाल्
　　चित्रणम् चेय्तुम् कोण्टु
मेविटुम् निन्निल्त्तावुम्
　　कनिवालनिवार्यम्
मरणम् पेट्टेन्नेत्ति
　　मोचनम् नल्कुन्नेङ्किल्,
परमानन्दम् पूण्टु
　　नन्दि चोल्लुक नल्लू ।

जीवन

१

हे जीवन-विहग,
देह के पिंजड़े में बद्ध
अपनी परतन्त्रता के बारे में सोच-सोच कर
कितना दुःख भोग रहे हो तुम !
नियति की छड़ों ने
घेरा है तुम्हें चारों ओर से
तुम अपने पक्ष-पुटों को खोलने में
असमर्थ हो गये हो नितान्त !
यह लीलालोलुप काल
तुम्हें ललचाने के लिए
सुख की विद्रुम बालियाँ
तुम्हारी ओर बढ़ाता है।

चुग भी पाते हो यदि कभी
तो मिलती है तुम्हें निरी भूसी ही
उसकी अनी चुभ जाने का
कितना दर्द सहा है तुमने !

स्वप्नों में स्वर्ग का चित्र बनानेवाले,
मृत्यु यदि करुणा से भर कर
तुम्हारे पास आ जाये और
पिंजरा खोल कर तुम्हें मुक्त कर दे
तो तुम उसे सहर्ष धन्यवाद दोगे।

पिटयुन्नतेन्तिन्नु
पिन्वलिप्पतेन्तिन्नी–
त्तटविल् स्वयम् परु–
ङ्डीट्टुवान् मोहिक्कुन्नो !

२

जीवितम् भोगत्तिन्टे
मुळ्च्चेटियाले पञ्च
पाविय तारुण्यत्तिन्
कुन्निलुम् चेरुविलुम्
मेञ्ञु मेञ्ञाशारूप–
मृगतृष्णयिल्क्कूटि–
प्पाञ्ञुपाञ्ञाळ तनि–
क्किरुळानारंभिक्के,
व्रणितम् मुखम् नावाल्
नक्किक्कोण्टनुभूत–
क्षणिकसुखग्रास–
रोमन्थपरायणम्
तळर्न्नु किटक्कयाम्
तन् वयर् निरञ्ञालुम्
वळर्न्न विशप्पोटे
राजमार्ग्गत्तिन् वक्किल् ।
एवनुम् चरिक्कुवा–
नुळ्ळोरा मार्गम् दीन–
भावमाय् निरीक्षिक्के
निष्फलल्लातिल्लेङ्ङुम् ।

भीदमाम् चेन्नायल्ल,
पिन्पुरत्तिटयन्टे
पादविन्यासम् केळ्प्पू ;
भयमेन्तिनाणावो !

मगर तुम क्यों इस तरह तड़पते हो ?
क्यों पीछे की ओर ही मुड़ना चाहते हो ?
क्या तुम इस कारागार में ही
भयभीत दुबके रहना चाहते हो ?

२

यह जीवन चरता रहा
भोग की कँटीली झाड़ियों से लहलहाते
तारुण्य के टीलों में और तराइयों में,
लगाता रहा दौड़ आशा की मृगतृष्णाओं में,
और, जब यह धरित्री दिखाई देने लगी तमिस्रा तो
जीभ से चाटता हुआ
अपने व्रणित मुख को,
जुगालियाँ करता हुआ
भोगे हुए क्षणिक सुखों की,
प्रतिपल बढ़नेवाली भूख से तपता
भरपेट खाने पर भी,
यह राजपथ के किनारे
पड़ा हुआ है थक कर चूर।
यह पथ
है सब के प्रयाण का,
किन्तु दीन दृष्टि से देखने पर
सब जगह केवल परछाइयाँ ही दिखायी देती हैं।

क्यों तुम डरते हो
पीछे सुनाई देने वाली आहट से ?
यह पगध्वनि नहीं है भयंकर भेड़िये की,
बल्कि है गड़रिए की !

आलयिल् निन्नुम् निन्ने
मेयुवान् विट्टू काल,–
त्तालयिल् पूकानन्ति–
य्क्केन्तिनु मटिक्कुन्नु ?

––१६३४

सुबह को तुम्हें थान से ला कर
छोड़ गया था चरने,
तो अब क्यों संकोच करते हो शाम को
लौट चलने में ?

—१९३४

सूर्यकान्ति

मन्दमन्दमेन् ताषुम्
मुग्धमाम् मुखम् पोक्कि–
स्सुन्दरदिवाकरन्
चोदिच्चू मधुरमाय् :
"आरु नीयनुजत्ती ?
निर्न्निमेषयाय् एन्तेन्
तेरु पोकवे नेरे
नोक्कि निल्क्कुन्नू दूरे ?
सौम्यमाय् पिन्नेप्पिन्ने
विटरुम् कण्णाल् स्नेह–
रम्यमाय् वीक्षिक्कुन्नू
तिरिञ्ञु तिरिञ्ञेन्ने ;
वल्लतुम् परयुवान्
आग्रहिक्कुन्नुण्टावाम्
इल्लयो तेट्टाणूहमेङ्किल्
ञान् चोदिच्चीला ।"

ओन्नुमुत्तरम् तोन्नी–
लेङ्ङने तोन्नुम् ! सर्व–
सन्नुतन् सवितावे–
ङ्ङेङ्ङु निर्गन्धम् पुष्पम् !
अर्यमाविने स्नेहि–
क्कुन्न धिक्कारत्तिन्नु
'सूर्यकान्ति' येन्नेन्ने–
प्पुच्छिप्पताणी लोकम् !

सूरजमुखी

मेरा झुका हुआ चेहरा
धीरे-धीरे उन्नमित कर
मनोहर दिवाकर ने
मधुर स्वरों में पूछा :
कौन हो तुम बहन !
क्यों दूर खड़ी रहती हो,
अनिमेष नयनों से देखती
जब मेरा रथ जाता है ?
फिर देखती हो मुड़-मुड़ कर
सौम्य स्निग्ध हो,
कहना चाहती हो कुछ ?
अगर नहीं, और मेरा अनुमान ग़लत है
तो समझो मैंने पूछा ही नहीं"

मुझको कोई उत्तर नहीं सूझा ;
सूझेगा भी कैसे ?
कहाँ मैं निर्गन्ध सुमन,
कहाँ सविता सर्वस्तुत !
मेरी तो धृष्टता यह है
कि मैं सूर्य से प्रेम करती हूँ
इसी से 'सूरजमुखी' नाम देकर
संसार मेरी हँसी उड़ाता है !

परनिन्द वीशुन्न
वाळिनाल् चूळिप्पोका,
परकोटियिल्च्चेन्न
पावनदिव्यस्नेहम् ।
धीरमामुखम् तन्ने
नोक्किनिन्नु ञान् ; गुणो-
दारनाम् अविटत्ते-
य्क्केन्तु तोन्नियो हृत्तिल् !

भावपारवश्यत्ते
मरय्क्कान् चिरिप्पति-
नावतुम् श्रमिच्चालुम्
चिरियाय् त्तीर्न्नीलल्लो ।
मञ्ञुतुळ्ळियाणेन्नु
भाविच्चेनानन्दाश्रु,
माञ्ञु पोम् कविळ्त्तुट्टु-
प्पिळवेय्लिलेन्नोर्त्तेन् ।
वेपमुण्टायंगत्तिल्
कुळिर्काट्टनाल्, लज्जा-
चापलत्तालल्लेन्नु
नटिच्चेनधीर ञान् ।
क्षुद्रमामिप्पुष्पत्तिन्
प्रेमत्तेग्गणिच्चालो
भद्रनाद्देवन् निन्द-
नीयमायगण्यमाय् ।
मामकप्रेमम् नित्य-
मूकमायिरिक्कट्टे,
कोमळनविटन्न-
तूहिच्चालूहिक्कट्टे ।
स्नेहत्तिल्निन्निल्लल्लो
मट्टोन्नुम् लभिच्चीटान् ;

किन्तु, पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ
पवित्र दिव्य प्रेम
पर-निन्दा के खड्ग-प्रहार से
क्या संकुचित हो सकता है ?
मैं उस सुधीर मुख की ओर
देखती रही—
न जाने क्या सोचा होगा
उस गुणोदार ने मन में !

मैंने अपनी भावनाओं की विवशता को
भरसक छिपाने का प्रयत्न किया,
किन्तु न दे सकी उन्हें
मन्दहास का रूप ।
अपने आनन्दाश्रुओं को
हिमकणिका बताने का बहाना किया मैंने,
और आशा की—
कि प्रभात की धूप में घुल-मिल जायेगी
कपोलों की अरुणिमा ।
मेरा अंग-अंग काँपा
तो मैंने बहाना किया—
काँप रही हूँ मन्द पवन के कारण,
लज्जा-चापल्य से नहीं ।
कहीं वह भद्र पुरुष न समझ बैठे
इस क्षुद्र सुमन के प्रेम को
निन्द्य और नगण्य,
इसलिए मेरा प्रेम
सदैव के लिए बना रहे मूक ।
वह सुन्दर यदि स्वयं ही
अनुमान कर पाये तो पाये ।
प्रेम का नहीं है कोई प्रतिदान,

स्नेहत्तिन् फलम् स्नेहम् ;
ज्ञानत्तिन् फलम् ज्ञानम् ।
स्नेहमे परम् सौख्यम्,
स्नेहभंगमे दुःखम्,
स्नेहम् मे दिक्कालाति–
वर्त्तियाय् ज्वलिच्चावू !
देहमिन्नतिन् चूटिल्–
द्दहिच्चाल्दहिक्कट्टे,
मोहनप्रकाशमे–
न्नात्मावु चुम्बिच्चल्लो ।

मामकमनोगत–
मविटन्नरिञ्ञेन्नो ;
पोमळवद्देहत्तिन्
मुखवुम् विवर्णमाय् ।
वळरेप्पणिप्पेट्टा–
णेन्टे मेल्निन्नुम् देवन्
तळरुम् सुरक्तमाम्
कैयेटुत्ततु नूनम् ।
अक्षरम् पुरप्पेट्टी–
लन्योन्यम् नोक्की ञङ्ङळ् ;
तल्क्षणम् करम्पिरा–
वेन्तिनङ्ङोट्टेय्क्केत्ति !
नन्दि काणिप्पानेन्टे
शिरस्सु कुनिञ्ञतु
मन्दितोत्साहन् पोके–
क्कण्टिरिक्किल्ला देवन् !
निद्रयिल्लाञ्ञारक्त–
नेत्रनाय् पुलर्च्चेय्क्कु
हृद्रमनेत्तुम् ; नोक्कु–
मिप्पुरमुट्टत्तेन्ने ;

प्रेम का प्रेम ही है फल,
ज्ञान का ज्ञान ही है फल।
प्रेम ही परम सुख है
प्रेम-भंग ही है परम दुःख
मेरा प्रेम, दिक्काल से परे
सदा ज्वलन्त रहे।
अगर उसकी अग्नि-शिखा में
मेरा शरीर दग्ध हो गाये
तो हो जाये।
कम से कम मेरी आत्मा ने
उस मोहन प्रकाश को चूम लिया,
यही काफी है!

क्या वे मेरे मनोरथ को भाँप गये?
लौटने की बेला में उनका भी मुख विवर्ण बन गया।
यत्न से ही तो प्रभु
मेरे कन्धे पर से
अपने आरक्त शिथिल हाथ हटा पाये,
मैं भी भाँप गयी।
देखते भर रह गये दोनों,
मुँह से एक भी शब्द नहीं निकला!
तभी वह कलमुँही रजनी
क्यों हमारे बीच में आ गयी?
कृतज्ञता से मैंने अपना सिर झुकाया,
मगर मन्दोत्साह प्रभु ने जाने की जल्दी में
शायद ही उसे देखा हो।
कल प्रातःकाल
इस प्रांगण में
उन्निद्र आरक्त नयन
मेरे प्रभु मुझे खोजेंगे।

विळऱुम् मुखम् वेगम् ;
तेक्कन् काट्टटिच्चट—
न्निळमेल् किटक्कुमेन्
जीर्णमंगकम् काण्के।
क्षणमामुखम् नील—
क्कारुऱुमालालोप्पि—
प्रणयाकुलन् नाथ—
निङ्ङने विषादिक्काम् :
"आ विशुद्धमाम् मुग्ध—
पुष्पत्तेक्कण्टिल्लेङ्किल् !
आ विधम् परस्परम्
स्नेहिक्कातिरुन्नेंकिल् !"

—१९३२

उनका मुँह हो जायेगा विवर्ण
मेरे जीर्ण शरीर को देख कर
जिसे लुण्ठित कर दिया होगा धरा पर
दक्षिणी पवन के झकोरे ने।
तब प्रणय विह्वल मेरे प्राणेश्वर
पोंछ लेंगे अपना मुख काली बदली के रूमाल से
और कहेंगे विषण्ण हो कर—
"काश, न देखा होता यह मुग्ध सुमन
न किया होता प्यार हम दोनों ने।"

—१९३२

एन्ट् वेळि

वन्नटुत्तेन्नो वेळि–
मुहूर्त्तम् ? पिटय्क्काय्क
सन्नमाम् हृदन्तमे,
शान्तमायिरुन्नालुम् !
कालमेन् शिरस्सिंक–
लणियिक्कयाय्मुल्ल–
माल ; फालत्तिल्च्चेर्त्तु
कषिञ्ञु वरक्कुरि ।
वरणम् वरन्मात्रम्–
आसन्नमायिप्पोयी
वरणम् ; सनातन—
नियमम् लंघियक्कामो !

२

हा, विरच्चुपोम् लोकम्
नाममात्रत्ताल्, ञाना
जीवितेशनेप्पटि्ट्–
क्केट्टिरिक्कुन्नू पण्टे !
भूविलद्देहम् नीट्टुम्
कै तट्टिनीक्कानिल्ल
जीवितम् ; तदिच्छय्क्कु
तल चाय्क्काने पट्ट् ।
कामत्तिन्नलंभाव–
मिल्लेन्नो, तत्सन्देश–

मेरा विवाह

क्या निकट आ गया इतना
विवाह का शुभ-मुहूर्त ?
धड़को नहीं मेरे विवश हृदय,
शान्त बने रहो।
काल मेरे शीश को
सजा रहा है मल्लिका माला से,
लगा चुका है भाल-तल पर
त्रिरेख मंगल तिलक।
अब केवल वर के आगमन की ही देरी है
अनुल्लंघ्य है
सनातन नियम यह !

२

सुन रखा है मैंने–
पहले से ही उस जीवनेश के बारे में,
उस के नाम-मात्र से
संसार थर्-थर काँपने लगता है !
ऐसा कोई जीव नहीं
जो उसके अग्रसारित करों का तिरस्कार कर सके,
सब को होना ही पड़ता है नतमस्तक
उसकी इच्छा के आगे।
क्या सचमुच उस की काम-लालसा का
अलंभाव कभी नहीं होता ?

स्तोमत्तेयेत्तिय्क्कुन्न
राप्पकल्प्परावुकळ्
वानिलेप्पोषुम् काणाम्
संचरिप्पतायिट्टु ;
ञानिवट्टयेव्वन्धि–
च्चीट्टुवानाशिक्कुन्नु ।

पलरेप्पाणिग्रहम्
चेयि्तरिय्क्कुन्नू पण्टे ;
पलमन्दिरत्तिलु—
मिप्पोषुम् नठक्कुन्नु,
पतिगेहत्तिल्च्चेरान्
यात्रयाकलुम् बन्धु–
ततितन् निरर्थाश्रु–
वर्षवुमिटयि्क्कट्टे ।
कुटिवच्चतिन् शेषम्
जन्मगेहत्तेक्काणा–
निटयार्क्कुमेकुन्नी–
लुग्रशासननेन्नो !
हा ! तिरिच्चविटेनि–
न्नागमिक्कुन्निल्लारु–
मोतिटान् ;—अन्तःपुरम्
नाकमो, नरकमो ?

३

मामकहृदन्तत्तिल्
माट्टोलिक्कोण्टीटुन्नु–
ण्टामन्दम् समीपिक्कुम्
पतितन् पदन्यासम् ।
काल् वितापिक्कूटि
ञान् पिरन्नोरी वीट्टिल्
मेविटान् कषिञ्ञेंकिल् !—
इन्न वेगमो यात्र !

आसमान में हर घड़ी उड़ते देखती हूँ
उस के सन्देशों को पहुँचानेवाले
दिन-रैन रूपी कपोतों को,
मैं उन को पकड़ कर बाँध रखना चाहती हूँ ।

वे कर चुके हैं अनेक पाणिग्रहण,
अब भी
अनेक घरों में हो रहे हैं
पति गेह चलने के विदा-आयोजन,
बन्धु-बान्धवों की निरर्थक अश्रुवर्षा ।
वह ले जाता है तो फिर
मायके आने का अवसर ही नहीं देता ;
क्या इतना कड़ा है अनुशासन उसका ?
हाय
कोई भी तो वहाँ से लौट नहीं पाती
कि सुनावे उसका अन्तःपुर स्वर्ग है या नरक !

३

प्रतिध्वनित हो रहा है–
मेरे अन्तरंग में
मेरे पति का पदन्यास
जो आ रहा है मेरी ओर धीरे-धीरे मुस्कुराता हुआ ।
काश !
मैं ठहर पाती एकाध घड़ी और इस घर में
जहाँ मैंने जन्म लिया है ;
क्या इतनी जल्दी यात्रा करनी पड़ेगी ?

मेनि मे विरयिक्कल्ल,
चुण्टिण चलिक्किकल्ल,
ग्लानि वन्नुदिक्किकल्ल,
विळरिप्पोकिल्लास्यम्,
समयम् वरुन्नेरम्
सर्वशक्तमाक्कैयिल्
ममजीवितम् क्षुद्रम्
सस्मितम् समर्प्पियक्कुम् !

४

स्नेहपूर्णमायेन्ने
नोक्कि वीर्प्पिट्टुम् जन्म-
गेहमे, पोङ्ङुन्निल्ल
यात्र चोदिप्पान् शब्दम्,
इन्नु निन्सौन्दर्यत्ते-
पूर्णमाय् ञ्ञान् काणुन्नि-
तिन्नु निन् प्रेमम्मूलम्
मन्मनम् पिळरुन्नु !
विरहत्तिलल्लाते,
लावण्यम् समग्रमाय्
निरवद्यमायिट्टु
काणुवान् कषिवील ।
प्रेमत्तिन् तिळक्कम् क-
ण्टतु चेन्नेटुक्कायक ;
भीममाम् खड्गत्तेक्काळ्
मूर्च्चयेरियतत्रे ।

५

उद्रसम् निषलुक-
ळन्योन्यम् पुल्किप्पुल्कि
निद्रचेयतीटुम् पच्च-
प्पट्टार्न्न पून्तोट्टत्तिल्

नहीं, कम्पित नहीं होगा मेरा शरीर,
चंचल नहीं होंगे मेरे अधर,
ग्लानि नहीं आयेगी मुझे,
और मेरा मुख भी होगा नहीं विवर्ण,
जब मुहूर्त आयेगा
उन सर्वशक्त हाथों में
सस्मित समर्पित कर दूंगी
मैं अपना जीवन।

४

मेरे जन्मगृह !
मेरी ओर देख कर तुम भरते हो आहें
स्नेहातिरेक के कारण !
तुमसे विदा माँगने
नहीं निकल रही है मेरी आवाज़ ;
हाय ! आज मैं देख पायी
तुम्हारे सौन्दर्य की समग्रता को,
और आज होता है मेरा मन विदीर्ण
तुम्हारे प्रेम के कारण।
केवल विरह की वेला में ही
दिखाई देता है लावण्य, समग्र और निरवद्य।
न जाओ प्रेम की इस दमक पर,
न करो उद्यम उसे लेने का,
असल में वह
भयानक तलवार से भी अधिक तेज़ है।

५

इस रम्य उद्यान में
जहाँ हरी-हरी मखमल के ऊपर
परस्पर आलिंगनबद्ध परछाइयाँ
रस-विमुग्ध सोती रहती हैं,

तावुमौत्सुक्यत्तोटे
नाळेयुम् पुलर्न्चेय्क्कु
पूवुकळ् जलार्द्रमाम्
कण्तुरन्नय्यो ! नोक्कुम् ।
अत्र वन्निरिय्क्कारु–
ण्टवयाय् संसारिप्पा–
नेत्रयुम् मेलिञ्ञु नी–
ण्टुळ्ळोरु रूपम् सौम्यम् ।
अषलालव पर–
ञ्ञीटुमन्योन्यम् नोक्कि :—
"निषलायिरुन्नेन्नो
स्नेहाधारमा रूपम् !"

—१९३१

वहाँ देखेंगे सुमन
अपने जलाविल नयन खोल कर
कल भी प्रातःकाल
उनसे बातें करने के लिए
यहाँ आ बैठता था
एक सौम्य कृश-दीर्घ-आकार ;
और तब बड़ी विपन्नता के साथ
वे एक दूसरे को देखेंगे और कहेंगे—
"क्या यह स्नेहाधार आकार
मात्र एक प्रतिबिम्ब था ?"

—१९३१

अन्वेषणम्

कवि चोदिच्चू : "कोच्चु–
तेन्नले भवानारे–
क्कवियुम् प्रेमम् मूलम
वेम्पलान्नन्वेषिप्पू ?
इल्ल विश्रममार्य–
न्निल्ल मट्ट्रोरु चिन्त,
अल्लिलुम् पकलिलुम्
भ्रान्तनेप्पोलोटुन्नु !
कोच्चलर् तवोन्माद–
चापलम् कण्टिट्टावाम्
उच्चलम् पकच्चलम्
नोक्कुन्नु मेलुम् कीषुम् ।

"प्रेमत्तिन् पेरोन्नल्ली
शब्दिप्पतव्यक्तम् नी,
प्रेमत्तिन् लहरियाल्
कालुर्य्क्काय्कल्लल्ली ?
अन्यनु लभिक्कयि–
ल्लीदृशम् दिव्यस्नेह–
जन्यमुन्मादम् ; सत्यम्
ञ्ञानितिलसूयालु ।
तिरयू ! वेगम् तोष,
तिरयू ! मुळंकाटिन्
चिरियेग्गणिक्काते ;–
इल्लतिन्नन्तस्सारम् ।"

अन्वेषण

कवि ने प्रश्न किया—
"हे तरुण पवन,
तुम किसे खोज रहे हो
सीमातीत प्रेम से अधीर हो कर ?
तुम्हें विश्राम ही नहीं,
न है कोई और चिन्ता
बस, दिन-रात दौड़ते रहते हो
उन्मत्त की भाँति।
शायद तुम्हारे उन्माद-चापल्य को देख कर ही
ये चकित, तरल नन्हें सुमन
गर्दन उठाये कभी ऊपर निहारते हैं,
कभी नीचे, विभ्रान्त।

"यह प्रेम का नाम ही है
जो तुम में मर्मरित हो रहा है,
यह प्रेम का ही नशा है
जिसके कारण तुम्हारे पाँव डगमगाते हैं,
ऐसा दिव्य प्रेम-जन्य उन्माद
और किस को मिलेगा !
सच तो यह है
कि मैं तुम से ईर्ष्या कर रहा हूँ
खोजो, मेरे मित्र, खोजो—
इस वंशी-कदम्ब की हँसी की परवाह न करो
अन्तः सार ही कहाँ है इस खोखली में।"

उदयन्निश्वासत्तौ–
टुच्चरिञ्चितक्काट्टु
सदयम् मदंगत्ते–
त्तटविस्सगद्गदम् :

"श्रीमन्, निन्ननुमानम्
तेट्टल्ल ; चुट्टुन्नू ञान्
प्रेमसर्वस्वत्तिन्टे
मुखदर्शनत्तिन्नाय् ।
चिरकालमाय् ञङ्ङळ्
वेर्पिरिञ्जिट्टेन्नालूम्
स्मरण नटुक्कुनि-
न्नेन्नेयिट्टलट्टुन्नू ।
ञानुणर्न्नप्पोळादि-
प्पुलर्कालत्तिप्पारुम्
वानुमन्योन्यम् नोक्कि-
श्शोकमूकमाय् निल्पाम् ।
मामकवक्षस्थलम्
शून्यमाय्क्कण्टू ; पोया-
ळोमलाळय्यो ! राग-
विश्वासपरीक्षार्थम् ।
चेणियन्नोन्नो रण्टो
वेण्तारमन्दारप्पू
वेणियिकल् निन्नूर्न्नु
वीणिरुन्नितु पोके:
कळनूपुरारवम्
केट्टु ञानय्यो, पक्षि
गळनिर्गळन्नाद-
मेन्नल्लो विचारिच्चु !
पुलरिन्तुटुप्पेन्नु
चिन्तिच्चु पोयि पाद-
मलरिन्नलक्तक-
रक्तमाम् पाटन्नेरम् ।

पवन ने
मेरे अंगों को दयापूर्वक सहलाया
और उसाँस भर कर कहा—

"श्रीमन्
ठीक है आप का अनुमान,
मैं घूम रहा हूँ
प्रेम-मूर्ति का ही मुख-दर्शन पाने के लिए।
चिरकाल से हम बिछुड़ गये हैं,
किन्तु स्मृतियाँ बीच-बीच में आ खड़ी होती हैं
और मुझे सताती हैं।
जब मैं आदिम प्रभात में जगा
तो देखा,
यह जगत और भूतल
एक दूसरे की ओर निहारते
शोक मूक खड़े थे।
मैंने अपना वक्षस्थल शून्य पाया,
वह चली गयी थी
प्रेम की दृढ़ता की परीक्षा लेने के लिए।
हाँ,
एकाध तारक-मन्दार-सुमन
उसकी वेणी में से
गिरे पाये गये।
मैंने उसके नूपुरों का नाद सुना था
किन्तु हाय! मैंने समझा
उसे
पक्षियों के गले से विनिर्गलित कलरव।
पदकमलों के अलक्तक चिन्ह को
मैंने समझा
प्रभात की लालिमा,

कनकांगुलीयक-
मूरियिट्टिरुन्नत-
न्निनविम्बमाणेन्नु
ञान् विचारिच्चु मूढन्:
वानिलोम्मंय्क्कायिट्टु
पोय पट्टुरुमालु
वारिदशकलमे-
न्नोर्त्तु ञान् सूक्षिच्चील ।
पाटलम् पारावार–
मेन्नोर्त्तु पादारक्त-
प्पाटणिच्चुळिविरि-
त्तलप्पिल् चुम्बिच्चील ।

अन्नु तोट्टन्वेषिप्पू
नालु दिक्किलुम् तेण्टि-
येन्नुटे कथमर-
न्ना रसस्वरूपत्ते ।
कण्टवरिल्ला पारिल्
कण्टुवेन्नुरप्पवर्
कण्टवरल्ला ; काणान्
ञान् स्वयम् यत्निक्केणम् ।
आरे ञानन्वेषिप्प-
ता प्रेमपुञ्जम् तन्ने
तीरेयिल्लेन्नोतुन्न
नावेनिक्कविश्वास्यम् ।

आ मुग्धमुल्लप्पूक्कळ्
मुकरुन्न नेरम् ञान्
आ मुखमनोहर-
सौरभम् स्मरिक्कुन्नू ।

वह छोड़ कर गयी थी कनकांगुलीय
ताकि उसे मैं पहचान सकूँ
किन्तु मैंने उसे समझा सौरविम्ब।
वह अपनी निशानी के रूप में
नभ में छोड़ गयी थी रेशमी रूमाल,
किन्तु मैं मूढ़
समझ वैठा उस को बादल का टुकड़ा।
हाय! वह छोड़ गयी थी सिकुड़े हुए कालीन का अंचल
अपने अलक्त चिह्नों से अंकित
समझ वैठा उसे मैं गुलाबी-सागर,
चूम भी न पाया उसे।

उसी दिन से
होकर आत्मविस्मृत
चारों दिशाओं में घूम-फिर कर
उस रस स्वरूप की खोज कर रहा हूँ।
किसी ने नहीं देखा है इस संसार में उसे,
जो कहते हैं कि देखा है,
नहीं देखा है उन्होंने भी;
अतः देखने का यत्न मुझे स्वयं ही करना होगा।
मैं जिसे खोज रहा हूँ
उसी रसमयी प्रेममूर्ति को
नितान्त मिथ्या वतानेवाली यह रसना
मेरे लिए अविश्वास्य है।

जव मैं मुग्ध कुन्दकलिकाओं को चूमता हूँ
तो याद हो आती है
उस मनहर मुख के सौरभ की,

चोलयिल् सतृण्णनाय्
चुण्टुप्पिक्के स्निग्ध-
लोलमक्कपोलत्तिन्
तणुप्पु ञानोर्म्मिप्पू !

मानसम् स्मरणया-
लुन्मत्तमाविल्लल्लो
ञानलञ्अन्वेषिक्कु-
मोमल् मिथ्ययाणेंकिल् ।

वल्लि तन् परिमृदु-
पल्लवक्कैत्तण्टिन्मे-
लुल्लसन्नीहारत्तू-
वेण्विरिक्किटक्कमेल्,
इल्ल मे मनश्शान्ति ;–
योमलिन्नरिकत्तु
वल्ल कालत्तुम् चेल्लाम्—
ईयाशयाणेन् शक्ति ।

क्षीणनाय् निशीथत्तिल्
वीतबोधनाय् काट्टिल्
वीणु पोकुम् ञान्, काणा-
तोमलाळट्टत्तेत्तुम् ;
शीतळकरत्तिनाल्
तटवुम् ; पिटञ्ञेल्क्कुम्
प्रीतनाय् क्षणत्ताल् ञान्—
विलपिक्कुवान् मात्रम् !

उरङ्ङुम् कटलिने-
च्चेन्नुणर्त्ति ञान् 'तोषर्
परञ्ञु तरणमे-
न्नोमलेङ्ङेन्नाय् चोल्के,

जब सतृष्ण मैं झरने की ओर अधर बढ़ाता हूँ
तो मुझे उस स्निग्ध मृदुल कपोल की शीतलता
याद हो आती है।

जिसकी खोज में मैं इतना विवश घूम रहा हूँ
वह मेरा प्रेम-पुंज अगर मिथ्या है
तो क्यों मेरा मन
उस की स्मृतियों से इतना उन्मत्त हो जाता है ?

मुझे कहीं भी तो शान्ति नहीं मिलती—
न लतिकाओं की परिमृदुल बाहुओं में,
न कमनीय धवल-नीहार-शय्या में,
किसी दिन मैं उसके समीप पहुँच जाऊँगा—
इसी आशा का आलम्बन मुझे बल दिये हुए है।

निशीथ में जब नितान्त क्लान्त हो कर
मैं वनान्तर में असहाय गिर पड़ता हूँ
तब वह लुक-छिप कर—
आती है मेरे समीप,
सहलाती है शीतल करों से ;
और प्रेम गद्गद मन से तब
पल भर में मैं जाग पड़ता हूँ
केवल प्रलाप करने के लिए !

जब मैं
जाकर सुप्त सागर को जगाता,
और गिड़गिड़ा कर पूछता—
'मित्र, कहाँ है मेरी प्रिया ?"

दीननामी ञान् भ्रान्त-
नाणेन्नु चिन्तिच्चावाम्
फेनप्पल्लिरुम्मिक्को-
ण्टुरक्केगर्ज्जिक्कुन्नु ।

पादपत्तल पिटि-
च्चिटय्क्कु कुलुक्किञान्
पारमुल्क्कण्ठाभार-
मार्न्नेत्र चोदिच्चील !
कम्पितांगमाय्, अय्यो
कण्टिल्लयेन्नल्लाते
वेम्पिटुम् मरम् तरुन्निल्ल
मे समाधानम् ।

ध्याननिश्चलम् निल्क्कुम्
पर्वतम् चूण्टिक्काट्टि
वानिन् नेर्क्कङ्क्तिङ्कल्
वीणु ञान् विलपिक्के,
तानरिञ्ञिल्लेन्नप्पोळ
सुव्यक्तमाक्की नाकम्
मौनत्ताल् ; निरन्तमो
दुस्सहम् विरहम् मे !"

—१९३१

तो शायद
वह मुझे दयनीय और पागल समझ कर
फेनों के दाँत भींच कर
उग्र स्वर से गरज उठता है।

तरुओं के शीश झकझोर-झकझोर कर
कितनी ही बार मैंने उन से पूछा,
किन्तु विह्वल कम्पितांग तरुवरों ने
सदा केवल यही उत्तर दिया—
"आह, नहीं देखा है।"

उन की गोद में गिर कर
जब-जब मैंने विलाप किया
तब-तब ध्यानमग्न निश्चल पर्वतों ने
आकाश की ओर केवल संकेत भर कर दिया!
गगन ने अपने मौन से यह स्पष्ट किया
कि नहीं देखा उसने।
"क्या मेरे इस दुस्सह विरह का
कहीं कोई अन्त ही न होगा?"

—१९३१

भृंगगीति

१

अंगसौभगम् कणि–
काणुवानिल्लात्तोरु
भृंगमाणेन्नालेन्ता–
प्पूविन्नु ञ्ञाने जीवन ।
प्रेमत्तिन् चिल्लिल्क्कूटि
नोक्कुम्पोळेतुम् तोन्नुम्
कामिनीयकत्तिन्टे
कळिवीटायित्तन्ने ।

२

नेटुवीर्प्पिनाल् चुट्ट्ुम्
नेर्त्त सौरभम् वीशि
च्चुटुमुच्चवेयृलत्तुम्
चूटरिञ्ञिटातोमल्
चेवियोर्त्तु निन्नीटुम्
मल्समागम् मुन्पि–
ट्टविटे ग्रहिप्पिक्कु–
मेन् मूळिप्पाट्टिन्नायि ।
अरिकेच्चरिक्कुम्पो–
ळेन्टे काट्ट्ट्टाल्प्पोलुम्
विरियुम् मुखम् वेग–
मंगकम् वेपम् कोलुम् ।
ञ्ञानटुत्तणञ्ञाकिल्
मिण्टुकिल्लटक्किक्को–
ण्टानरुम्स्मितम्, निल्क्कुम्
कण्ट भाववुमेन्ये,

भृंगगीत

१

मैं हूँ भृंग
अंग-सौन्दर्य जिसे छू तक नहीं गया,
फिर भी,
उस फूल के लिये मैं ही हूँ सर्वस्व-प्राण !
प्रेम के चश्मे से देखा जाय
तो सब कुछ ही प्रतीत होने लगता है, लावण्य का लीलाभवन-सा ।

२

जलती दोपहरी में,
भूल कर आतप-दाह
फैलती हुई अपनी झीनी सुरभि चारों और
लम्बी-लम्बी उसाँसों से—
खड़ी रहती है मेरी प्रिया कान लगाये,
मेरे आगमन की पूर्व-सूचना देने वाली
मेरी गुनगुनाहट के लिए ।
जव मैं उस के पास से निकल जाता हूँ
तो खिल उठता है उसका मुख,
मेरे शरीर की हवा से,
काँपने लगता है उसका अंग-अंग,
किन्तु जव मैं पहुचता हूँ सन्निकट
तो बोलती कुछ भी नहीं
खड़ी रहती है चुपचाप, मुस्कान रोके,
मानों देखा ही नहीं उसने मुझे ।

मुकराते ञान् पोयाल्
मुग्धमाप्पुष्पम् दीन–
मुखमाय्, तिरिञ्ञुनो–
क्कीटवे काणाम्, नोक्कुम् ।

पोकवे, वीण्टुम् केळ्क्का–
मेन्टे जीवन्नाप्पूविन्–
मूकमाम् विळि, तळ–
र्न्नोटुमेन् चिरकप्पोळ् ।

भावगौरवम्मूलम्
शब्दत्तेक्काळुम् पारम्
भारवत्ताकुम् मौनम्
तङ्ङिनिल्पीला काटि्ट्ल् ;

नेरिट्टु वेगम् वन्नु
पतिक्कुम् हृदन्तत्तिल्
नेरिय विकारत्तिन्
तिरतल्ललुण्टाक्कुम् ।

एङ्ङने पिरियुमा
निश्शब्दप्रणयत्ते,
चङ्ङल कूटातेन्ने–
ब्बन्धिच्च सामर्थ्यत्ते !

३

एन्नयुम् मनोज्ञमाय्
निषलाल् तन् वेण्पट्टिल्
चित्रवेलकळ् चेय्तु
मध्याह्नमिरिक्कुम्पोळ्,
अमरताप्पूमारु––
पटि्ट ञान् सुखिक्कुन्नू ;
मम भारत्तालोम––
लेङ्ङनुम् तळर्न्नालो !

तो मुड़ कर देखने पर पाता हूँ
कि वह मुग्ध पुष्प
दीन मुख लिए मेरी ही तरफ
टकटकी लगाये खड़ा है ।
यदि फिर भी मैं आगे बढ़ जाऊँ
तो मेरे प्राणों को सुनायी देती है
पुष्प की मूक पुकार ;
तब मेरे पंख शिथिल हो जाते हैं ।

मौन,
जो भाव-गौरव के कारण
शब्दों की अपेक्षा भारी होता है,
हवा में अटका नहीं रह पाता है—
हठात् आ गिरता है मानस में
उत्पन्न करता है भावों की छोटी-छोटी लहरियाँ ।
कैसे लूँ विदा इस मौन प्रणय से,
इस चातुरी से जो बाँध लेती है मुझे
विना बेड़ियों के !

३

जब दुपहरी
अपने श्वेत पटम्बर के ऊपर
परछाइयों की मनोरम कशीदाकारी करती रहती है,
तब मैं अत्यन्त मृदुता के साथ
उसके कोमल वक्षस्थल से आ लगता हूँ;
मुझे डर रहता है—
कहीं मेरे भार के कारण वह परिश्रान्त हो गयी तो ?

प्रणयान्धनायुत्तीर्न्नु,
सौरभम् वीशुम् गात्रम्
पुणरिल्ल ञान् गाढम् ;
पूवल्ले, पतिच्चालो !
उत्तरम् तराञ्ञालु—
मोमनप्पूवेकाग्र—
चित्तमाय् केळ्क्कुम् मारिल्
च्चुम्बिच्चु ञान् मन्त्रिक्के ;

अरिकत्तुनिन्नेङ्ङान्
पोकुवान् पुरप्पेट्टाल्
तिरिये चेल्लुम् यात्र
चोल्लान् ञान् नूरावृत्ति ।
कालमेन्नोन्निल्लेन्न—
ल्लुग्र भास्कररश्मि—
ज्वालयक्कु चूटिल्लल्पम्
ञङ्ङळ् तङ्ङळिल्च्चेर्न्नाल् ।

४

एत्तुमेन्नालुम् पेट्टे—
न्नेतोरु पूविन् कण्णुम्
पोत्तुवान् मटिक्कात्त—
निर्विवेकयाम् सन्ध्य !
हा, निलम् पतिच्चीटुम्
तेक्कन्काट्टटिच्चाराल्,
वानिलोमलिन् नित्य—
चैतन्यम् मरञ्ञुपोम् ।

ई विचारमे, न्नालुम्
चिलप्पोळ्प्फणम् पोक्कि—
भीविकम्पितमाक्कि—
त्तीर्क्कुन्नु मत्सौख्यत्ते !

प्रणयान्ध वन कर
मैं उस सुरभिल शरीर को
प्रगाढ़ परिरम्भण में नहीं बाँधता,
कोमल कली है न ? कहीं गिर गयी तो !
जब मैं उसके वक्षस्थल को चूम कर
कानों में गुनगुनगुनाता हूँ
तो वह कैसे एकाग्रचित्त सुनती है
यद्यपि जवाब नहीं देती !

विदा लेते-लेते
मैं सौ वार लौट आता हूँ
अनुमति लेने के लिए ।
जव हम मिलन-आबद्ध होते हैं
तो फिर प्रचण्ड सूर्य-किरणों में गर्मी नहीं रहती,
और काल का अस्तित्व ही नहीं रह जाता !

४

किन्तु आ जायेगी निर्विवेक सन्ध्या,
करेगी सभी सुमनों की आँखें वन्द,
विना संकोच और सोच-विचार के ।
हाय, दक्षिणी पवन का झोंका खा कर
मेरी प्रिया की नित्य-नूतन चेतना
विलीन हो जायेगी नभ में ।

यह विचार
अपने फन फैला-फैला कर
मेरे परितोष-सुख को
भयकम्पित कर देता है ।

कालत्तिन्नधीनमाम्
नश्वरजगत्तिक-
लालम्वहीनम्तन्ने
शाश्वतशुद्धस्नेहम ।
अलमल्ललाल् ; विश्व-
त्तिन्टे नश्वरभावम्
विलयुम् सौन्दर्यवुम्
वस्तुक्कळ्क्कुण्टाक्कुन्नु ।

—१९३२

ओटक्कुषल्

यह नश्वर संसार काल की चपेट में है
यहाँ निरालम्ब है, विशुद्ध प्रेम।
तब क्यों करें विषाद ?
वास्तव में विश्व की क्षणभंगुरता ही तो
वस्तुओं का मूल्य और सौन्दर्य बढ़ाती है।

—१९३२

मति

मुरुके मुकरुमभ्रलक्ष्मितन् कार्–
कुरुनिर तङिङय भंगियार्न्न शैलम् ;
नरुमणि चितरुम्विधम् चिरियक्कुम्
चेरुपुषतन्नुटे चेणियन्न कूलम् ;

कुल पकुति चुवन्न पच्चनेल्ला–
ललकळ् निरन्नु, परन्न कोच्चुपाटम् ;
चलकिसलयराजि तीर्त्तसान्ध्यो–
ज्वलमधुरद्युति पूण्ट पुष्पवाटम् ;

सुललित हसितम् कलर्न्नु तुळ्ळुम्
मलरिनेयिक्किळियाक्किटुन्न वातम् ;
उलकिनु सुखमूर्च्छ नल्किटुन्नो–
रलघुमदाकुलकोकिलाळिगीतम् ;

हरितगिरितटत्तिलाट्ट्वक्क–
त्तरियोरु शान्ति तुळुम्पीटुम् कुटीरम् ;
परिसरवनि नीर्त्तियिट्टीटुम् पुल्–
विरियिलिरुन्निटुवान् कुरच्चु नेरम् ;

वषियुममलरागमार्न्नु वेल्नेर्–
मिषियिल् मदाश्रु पोटिञ्ञोरेन्ट् पुण्यम्
मटियिल्, मति ! जयिच्चु ! सर्वमेन्कै–
प्पिटियिलोतुङिङ ; येनियक्कु विण्णगण्यम् !

—१९३२

यही बहुत है

रुचिर शैल
जिस पर छितराये हैं मेघ-अलक अभ्र-लक्ष्मी ने,
खड़ा है चुपचाप गाढ़ चुम्बन-लीन,
प्यारे से झरने का मनहर कूल,
बिखर जाते हैं मोती जिस पर उसकी हँसी के
छोटा-सा खेत, जहाँ लहरा रही हैं हरे धान की बालियाँ,
ईषद् आरक्त सुन्दर उपवन
मनोरम सन्ध्या की द्युति से प्रोज्ज्वल
चंचल किसलय-राजि द्वारा निर्मित।
मलय पवन
जो गुददा जाती है मुस्काते-झूमते सुमन को,
मोहन कल-गान मस्त कोकिल का
जो करता है जग को सुख-मूर्छा लीन।
एक शान्त कुटिया
हरित गिरि-तट में वहते झरने के किनारे विश्राम-स्थली,
अल्प-काल आराम करने के लिए
विछा दिया हो हरी घास के कालीन पर जिसे
उपवन लक्ष्मी ने।
और, गोद में प्रिया मेरी चिर-संचित पुण्य प्रतीक
मधुर तारुण्यमयी
जिसके रागपूर्ण नेत्रों से झरता हो रस,—
यही वहुत है मेरे लिए
आ गया मेरी मुट्ठी में सब कुछ,
नगण्य है फिर सुर-लोक भी।

—१९३२

पंकजगीतम्

अन्धमाम् तमस्सिल् नि–
ऩ्नर्थनानिरपेक्षम्
हन्त, माम् प्रकाशत्ते–
प्पूकिच्च पुण्यालोक,
लोकबान्धव, भव–
त्तादृशदयापरी–
पाकत्तिन् स्मरणयाल्
एन्मनम् तुळुम्पावु !

परिपावनप्रेम,
तल्क्कृतज्ञतय्क्कल्प–
परिणाहमेन्नुळ्ळ–
मेङ्ङिङ्ने मतियावू !
नीरवम् दलाधरम्
वेरुते चलिप्पू निन्–
सारमामपदानम्
गानत्तिल् पकर्त्तुवान् ।

सेवनव्यग्राकम्पि
वक्षस्सिल् चेर्क्काम् दिव्य–
तावकपदम्, मेन्मेल्
मुकराम्, नेट्टुवीर्क्काम् ।
आवतेन्तल्लातेन्नाल् ?–
एन् अशक्तततन्ने
देव, ञान् तिरुमुन्पिल्
उपहारमाय् वय्क्काम् ।

पंकज गीत

हे पुण्यालोक !
अयाचित ही तुम मुझे
अन्धतम के अन्दर से निकाल कर
प्रकाश की ओर ले गये ।
हे लोकबान्धव,
तुम्हारी इस सार्थक दया की स्मृतियों से
मेरा मन सदा आप्लावित रहे ।

हे परिपूत प्रेमशील,
मेरा यह लघु हृदय
कैसे वहन कर सकता है,
इस उदार कृतज्ञता के भाव को ?
मेरे नीरव अधर-दल
तुम्हारा महान् यशोगीत गाने के लिए
चंचल होते हैं,
किन्तु कहाँ जा पाते हैं ?

तुम्हारी परिचर्या के लिए उत्सुक अपने वक्षतल में
मैं तुम्हारे दिव्य चरणों को लगाऊँगा
और करूँगा वारम्वार अधीर चुम्बन ।
मुझ से और हो ही क्या सकता है ?
हे देव !
अपनी दुर्बलता को ही
तुम्हारे पैरों पर
भेंट चढ़ा रहा हूँ ।

२

पाष्.मण्णिन विकारमाम्
आनेङ्ङु ? तेजोरूप–
श्रीमन्, अङ्ङेङ्ङी क्षुद्र–
पंकजकपोलत्ते
नाकत्तेत्तिळक्कुन्न
तूक्कय्याल्–अय्या ! मदो–
द्रेकत्ताल् ञानेम्मट्टु
तुळ्ळिल्ल-तलोटुम्पोळ् !
लेखमार्गसञ्चारिन्,
मल्क्कविळ्त्तटराग–
रेख नी पोऱ्त्तालुम् ;
स्नेहत्तिन् चापल्यत्ताल्
मुग्धमाम् मदीयान्त–
रंगम् हा, जगत्गुरो,
स्निग्धनाय्, अय्यो, वेऱुम्
स्निग्धनाय् गणिच्चल्लो ।

३

धीरमाम् भवद्रूपम्
काणुन्नु ञानीक्कोच्चु–
नीरल तोऱुम् ; तापम्
निन्नेत्तान् स्मरिप्पिप्पू ।
वापितन् वितुम्पुन्न
चुण्टिलुम् चिरिक्कुन्न–
वारिजङ्ङळ्तन्
तुटुप्पेरिटुम् कविळिलुम्
चेणुट्.ट् निन् चैतन्यम्
ओन्नुतान् ओरे मट्टिल्
काणुवान् एन् कण्णिन्नु
काष्.च्च नीयरुळायिकल्

२

मैं कहाँ, जड़ मिट्टी का विकार !
और तुम कहाँ श्रीमय तेजोमय !
मगर जब तुम,
जो स्वर्ग को भी आलोकित कर देते हो,
अपने हाथों से
इस क्षुद्र पंकज कपोल को
सहलाते हो
तो उन्मत्त भाव-विभोर उछल-उछल पड़ता हूँ मैं।
हे देवमार्गचारिन् !
मेरे कपोलों पर स्फुरित राग-रेखा के लिए
क्षमा कर देना मुझे ।
हे जगद्गुरो,
स्नेह-चापल्य से मुग्ध मेरा अन्तरंग
समझ गया है
कि तुम हो केवल स्निग्ध ।

३

इन नहीं-नन्हीं लहरियों में
मैं तुम्हारे रूप का दर्शन कर रहा हूँ,
और यह आतप दिला रहा है
तुम्हारी ही याद ।
अगर, तड़ाग के कम्पित अधरों में
मुस्कुराते उत्पलों के आरक्त कपोलों में
वही तुम्हारा मोहक चैतन्य
समान भाव से देखने की दृष्टि
आपने नहीं दी होती

निद्रा में ही निमग्न रहता,
और अन्त में
निद्रा में ही विलीन हो जाता।

४

मुझे जन्म देनेवाली भूमि के प्रबुद्ध कम्पन में
तथा प्रक्षुब्ध अन्तरिक्ष के दुर्निवार निश्वास में
मैं तुम्हारे ही मुख का नित्य नूतन सौन्दर्य देखूँ
और उसका पान करने के लिए खड़ा रहूँ,
न हटूँ अपने स्थान से !
तुम्हारे दिव्य स्पर्श से
मेरे स्नेहपूरित अन्तरंग में
प्रोज्ज्वलित हो जाये विशुद्ध वासनाएँ।
मेरा यह क्षण-भंगुर जीवन
बन जाये तुम्हारा रंगीन चषक
जी-भर छकने के लिए आनन्द-संकल्प।

—१९३३

निद्रयिल्प्पिरन्न ञ्ञान्
निद्रयिल्ज्जीविच्चेने !
निद्रयिल् अवसान–
कालत्तु लयिच्चेने !

४

लब्धवोधमाम् जन्म–
देशत्तिन्निळक्कत्ताल्,
क्षुब्धमन्तरीक्षत्तिन्
दुर्न्निवारमाम् वीर्प्पाल्,
निन्मुखोल्लसन्नित्य–
सौन्दर्यम् नुकरुवान्
उन्मुखम् निल्क्कुम् निलिप्पल्
निन्नु ञ्ञान् उलयोल्ला !
उणरावु निन् दिव्य–
स्पर्शत्ताल् अत्यारूढ–
प्रणयान्तरंगत्तिल्
शुद्धवासनयिनि !
आनन्दसंकल्पङ्ङळ्
नुकरान् चायम् तेच्च
पानपात्रमायावू
क्षण भंगुरम् जन्मम् !

—१९३३

तो मैं, जो निद्रा में जनमा,
निद्रा में ही निमग्न रहता,
और अन्त में
निद्रा में ही विलीन हो जाता।

४

मुझे जन्म देनेवाली भूमि के प्रवुद्ध कम्पन में
तथा प्रक्षुब्ध अन्तरिक्ष के दुर्निवार निश्वास में
मैं तुम्हारे ही मुख का नित्य नूतन सौन्दर्य देखूँ
और उसका पान करने के लिए खड़ा रहूँ,
न हटूँ अपने स्थान से !
तुम्हारे दिव्य स्पर्श से
मेरे स्नेहपूरित अन्तरंग में
प्रोज्ज्वलित हो जाये विशुद्ध वासनाएँ।
मेरा यह क्षण-भंगुर जीवन
बन जाये तुम्हारा रंगीन चषक
जी-भर छकने के लिए आनन्द-संकल्प।

—१९३३

"इन्नु ञान्, नाळे नी"

"इन्नु ञान्, नाळे नी ; इन्नु ञान् नाळे नी"...
इन्नुम् प्रतिध्वनियक्कुन्नितेन्नोर्म्मयिल् !

पातवक्कत्ते मरत्तिन् करिनिषल्
प्रेतम् कणक्के क्षणत्ताल् वळरवे,
एत्रयुम् पेटिच्चरण्ट चिल शुष्क-
पत्रङ्ङळ् मोहम् कलर्न्नु पतिक्कवे,
आसन्नमृत्युवाम् निश्चेष्टमारुतन्
श्वासमिटयिक्कटय्क्काञ्ञु वलियक्कवे,
तारकरत्नखचितमाम् पट्टिनाल्
पारमलंकृतमाय विण्पेट्टियिल्
चत्त पकलिन् शवम् वच्चेटुप्पति-
नात्तमौनम् नालु दिक्कुकळ् निल्क्कवे,
तन्पिताविन् शवप्पेट्टिमेल् चम्बिच्चु
कम्पितगात्रियायन्ति मूर्च्छिय्क्कवे,
जीवितम्पोले रण्टट्टवुम् काणात्तो-
रा वषियिकल् तनिच्चु ञान् निन्नुपोय् ।
पक्षिकळ् पाटियि, ल्लाटियिल्लालील,—
यिक्षितितन्ने मरविच्चपोलेयाय् !

अन्तिकत्तुळ्ळोरु पळ्ळियिल् निन्नुटन्
पोन्ति "णाम्-णा" मेन्नु दीनम् मणिस्वनम्,

"आज मैं, कल तू"

"आज मैं, कल तू, आज मैं, कल तू"...
मेरी स्मृतियों में आज भी प्रतिध्वनित हो रहा है यह !

सड़क के किनारे ख़ड़े पेड़ की काली छाया
एक क्षण में ही प्रेत की तरह बढ़ जाती है।
सूखे हुए पत्ते भय से निःश्चेत हो कर
गिर रहे हैं, गिरते जा रहे हैं।
संज्ञा-शून्य हवा, जिसकी मृत्यु आसन्न है।
जब-तब गहरी साँसें ले रही है।
चारों दिशाएँ चुप्पी साधे खड़ी हैं
उठाने के लिए दिन की अरथी,
जो सितारों जड़े आकाश का
झिलमिलाता कफन ओढ़े पड़ी है।
अपने पिता की शव-पेटिका चूम कर
ग़श खाती हुई गोधूलि, थर-थर काँप रही है।
और, मैं खड़ा हूँ अकेला उस गलियारे पर
जिसके दोनों छोर अदृश्य हैं ज़िन्दगी की तरह,
न चिड़िएँ चहकीं, न बरगद की पत्तियाँ थिरकीं,
धरती जैसे जम गयी थी !

और अचानक पास के गिरजाघर की घण्टियाँ
चीख उठीं। 'णाम्! 'णाम्!!'

रण्टायिरत्तोळमाण्टुकळ्क्कप्पुर्–
त्तुण्टायोरा महात्यागत्तेयिप्पोषुम्
मूकमाणेंकिलुमुच्चत्तिल् वर्ण्णिय्क्कु–
मेकमुखमाम् कुरिशिने मृत्तुवान्,
आरालिरङ्ङिवरुम् चिल 'मालाख'––
मारायवराम् कण्ट तूवेण्मुकिलुकळ् ।
पापम् हरिच्चु पारिन्नु विण्णेरुवान्
पात काणिय्क्कुम् कुरिशे जयिय्क्कुक !

आ वषिय्क्कप्पोळोरु दरिद्रन्टे नि–
र्ज्जीवमाम् देहमटक्किय पेट्टि पोय ।
इल्ला पेरुम्पर्, शद्धयाम् विश्वस्त––
वल्लभतन्नुटे नेंचिटिप्पेन्निये !
इल्ल पूवर्षम्, विषादम् किटन्नल–
तल्लुन्न पैतलिन् कण्णुनीरेन्निये !
वन्नु तरच्चितेन् कण्णिलाप्पेट्टिमेल्
निन्नुमारक्षरम्, 'इन्नु ञान्, नाळे नी' ।
ओन्नु नटुङ्ङ् ञा, ना नटुक्कम् तन्ने
मिन्नुमुडुक्कळिल् दृश्यमाणिप्पोषुम् !

––१९३१

आँखों के सामने बादलों की रुपहली पर्तें छा गयीं
मानों देवदूत उतर रहे हों
उस शूली का स्पर्श करने,
जो है साक्षी महान् बलिदान की
और जो मूक हो कर भी
कह रही है कहानी उस महान् उत्सर्ग की
जो घटित हुआ था दो सहस्राब्द पूर्व।
धन्य है शूली
जो दिलाती है मुक्ति पापों से
और दिखलाती है धरती को राह स्वर्ग की !

फिर उसी रास्ते से गयी एक अरथी
एक जीवनहीन अभावग्रस्त शरीर,
कहीं कोई बैण्ड नहीं,
लेकिन है निष्कलुष आस्थामय
जीवनसंगी के दिल की धड़कन ;
फूलों की वारिश नहीं है,
लेकिन बरस रहे हैं बच्चे के आँसू,
जिसकी वेदना, लहरों की तरह, एक पर एक
चढ़ रही है।
अरथी से उभर कर अक्षर उठे
और मेरी आँखों को बेध गये :
"आज मैं, कल तू !"
और मैं सिहर उठा,
देखो, वही सिहरन अब तक
सितारों में झिलमिला रही है।

—१९३१

शैशवम्

जीवितम् स्वयम् वेषम्
मारुन्न माट्ट्त्तोटे
भूविनुम् वरुम् भाव–
भेदमाणसह्यम् मे ।
शैशवत्तिङ्कल कण्ट–
ञ्ञानल्ल ञ्ञानिक्कालम्
शैशवक्कण्णाल् कण्ट
पारल्ल पारुम् नूनम् !
एत्तिटुम् तोटान् कैया–
लाकाशमेन् मुट्ट्त्ते–
पुत्तिलञ्ञि तन् कोम्पिल्
केरि निन्नेन्नालन्नाळ् ;
गिरि पिन्नाले निन्नु
कै नीट्टियालुम् कळ्ळ–
च्चिरि पूण्टोटिप्पोरुम्
सुप्रसन्ननाम् तिङ्कळ्
पट्टुवृद्धनाम् माविन्
वेण्नुर कलर्न्नोरु
जट चिक्किं निल्क्कारु–
ण्टेन्नेयुम् विळिच्चाराल्,
किष्वन् वात्सल्यत्ताल्
विरय्क्कुम् चिल्लक्कैको–
ण्टष्किल्त्तलोटारु–
ण्टा राविन् कुमारने,
क्रूरतारुण्यम् वन्न तेन्तिनन्, वाल्यत्तिन्टे
'दूरदर्शिनि तट्टि' प्परिप्पानसूयालु !

शैशव

जीवन के वेष-परिवर्तन के साथ-साथ
भाव-परिवर्तन आ जाता है भूमि में भी,
असह्य है यह मेरे लिए।
मैं अब वह नहीं हूँ
जो शैशव में दिखायी देता था,
संसार भी अब वह नहीं रहा
जिसे शैशव की आँखों में देखता था।
तब तो—
आकाश मुझे छूने को आ जाता था।
यदि मैं आँगन में खड़े मौलिश्री की डाल पर
खड़ा हो जाता था;
नटखटी चाँद दौड़ा चला आता था।
मन्द-मन्द मुस्काता,
यद्यपि पहाड़ खड़े रहते पीछे-पीछे
हाथ बढ़ाये, उसे उठाने के लिए;
प्रसन्नवदन चन्द्रमा
बूढ़े आम की सफेद दाढ़ी सहलाता हुआ
मुझे बुलाने के लिए खड़ा रहता था
और
बूढ़ा आम काँपते हाथों वात्सल्यपूर्वक
सहलाता था उस रजनी-सुत को।
सोचता हूँ
क्यों आयी जलन-भरी यह क्रूर तरुणाई
मेरे बचपन की दूरबीन छीनने के लिए?

ज्ञानमेन्तिनु कट–
निक्कटुम् कै चेय्युन्नू
ञानकन्नोराळायी
विश्वत्तिलेल्लात्तिनुम् ।
मन्दभाग्यनायिन्नु
मारि ; लाळिक्कारुण्टु
सुन्दरप्रकृति तन्
सर्वभाववुमन्नाळ् ।
अन्नुषस्सयल्वक्क–
क्कारियाणु ; ण्नर्नेट्टु
तन्नुटे जोलिक्केङ्ङो
संभ्रमिच्चोटुम्पोष्ुम्
चेलिल् त्तन् तुटुत्त कै
एन् नेर्क्कु नीट्टीटाते
वेलिक्कल् वन्नेत्तिच्चु
नोक्काते पोकारिल्ल ।

उन्मुखम् पनिनीर्प्पू
चोरिवा तुरन्नल्प–
मेन्मुन्निल् निल्क्कुम् मुट्ट–
त्तोन्नु ञान् मुकरुवान् ।
कण्मुन्निल्क्कुनिञ्ञान्नु
निन्निटुम् चिरिप्पिक्कान्
वेण्मुकिल् नरमीश
वेच्चु केट्टिय वानम् ।
अरिविन् वेळिच्चमे,
दूरेप्पो, दूरेप्पो ! नी
वेरुते सौन्दर्यत्ते
क्काणुन्न कण् पोट्टिच्चु ।

२

ज्ञान क्यों इतनी क्रूरता करता है ?

हाय,

संसार की सारी वस्तुओं के लिए

मैं अब दूर का आदमी बन गया हूँ !

अब मैं मन्दभाग्य हूँ,

कितना पुचकारता था

सुन्दर प्रकृति के विविध भावों को उन दिनों !

सुन्दरी उषा मेरी पड़ोसिन थी,

अपने काम के लिए

घबड़ाती हुई भागती थी,

किन्तु मेरे बाड़ों पर झाँक कर देखना

और

अपना पेलवारुण हाथ मेरी ओर बढ़ाना

नहीं भूल पाती थी।

आँगन में गुलाब के फूल

अपने नन्हें-नन्हें मुँह खोले रहते थे

ताकि मैं चूम लूँ,

सफ़ेद बादलों की नक़ली दाढ़ी बाँध कर

आकाश झुक कर खड़ा होता था

ताकि मैं हँस पड़ूँ।

ज्ञान की ज्योति,

तू हट जा, हट जा !

फोड़ दी तूने मेरी सौन्दर्य-दर्शक आँखें।

३

मानुष, भवद् भाष—
यभ्यसिच्चप्पोळ्तन्ने
ञानय्यो, मऱ्ऩु पोय्
विश्वसुन्दरभाष ।
आ नल्ल भाषय्क्किल्ला
स्नेहमल्लाते शास्त्रम्,
आनन्दमल्लातर्थम्,
रूपमल्लाते वृत्तम् ।

अन्ति वन्नाकाशत्ति—
लक्षरम् कुऱिच्चिट्टु
चेन्तळिर्क्कैयाल् ; देवि
माऱ् निन्नीटुम् मुम्पे,
अप्पोष् मिषि तुऱ्—
न्नुळ्ळ पूक्कळुम् ञानुम्
ओप्पमायतु नोक्कि
वायिच्चू जातोल्लासम् ।

जालकान्तिकत्तोप्पा,
ञ्भाषयिल् पल कथ—
यालपिक्कारुण्टे ; ल्लाम्
सुग्रहमतिल् पिन्ने ।
मषयाय्, मरङ्ङळाय्,
पूक्कळाय्, आंग्यम् कूट्टुम्
निषलाय् संसारिच्चेन्
एल्लार्क्कुमोरे भाष !

मऱ्ऩाल् मऱ्क्कट्टे
मट्टुळ्ळतेल्लाम् तन्ने,
मऱ्ऩु कषिञ्ञोरा—
ञ्भाष कैवरुमेंकिल् !

३

हे मानव !
जब मैंने तुम्हारी भाषा सीखी
तो भूल गया वह विश्व विमोहक भाषा
जिसमें,
स्नेह को छोड़ कर कोई शस्त्र नहीं,
आनन्द को छोड़ कर कोई अर्थ नहीं,
रूप को छोड़कर कोई छन्द नहीं ।

अपने पल्लवारुण करों से
सन्ध्या आती थी
आकाश पर अक्षर अंकित करने ;
और
जैसे ही वह दिव्या वहाँ से हटती
तो उन्मीलित नयनों से फूल और मैं
पढ़ लेते थे उन्हें सोल्लास ।

मेरी खिड़की के पास का उपवन भी
उसी भाषा में कहानियाँ सुनाता था ;
बाद में
सब कुछ मेरे लिए अत्यधिक सरल हो गया
तब मैं बातें करने लगा
वर्षा से, वृक्षों से, कुसुमों से,
इंगितकारी प्रतिछायाओं से ।
—सब की ही तो भाषा थी समान ।

कोई हर्ज नहीं, अगर मैं भूल जाऊँ सब कुछ,
किन्तु करता है मन—
फिर से प्राप्त कर पाता मैं वह भाषा
जिसे मैं भूल गया ।

४

सञ्चितसुकृतनाम्
पैतले, तारुण्यत्ताल्
वञ्चितनाय् ञान् ; निन्टे
नाटिनिद्दुरापम् मे ।
इत्र मेल् पापाक्रान्त–
मित्र मेल् परतंत्र–
मित्र मेल् निरुन्मेष–
मल्ल तावकलोकम् ।

परबाष्पत्तिन्नाटि्ट्ल्
नी नीन्तिक्कळिप्पील ;
करयुन्नू नी कोच्चु–
तोषनाम् पू वीषुम्पोळ् ;
नी मुखस्तुतिप्पूवा–
लारेयुम् पूजिप्पील ;
नी मुटि चूटीटात्त
राजावु निन् राज्यत्तिल् ।
मामरम् निषल्प्पट्टु
विरिप्पू नी चेल्लुम्पोळ् ;
तूमलर्, तल कुनि–
'च्चाच्चारम् पर्युन्नु' ।
वल्लिक'ळिलत्ताळम्'
पिटिक्केच्चेटिकळ् पूम्–
चिल्लयाल् कै काणिच्चु
नटनम् नटत्तुन्नू ।
अन्यमाम् पुण्यस्थलम्
पूकुवानाशिप्पील
धन्यमाम् शिशुपद–
प्पाटार्न्न दिक्कल्लाते !

—१९३२

४

हे पुण्यशाली शिशु,
तारुण्य के कारण वंचित हो गया हूँ मैं,
अप्राप्य हो गया है तेरा वह साम्राज्य अब !
नहीं है तेरा संसार इतना परतन्त्र, इतना पापाक्रान्त
और इतना उन्मेषशून्य ।

दूसरों के आँसुओं की सरिता में
नहीं करता है तू जलविहार,
किन्तु
जब झर जाता है तेरा नन्हा साथी फूल
बिलख उठता है तू ।
तू नहीं करता
चाटुकारी के फूलों से
किसी की अर्चना ।
तू है अपने राज्य का
बिना-मुकुट राजा ।
पादप
तुम्हारे मार्ग में परछाइयों के पाँवड़े बिछा देते हैं,
मनोहर सुमन
सिर झुका कर अभिवादन करते हैं,
वल्लरियाँ
अपने पल्लवों के मंजीर बजाती हैं,
पौधे
फूलों लदी डालियों द्वारा भाव-मुद्राएँ दिखा कर नृत्य करते हैं ।
मैं केवल उसी पुण्यस्थान में जाना चाहता हूँ
जहाँ शिशुओं के पगांकनों की धन्यमुद्राएँ अंकित हैं ।

—१९३२

चन्द्रक्कल

तारकक्कूणुकळ् ताविमिन्नुम् दिव–
नीरवशाद्वलभूमियिलक्कूटवे,
पारमङ्ङिङ्ङङ्ङु पटर्न्नुपिटिच्चेषुम्
नीरदच्छेदच्चेरुमुळ्च्चेटिकळिळ्
वारियन्नूर्न्न निर्निलावाकिय
नेरिय सारियषञ्ञिअषञ्ञीटवे,
इज्जगत्तोक्के मयक्कुम् निजमुखम्
लज्जयाल् तानरियाते कुनिञ्ञता,
ओच्चकूटातेया नग्नपादम् वच्चु–
वच्चतिमात्रमधीर चन्द्रक्कल
एकयाय् मूकयाय् संकेतमेत्तुवान्
पोकयाम् ; धन्यनाक्कामुकनारुवान् !

नल्लकिनावुकळ् कण्टु चिरिय्क्कुन्नु
मुल्लमलरुम्, तळर्न्न तटिनियुम् ।
जागरक्लिष्टनायस्वस्थचित्तनाय्
सागरम् मात्रम् विरिमणल्मेत्तयिल्,
ताने तिरिञ्ञुम् मरिञ्ञुम् किटक्कया–
णी नेरमोक्केत्तुटिक्कुम् करळुमाय् ।

कामुकन्तन् नेञ्चिटिप्पु केट्टेङ्ङने–
या मुग्ध मेवुमकन्नुदासीनयाय् !
प्रेममदृश्यकरत्ताल् वलिय्क्कयाल्
व्योमत्तिल्निन्नुमट्टुत्तट्टुत्तेत्तवे
सोमकलयुटेनेक्कुं चुम्बिक्कुवा–
नोमल्त्तिरच्चुण्टु नीट्टिटुन्नू कटल् ।

चन्द्रकला

गगन में चमक रहे हैं तारकों के कुकरमुत्ते,
उसकी शाद्वल भूमि में इधर-उधर पनपकर
फैले हैं मेघ-खण्डों के छोटे-छोटे कँटीले पौदे,
उन्हीं में अटककर जब खिसक-खिसक पड़ती है
कमनीय कौमुदी की मृदुल साड़ी, तो
सहज लज्जा से वह झुका लेती है
अपना विश्व-विमोहक आनन।
कौन है इस शशिकला का सौभाग्यवान प्रेमी
जिसके अभिसार के लिए यह
चली जा रही है चुपचाप एकाकिनी
नीरव पग धरती हुई, संकेत-स्थली की ओर ?

हँस रही है कुन्द-कलिका,
देख-देखकर सुमधुर स्वप्न
विश्राम कर रही है थकी हुई तटिनी ;
किन्तु, जाग रहा है केवल सागर, स्पन्दित हृदय
लोट रहा है सैकत-शैया पर करवटें वदल-वदलकर।

सुनकर अपने इस प्रेमी के हृदय की धड़कन
कैसे रह सकती है वह मुग्धा उदासीन ?
प्रेम उसको खींच रहा है अदृश्य करों से
उतरी आ रही है वह व्योम से निकट-निकटतर
तो, लो, सागर ने वढ़ा दिये अपने लहर-अधर
चन्द्रकला की ओर, उसे चूमने के लिए।

स्फारदु:खत्तालिरुण्ट मन्मानस-
नीरधियेन्नेन्टे तिङ्कळ् तिळक्कुमो !

—१९३२

तुमुल शोक तम से आच्छादित मेरे मन को
न जाने कब प्रोज्ज्वलित करेगी
मेरी शशि-कला !

—१९३२

निमिषम्

जीवितप्पूविलेत्तेन् नुकर्न्नङङने
ताविन कौतुकाल् परिप्पारि
नीरवम् पोकुन्न कोच्चु निमिषमे !
चोरनाम् निन्टे चिरकुकळे
कोळ्मयिर् कोलुम् तन्कैकळिलाक्कानेन्
कोमळभावन मोहिय्क्कुन्नु ।
चुम्बिच्चुचुम्बिच्चेन् नेञ्चिलटक्कुवान्
वेम्पुमी मुग्धये वंचिक्कोल्ले !
कालिण केट्टट्टे नेरिय वाक्किन्टे
नूलिनालोमने ! नोविक्काते ।

कोंचुमी मुग्धिक सूक्षिच्चुनोकट्टे
पिचुचिर्किन्मेलक्षमयाय् ।
एण्णियाल्तीरात्त वर्ण्णविशेषङङळ्
कण्णीरालार्द्रमामीच्चिर्किल्
मानवमानसच्चायङङळाकिन
नानाविकारङङळ् चेर्त्तल्ली ?
मायिकमाकुमाब्भावङङळ् कार्विल्लिन्
माधुर्यम् पूशुमित्तुम्पिलक्काण्मू,
आशयाल् चंचलमायेष् मात्माविन्
पेशलमाकिय वेम्पलेल्लाम् ।

मुम्पिल् निन्नेत्तुन्नू, पिन्निल् मरयुन्नू,
मिन्नलुम् अेट्टुन्न वेगमोटे ।

निमिष

जीवन-सुमन के मकरन्द का पान कर
अत्यन्त कौतुक से पंख फहरा कर
नीरव उड़ जाने वाले हे लघु-निमिष,
कैसे चोर हो तुम !
मेरी यह कोमल भावना
वन्द कर लेना चाहती है,
अपने पुलकित करों में तुम्हारे पंखों को।
मत करो निराश इस मुग्धा को
जो तुम्हें वार-वार चूम कर
अपने हृदय के सम्पुट में मूँद लेना चाहती है।
प्रिय, कैसे वाँध दूँ तुम्हारे दोनों पैरों को
कोमल शव्दों की निष्पीड़ डोर से !

अस्फुट-वाक् यह मुग्धा देखती है अधीर,
इन नन्हे-नन्हे अश्रु-सिक्त पंखों को ;
इन पर जो विविध रंग दीखते हैं,
क्या वे ही नहीं हैं मानव-मन के वहुरंगी भाव-अनुभाव
अंकित हो गये हैं जो चित्र-विचित्र रूप से
ये ऐन्द्रजालिक भाव जिन पंखों के छोरों पर
इन्द्रधनुष के माधुर्य की राँगोली रचते हैं
उन्हीं पर देख लेते हैं आशा के चांचल्य से स्पन्दित
आत्मा की समग्र कोमल उत्सुकता !

प्रत्येक पल आता है सामने से,
और विलीन हो जाता है पीछे जाकर कहीं
इस वेग से कि
विजली भी विस्मित हो जाती है !

एङ्ङु निन्नेङ्ङुनिन्नेकान्तवैचित्र्यम्
तङ्ङुमिक्कोच्चुनिमिषमेल्लाम् ?
एङ्ङुपोयेङ्ङुपोय् मायुन्नु भावन–
यिङ्ङु पकच्चुमिषिच्चुनिल्क्के ?
नेर्म्मयिल्त्तन्विरल्त्तुम्पिन्मेलोट्टियो–
रोर्म्मतन्स्निग्धमाम् रेणुक्कळे
पुंचिरि तूकियुम् कण्णुनीर्‌ वार्त्तुमी
वंचित नोक्कुन्नु मारि मारि ।

एत्रमेल् क्षुद्रमल्लोरो निमिषमा–
प्पत्रमटिच्चतु पारिलेंकिल्
एण्णियालेत्तात्त जीवितस्पन्दङ्ङळ्
मण्णिलुम् विण्णिलुमुण्टाकुमो ?
कुट्टियेक्काणानुषरुन्नोरम्मतन्
मट्टिलुषलुन्न कर्म्ममेल्लाम्
तन्नुटेतन्नुटेयाय फलङ्ङळे–
च्चेन्नु कण्टोन्नु पुणर्न्नीट्टुमो !
पिंचुचिरकिन्ट् काटि्टनाल् पापितन्
नेञ्चिल् ज्वलियुक्कट्टे भीतिनाळम् !

एत्रमेल् क्षुद्रमल्लोरो निमिषम–
प्पत्रमटिच्चतु पारिट्टुम्पोळ्
अण्डकटाहवुम् मुन्पोट्टु मुन्पोट्टु–
च्चण्डमाम् वेगत्ताल् नीङ्ङीट्टुन्नु !
ओरो चिरकटि जन्तुचित्तङ्ङळि–
लोरोविधत्तिल् प्रतिध्वनियुक्के
कर्म्मसंस्कारत्तिन् मार्ग्गत्तिलूटवे
जन्मस्मृतिकळ् चविट्टिक्केरि,
चेन्निटुम् जीवितघोषयात्रयुक्कतु
तन्नेयाणानकध्वानकेळि ।

किस एकान्त रहस्य-लोक से आ जाते हैं
ये विचित्र लघु निमिष !
और विलीन हो जाते हैं जाकर कहाँ ?
चकित है भावना, देखती है यह
विस्फारित नेत्र।
मेरी यह ठगी गयी भावना देखती है
अपनी उँगलियों के पोरों पर लगे
अत्यन्त सूक्ष्म स्मृतियों के स्निग्ध पराग को,
कभी मुस्कराते होंठों,
कभी वरसते नयनों !

कितना क्षुद्र है यह निमिष,
किन्तु यदि उड़े नहीं यह अपने पंख फड़फड़ा कर
तो कैसे हो इस मिट्टी में और इस विपुल व्योम में
संख्यातीत जीवों का स्पन्दन ?
कैसे हो मिलन आतुर कर्म का अपने फलों से
कैसे हो आलिंगन उनका
उस माँ की तरह जो व्याकुल दौड़ती है
अपने शिशु को देखने के लिए !
इन नन्हें पंखों का मर्मर मारुत
प्रज्ज्वलित करे भीति-ज्वाल पापियों के मन में।

कितना लघु होता है प्रत्येक निमिष
किन्तु जब वह डैने फैला कर उड़ता है
तो आगे-आगे भागने लगता है प्रचण्ड वेग से सारा ब्रह्माण्ड !
प्रत्येक पंख की ध्वनि
प्रतिध्वनित होती है विभिन्न रूपों में
प्राणियों के मन में।
यही प्रतिध्वनि बन जाती है नगाड़े का लीला-घोष
जब जीवन का जुलूस
कर्म-संस्कारों के मार्ग से आगे बढ़ता है
जन्म और मृत्यु को लाँघ कर।

पिन्नाले पिन्नाले तोट्टुतोट्टङ्ङिन्ने
वन्नीटुम् मुग्धचलनङ्ङळे,
निङ्ङळ् परत्तुम् च्चिऱकिन् निषलल्ली
ङ्ङळ् तन्नत्भुतमाय वानम् ?
नित्यमाय् निश्चलमायतु काणुन्नू ;
सत्यमाय् तोन्नुन्न मिथ्यमात्रम् !
कुञ्ञिच्चिऱकटिक्काट्टि्टनाल् गोळङ्ङळ्
मञ्ञिन् कणिकपोल् कम्पिक्कुन्नु :
मानवशक्तितन् गर्वत्तिन्साम्राज्यम्
माऱालपोले विऱच्चीटुन्नु !

जीवितत्तिन् पषम्पूक्कळ् कोषिञ्ञाले-
न्तीविधमुळ्ळ चिऱकटियाल् ?
नूऱ्ऱनूऱायिरमल्ला परिणाम-
नूतनभंगिकळ् मोट्टिटुन्नू !
अम्बरमध्यम् तिळक्कुन्नोरादित्य-
बिम्बवुम् केट्टुपोमेंकिलाट्टे ;
अक्करियूतिप्पिटिप्पिच्चु मट्टोरु
तीक्कट्टयुण्टाक्कुम् सर्ग्गशक्ति !
चूटुम् वेळिच्चवुम् पिन्नेयुम् पिन्नेयुम्
नेटि विटर्न्निटुम् जीवितङ्ङळ् ।

कोच्चुनिमिषमे ! यात्र चोदिच्चुको
ण्टिच्चिन्त निर्त्तुन्नु, पोवुक नी ।
ानटक्कीटुमेन् कण्णुनीर्त्तुळ्ळि वी-
णी नल्च्चिऱकु कुषयुम् मुन्पे !

परम्परित हो कर आनेवाले
मुग्ध स्पन्दनों!
हमारा यह विस्मयकारी आकाश
तुम्हारे फैलाये पंखों की छाया ही तो है।
दिखाई देता है यह नित्य और निश्चल,
किन्तु है यह मात्र मिथ्या जो प्रतीत होता है सत्य-सा।
इन नन्हें पंखों की हवा से
ग्रह-समूह प्रकम्पित हो जाते हैं
ओस की बूंदों की भाँति;
मानव की शक्ति और दर्प का साम्राज्य
हिल जाता है
मकड़ी के जाले की तरह।

इन पंखों के झोंकों से
झड़ जाते हैं जीवन के वासी फुल,
हर्ज ही क्या है भला!
लो, विकास की अगणित नूतन सुषमाएँ
मुकुलित हो रही हैं।
हो सकता है आकाश पर दिपता यह तरुण रवि-बिम्ब
बुझ जाये!
यह सर्गशक्ति अपनी फूंक से उसे फिर
प्रज्ज्वलित अंगारा बना देगी।
और विकसित होगा तब नवजीवन
पा कर ताप एवं निर्मल प्रकाश!

विदा, प्यारे लघु निमिष!
समाप्त करता हूँ मैं यह चिन्तन,
बढ़ जाओ तुम आगे,
इससे पहले कि मेरे अश्रु-कण से
तुम्हारे पंख भीग जायें।

पिन्नाले पिन्नाले तोट्टुतोट्टङ्ङिङ्ङने
वन्नीटुम् मुग्धचलनङ्ङळे,
निङ्ङळ् परत्तुम् चिऱकिन् निषलल्ली
ञङ्ङळ् तन्नत्भुतमाय वानम् ?
नित्यमाय् निश्चलमायतु काणुन्नू ;
सत्यमाय् तोन्नुन्न मिथ्यमात्रम् !
कुञ्ञिच्चिऱकटिक्काट्टिनाल् गोळङ्ङळ्
मञ्ञिन् कणिकपोल् कम्पिक्कुन्नु :
मानवशक्तितन् गर्वत्तिन्साम्राज्यम्
माऱालपोले विऱच्चीटुन्नु !

जीवितत्तिन् पषम्पूक्कळ् कोषिञ्ञाले-
न्तीविधमुळ्ळ चिऱकटियाल् ?
नूऱुनूऱायिरमल्ला परिणाम-
नूतनभंगिकळ् मोट्टिटुन्नू !
अम्बरमध्यम् तिळक्कुन्नोरादित्य-
बिम्बवुम् केट्टुपोमेंकिलाट्टे ;
अक्करियूतिप्पिटिप्पिच्चु मट्टोरु
तीक्कट्टयुण्टाक्कुम् सर्गशक्ति !
चूटुम् वेळिच्चवुम् पिन्नेयुम् पिन्नेयुम्
नेटि विटर्न्निटुम् जीवितङ्ङळ् ।

कोच्चुनिमिषमे ! यात्र चोदिच्चुको
ण्टिच्चिन्त निर्त्तुन्नु, पोवुक नी ।
ञानटक्कीटुमेन् कण्णुनीर्त्तुळ्ळि वी-
णी नल्च्चिऱकु कुषयुम् मुन्पे !

परम्परित हो कर आनेवाले
मुग्ध स्पन्दनों !
हमारा यह विस्मयकारी आकाश
तुम्हारे फैलाये पंखों की छाया ही तो है।
दिखाई देता है यह नित्य और निश्चल,
किन्तु है यह मात्र मिथ्या जो प्रतीत होता है सत्य-सा।
इन नन्हें पंखों की हवा से
ग्रह-समूह प्रकम्पित हो जाते हैं
ओस की बूँदों की भाँति ;
मानव की शक्ति और दर्प का साम्राज्य
हिल जाता है
मकड़ी के जाले की तरह।

इन पंखों के झोंकों से
झड़ जाते हैं जीवन के बासी फुल,
हर्ज ही क्या है भला !
लो, विकास की अगणित नूतन सुषमाएँ
मुकुलित हो रही हैं।
हो सकता है आकाश पर दिपता यह तरुण रवि-बिम्ब
बुझ जाये !
यह सर्गशक्ति अपनी फूंक से उसे फिर
प्रज्ज्वलित अंगारा बना देगी।
और विकसित होगा तब नवजीवन
पा कर ताप एवं निर्मल प्रकाश !

विदा, प्यारे लघु निमिष !
समाप्त करता हूँ मैं यह चिन्तन,
बढ़ जाओ तुम आगे,
इससे पहले कि मेरे अश्रु-कण से
तुम्हारे पंख भीग जायें।

मैं तुम्हारे फूल-से पंखों पर
सकौतुक लिखना चाहता हूँ यह सन्देश,
अपने चिर-प्रार्थित सौन्दर्य-देवता के लिए :
"आदर्श के भीतर देखता हुआ
अपने संकल्प की छाया,
करता हुआ उसका आदर
कितने दिन बिताऊँगा मैं ?"

—१९४५

कूणुकळ्

पुत्तनाम् दिनत्तिन्टे
माणिक्यमुळ, पूर्व–
दिक्तटत्तिल्किकळ–
न्नींटवे कोटि वीशि,
कोम्पिन्टे तुम्पिलच्चेम्म–
ण्णार्न्न काळकळेत्तन्–
मुम्पिलाय् नटत्तियुम्,
तप्पाळिच्चिटयिक्कटे,
मानवसंस्कारत्तिल्–
प्परिवर्त्तनत्तिन्टे
गानरेखकळाद्यम्
कुरिच्च कलप्पये
तन्नुटे मेलिञ्ञ कय्–
च्चुमलालेन्तिक्कोण्टुम्
चेन्नु कर्षकन् नीण्ट
वरम्पिन्वक्किल्क्कूटि ।

नालुभागत्तुम् बीजा–
धानकौतुकमुळ्ळि–
लेलुमा वयलुक–
ळात्तगन्धकळायि,
आट्टुवंचिप्पूवालि–
ट्टनक्कि मणप्पियक्कुम्
काट्टु वन्नवन्नेकी
नेत्त्रोरार्द्रमाम् सौख्यम् ।

कुकुरमुत्ते

नये दिवस का मणि-अंकुर
पूर्व दिशा में फूटा
और उसकी बेल पनप कर
सब जगह फैलने लगी।
खेतों की लम्बी मेड़ों के किनारे-किनारे चलता हुआ
आ पहुँचा किसान
हाँकता हुआ अपने बैलों को
जिनके सींग हैं धूल-धूसरित
कभी-कभी सहला देता है पीठ उनकी
अपने दुर्बल कन्धों पर उठाये हुए है वह हल
जिसने मानव-संस्कृति में परिवर्तन की
प्रथम गीत-रेखाओं को अंकित किया।

उसके चारों ओर
बीजाधान कौतुक से भरी
धरती
मादक गन्ध लिये खड़ी रही।
काँस की पूँछ को
हिला-हिला कर
आनेवाली हवा
उसको सुख देने लगी।

मंगळम् वितय्क्कुवा–
ना नरन् मृगशक्ति–
तन् गळत्तिङ्ङकल् स्नेहाल्–
त्तटवि नुकम् वय्क्के,
मुन्पिले मन्निन्नुळ्ळिल्–
क्कलर्न्न गानम् कोषु–
त्तुम्पुरञ्ञुण्टाम् चालिल्–
निन्नुमिङ्ङने पोङ्ङि :––

"सौम्यमाम् कलप्पतन् सन्देशम् : ञानेन्नेन्नुम्
साम्यवादिया, णेन्ट् मूर्च्चयेरिय नावाल्
पारिनेयिळक्कुम् ञान्, निरप्पाक्कुम् ञान्, चेतो–
हारियाक्कुम् ञान् हर्ष हरितरोमाञ्चत्ताल् ।
इटिञ्ञु निरङ्ङिय कोविलिन् तर्कळ्, वी–
णटिञ्ञु तुटङ्ङिय कोट्टकळ् मतिलुकळ्,
जीर्णमाम् किटङ्ङुकळ्, तरिशाय्त्तीर्न्नोरस्थि–
कीर्णमाम् मृगीयोग्र युद्धभूमिकळेल्लाम्
नोवुमेन् गानत्तिन्ट् चालुकळाले माञ्ञु–
पोकुमाकवे नव्य चैतन्यम् मुळच्चार्क्कुम्"

जीवितत्तिनेयुण
र्त्तीट्टुमाराकाशत्ति–
ली वितक्कालप्पाट्टु
माट्टोलिक्कोण्टेन्नालुम्,
चेणुलाविटुम् कोट्ट–
क्कुटयुम् पोक्किक्कोण्टु
कूणुकळ् कुलुङ्ङाते
निल्क्कयाणन्नेरत्तुम् ।
विण्णिलुम् वलियता–
णेन्नु तोन्निप्पोम् पुट्टु–
मण्णिलाज्जीर्णोद्धत्यम्
निवर्त्तुम् कळिक्कुट !

जब अपने संसार की मंगल-कामना के लिए
मृग-शक्ति को सप्रेम पुचकारकर
उसके कन्धे पर जुआ रखा
तो धरती की आत्मा में सोया पड़ा गान
हल की नोक से कुरेदी गयी मिट्टी में से यों फूट पड़ा
सौम्य हल का सन्देश :

"मैं हूँ सनातन साम्यवादी
मैं अपनी पैनी जीभ से समूची धरा को हिला दूँगा
और लाऊँगा समता
उसे बनाऊँगा हरी-भरी हर्ष-पुलकित।
ढहते महलों की नींवें
गिरते हुए दुर्ग-प्राचीर
पटती हुई ख़न्दकें
उजड़ते हुए अस्थिकीर्ण उग्र मृगीय समरांगण
सब मेरे दर्द-भरे गीतों की धारा में विलीन हो जायेंगे
और नवचेतना के अंकुर फूटकर लह-लहा उठेंगे।"

जीवन के जागरण का यह बुआई-गीत
चारों ओर अन्तरिक्ष में गूँजता ही रहा
किन्तु
कुकुरमुत्ते खड़े रहे अचंचल!
भूरी मिट्टी में इस जीर्ण अभिमानी ने
जो छाते रोप दिये हैं
उन्हें वह समझता है
जैसे वह आसमान से भी ऊँचे और महान् हैं

मन्निन्नोरलंकारम्,

कालत्तिन्नहंकारम्,

विण्णिलेत्तारङ्ङळ्क्को

विस्मयमेन्तेन्तल्ल !

नाटिनेप्पुतुक्कुन्न

परिवर्तनत्तिन्टे

नावु नक्कुंपोषे यूक्की

गौरवम् मरक्कोल्ले !

—१९४५

पृथ्वी के अलंकार हैं,
काल के अहंकार हैं
आकाश के तारों के लिए विस्मय की वस्तु हैं
और न जाने क्या-क्या हैं।
ओ कुकुरमुत्तो,
इस पृथ्वी को नव्य बनानेवाले परिवर्तन की
क्षुब्ध जिह्वा जब तुम्हें चट कर जायेगी
तब भी तुम अपने अहंकार को नहीं भूलोगे !

—१९४५

ओरु पषय एट्

कुन्निल्निन्निऱ्ङिङ ञा—
नस्तमिच्चप्पोळ् ; सन्ध्य
पोन्निरक्कतिर्क्कट्ट्—
येट्टुवानोरुङ्ङ्वे
चिन्नियोरुतिर्मणि—
यॆन्नपोलाकाशत्तु
मिन्नियङ्ङिङ्ङ्ङायिट्टु
तरळम् ताराजालम् ।
कट्ट्मेल् तिरुकिय
काञ्चियोररिवाळि—
न्नट्ट्मन्नेरम् काणा—
मम्पिळिप्पोळियायि ।
प्रेमपूर्णमाम् कण्णु—
पोलोरु विळक्कता,
श्याममैतानत्तिन्टॆ
वक्किलेक्कुटिल्क्कुळ्ळिल् ।
'वन्यपुष्प'मेन्नारे
वाषि्त्त ञान् पण्टा ग्राम—
कन्यतन् स्मरणयाल्
कण्णिम ननञ्ञुपोय् !

कालि मेय्क्कुवानायि—
ट्टी मलंचेरुविला—
व्वालिक वरुम्, पोकुम् ;
अन्नु कूट्टायी ञङ्ङळ् ।

ओटक्कुषल्

एक पुराना पन्ना

अस्त हो गया सूर्य
और मैं उतरा टीले से नीचे ;
सन्ध्या
सुनहरी किरणों के धान का
भुट्टा ले जाने लगी,
बिखरे हुए धान्य के समान
इधर-उधर चमकने लगे तारक,
ज्यों खोंसा गया हो भुट्टे पर
चन्द्रमा की रेखा दिखायी दे रही थी—
सान दिये हँसिए की तरह ।
श्यामल मैदान के किनारे की झोंपड़ी में
जल रहा है एक दीप,
प्रेमपूर्ण नयन की भाँति ।
वन्यपुष्प कह कर
जिसकी पहले मैं प्रशंसा करता था
उस ग्रामीण कन्यका की याद
मेरे मन में आ गयी,
और मेरी बरौनियाँ गीली हो गयीं ।

वह बाला आया करती थी
गाय को चराने के लिए इस तलहटी में,
इस तरह हम बन गये थे मित्र ।

चेरुपैक्किटावोन्नु–
ण्टायवळ्क्कतिन्नन्नु
करुकक्कूम्पेकुन्न–
ताणोरु विनोदम् मे ।
चोल्लियालोट्टुङिङल्ल,
वार्त्त ञाङङळ्क्कन्नेन्ना–
लल्लिटय्क्कतिरिट्टुम् ;
ञाङङळ् पोम् सनिश्वासम्,

कुन्नु नल्पूच्चेण्टायुम्
ताष्.वारम् वासन्तश्री–
तन्नुटे मरतक–
प्पून्तालमायुम् निल्क्के ;
अन्नोरन्तियिल् चाञ्ञ
काट्टुतैमाविन् कोम्पिल्–
च्चेन्निरुन्नतिन् पूवा–
लेरिञ्ञु विहरिय्क्के ;
एन्नुटे नोक्कोरोन्नु–
मा मुग्धकुमारितन
स्विन्नमाम् कविळ्प्पूविल्
पुळकम् मुळप्पियक्के ;
आ मनोहरियुटे
नीलनेत्राकाशत्ति–
लामन्दम् परन्नुपोय्
मन्मनमतिदूरम् ।

'अल्लल्ला ! पूवालिप्प–
य्येङङे'न्नु चोल्लिप्पेट्टे–
न्नलणिक्कुष.लषि–
ञ्ञेषुन्नेट्.टवळ् पोके,

उसकी एक छोटी-सी गैय्या थी
जिसे दूब का अंकुर खिलाना मेरा विनोद था।
हमें कितनी ही बातें करनी होती थीं
जो कभी पूरी ही नहीं होती थीं,
तब रात्रि आकर हमारे बीच में
सीमा खींचती थी
और हम सनिश्वास चले जाते थे।

बात है
एक सन्ध्या की—
जब कि पहाड़ी दिखायी देती थी कुसुम-मंजरी-सी
और
तराई मधुलक्ष्मी की मरकत-मय कुसुम-थाली-सी,
वन-रसाल की झुकी डाल पर बैठ कर
हम दोनों एक दूसरे पर फूल फेंक कर
क्रीड़ा कर रहे थे ;
मेरी चितवन उस मुग्धा कन्या के
खिन्न कपोलों पर
पुलक अंकुरित करती थी,
उस सुन्दरी के नील-नयन-गगन में
मेरा मन
धीरे-धीरे बहुत दूर तक उड़ गया।

"अरी मेरी पूवाली,[1] कहाँ चली गयी तू।"
कहती हुई जब वह उठी—
उसकी केश-राशि खुल गयी
उसकी आँखों की बरौनियों पर,

---

[1] गाय के प्रति असीम वात्सल्य दिखाने के लिए यह शब्द प्रयुक्त होता है।

ऒन्तक्कार्.वाक्कल्त्तारम्-
पोले, कण्पीलित्तुम्पि-
लेन्तिय पोटिक्कण्णी-
रिप्पोषूम् काणुन्नू ञान् !
इल्लवळिप्पोळ्—एन्ना
ला स्मृतिप्रकाशमे-
न्नल्ललिन् कोटुमुटि-
त्तुम्पिन्नुम् तिळक्कुन्नु !!

—१९३४

जैसे चमक उठा हो सितारा
सन्ध्या-मेघ के किनारे,
चमक उठी एक अश्रुकणिका
जिसे मैं आज तक
याद कर रहा हूँ।
आज वह नहीं रही
किन्तु उसी स्मृति की ज्योति
मेरे शोक-गिरि के उच्चतम शिखर को
आज भी चमका रही है।

—१९३४

कर्म्मक्षेत्रत्तिल्
(गद्यकविता)

प्रभातमे,
कालम् कात्तुकोण्टिरिक्कुन्न प्रभातमे,
स्वागतम् !
उन्नतशिरस्सुकळाय मलयसह्यन्मार्,
उदारदर्शनयाय केरळावनियुटे
अंगरक्षकन्मार्,
मरतकत्तळिककळिल् मधरोपहारमेन्ति,
अविटत्ते आगमम् प्रतीक्षिच्चें
अक्षमम् निलकोळ्ळुन्नु ।
राजकीयप्रभावत्तिन्टे रामणीयकम् निरञ्ञ मुद्र,
श्याममाय भार्ग्गवरामनन्दिनियुट पिर्किल्
ओळमटिच्चें अटियोळम् उलञ्ञिषयुन्न
नीलनीराळम्,
चक्रवाळम् वरे परन्नु मिन्नुन्नु ।

सत्यदर्शक, कर्म्मप्रेरक, वरु !
पुण्यदर्शनमरुळु !
प्रकाशत्तिन्टे कनकप्परिचकोण्टॅ,
अन्तरीक्षत्ते आवरणम् चेयि्तरिक्कुन्न
मलिनमुखमाय अन्तरीक्षत्तेयुम्,
आत्माविने
अतिदीनम् आलिंगनम् चेयि्तरिक्कुन्न
आलस्यत्तेयुम् दूरे नीक्कु ! तीरे माय्क्कु !

कर्मक्षेत्र में

हे प्रभात,
काल की प्रतीक्षा में स्थित हे प्रभात,
स्वागत !
समुन्नत शिरस्क ये शैल
मलय और सह्यद्रि,
जो हैं इस उदार-दर्शिनी केरल अवनि के अंगपाल,
अधीर खड़े हैं
मरकत की डाली में मधुर उपहार लिए।
तुम्हारे आगमन की प्रत्याशा में।
आक्षितिज फैला, उद्दाम लहरें उछालता
यह नील महासागर चमचमा रहा है,
श्यामल परशुराम-नन्दिनी[1] की पीठ पर
एड़ी तक लटकता
राजसी प्रभाव का रमणीय चिह्न-सा।

आओ हे सत्यदर्शक, कर्म-प्रेरक,
दे दो अपने पुण्य दर्शन !
दूर कर दो प्रकाश को कनक-ढाल से
इस मलिन-मुख घोर अन्धकार को
छा गया है जो अन्तरिक्ष पर।
जड से उखाड़ फेंक दो आलस्य को
बाँधता है जो आत्मा को
अत्यन्त दीन आलिंगन में।

---

१ पुराण-प्रसिद्ध है कि परशुराम ने अपना परशु फेंक कर केरल को समुद्र से निकाला था।

सुमनस्सुकळुटे सुभगजीवितम्
स्वतन्त्रमायि विटरट्टे !
विस्मयमार्न्न आर्द्रहृदयम्
वेळिच्चम् नुकर्न्नुणरट्टे !
निर्भयमाय सुरभिलाशयम्
उयर्न्नुयर्न्नु वीशट्टे !

इन्नलत्ते इरुण्ट निषलुकळिल् निन्नॅ
इळये विटर्त्तान् वन्न मोचक,
नवचैतन्यदायक,
प्रवृत्तिमार्ग्गप्रवाचक,
अविटत्ते विजयम् लोकत्तिनुदयम् !
निणमणिञ्ञ इरुट्टॅ
निन्टे कालक्कल् किटक्कुन्नु ;
निर्मियन्न गगनम्
निन्ने वन्दनम् चेय्युन्नु ।
प्रकाशत्तिन्टे तंकत्ताक्कोल्कोण्टॅ,
अन्धयुम् जीर्ण्णयुमाय तमिस्रयुटे
अनन्तमाय तुरंकु तुरक्कु !
अकत्तटच्चिरिक्कुन्न दिव्यज्योतिस्सुकळे मोचिप्पियक्कु ;
उदयत्तिन्टे विटर्न्नुवरुन्न चेंपताक उलकमाके निवरट्टे !
कुटिलुकळिल्, वयलुकळिल्, जीवितोष्मावु वितरट्टे !
आलस्यमे, अकले !
भयमे अकले !
जीर्ण्णते, विलकि निल्क्कॅ !
एल्लाम् इन्नले ।
वरुविन्, कर्म्मक्षेत्रत्तिल्
ओत्तुचेरुविन् !
वितच्चस्वप्नङ्ङळुटे
तंकक्कतिरुकळ् कोय्युविन् !

—१९४४

सु-मनों का सुभग जीवन
स्वाधीन और विकस्वर हो ;
जाग उठें, प्रकाश पीकर
विस्मित आर्द्र हृदय ;
फैल जायें, ऊँचे ऊँचे
निर्भीक सुरभिल भाव !

विगत रात की काली छायाओं से
वसुन्धरा की विमुक्ति के लिए आने वाले विमोचक,
हे नवचैतन्यदायक,
कर्म-मार्ग सन्देश-वाहक,
तुम्हारी विजय हो, जग का उदय हो !
पड़ा है तुम्हारे पैरों पर
रक्तपंकिल अन्धकार,
खड़ा है तुम्हारी वन्दना में
रंगीन गगन।
अपने प्रकाश की कनककुंजिका से
खोल दो तमिस्रा का अनन्त कारागार ;
कर दो दिव्य ज्योतियों को उन्मुक्त
ताकि उदय की विकस्वर पताका
समस्त संसार में उल्लोलित हो उठे !
कुटियों में, खेतों में
फैल जाएँ जीवन की ऊष्मलता !
भाग जा रे आलस्य !
दूर हो जा, रे भय !
हट जा सामने से, रे जीर्ण भाव !
आओ भाइयों,
हम मिल-जुल कर उतर जाएँ कर्म-क्षेत्र में
काट लें कनक-वालियाँ
बोये हुए सपनों की।

—१९४४

चक्रवाळम्

मानवविज्ञानमेत्र वळर्न्नालुम्
नूनम् पराधीनमाणतेन्नुम् ।
उत्पतिष्णुत्ववुम्, संकेतलंघन—
तत्परभाववुम् काणिक्कट्टे,
केवलस्वातन्त्र्य, मन्यानपेक्षितम्
पावत्तिन्निल्लेत्र गर्विच्चालुम् ।

नालंचु पेराणु तन् तुणक्कारिमा—
रालम्बमिल्ल मटंटेङ्ङायालुम् ।
भूतप्रपंचत्तेप्पटिट्टप्पल कथ
चातुर्यमोटवर् विस्तरियक्कुम्
नेरेतु पोय्येतेन्नारामतिल्लति—
न्नारुमे संशयम् वन्नाल् तीर्प्पान् ।

तन् 'चक्रवाळ' मरक्कुट तन्नुळ्ळिल्
संचरिच्चीटेणमेन्नुमेन्नुम् ।
अक्कुटयक्कुळ्ळिलोतुङ्ङुन्नु तन्लोक—
मोक्कयुम्; संशयम् तन्ने चुटट्टुम् ।
अक्कुटवट्टत्तिन्नप्पुरत्तेयक्कोन्नु
नोक्कुवान् धैर्यमेन्नुण्टाकुन्नु !

क्षितिज

मानव की प्रतिभा
कितना ही विकास क्यों न पाये
फिर भी वह है सदा पराधीन;
चाहे कितना ही गर्व वह करे
प्रगतिशीलता का—
रुढ़िलंघन की क्षमता का गर्व—
किन्तु उस बेचारी के भाग्य में
स्वावलम्बिनी स्वतन्त्रता नहीं लिखी है।

उसकी चार-पाँच सहेलियाँ हैं
छोड़कर उन्हें और कोई अवलम्बन नहीं उसका,
भूत-जगत् के सम्बन्ध में
कितनी ही दन्त-कथाएँ
चतुराई के साथ वे सुनाया करती हैं।
इनमें कौन सच है और कौन झूठ है,
इस सन्देह को दूर करनेवाला कोई नहीं।

क्षितिज-रूपी छत्र के नीचे-नीचे ही
उसे अन्तःपुर की कामिनी की तरह
सदा चलना पड़ता है।
उस छत्र के छोटे-से घेरे में ही
उसका सारा संसार सीमित है।
चारों ओर केवल सन्देह ही सन्देह है।
किन्तु नहीं है साहस उसे
उस छत्र के बाहर झाँककर देखने का।

चेप्पिन्नकम्पेट्ट तुम्पिपोल् जिज्ञास
तप्पित्तटञ्ञु पिटञ्ञिटुन्नु ।
कोम्पुम् चिरकुमोटिञ्ञोरज्जीविपोल्
वेम्पुमिज्जिज्ञास वीणिल्लेंकिल्,
नाकवुम् लोकवुम् तम्मिलिप्परियुन्न
रेखावलयम् शिथिलमाक्कि
सत्यत्तिन् पूर्ण्णमाम् दीप्तियिल्च्चेन्नतु
तत्तिप्परन्नु कळियक्कुकिल्ले ?

अक्षममानवजिज्ञासतन्नुटे
पक्षम् विटर्त्तियक्कानेन्नुमेन्नुम्
वेल्लुविळियाय् विकस्वरशीलमा—
युल्लसिच्चीटावु चक्रवाळम् !

—१९४४

डिबिया में बन्दिनी बनी तितली की तरह
जिज्ञासा चारों तरफ़ तड़पती टटोलवाँ घूमती है
यदि पर-कटे, डंक-टूटे, शलभ के समान
मानव की जिज्ञासा धराशायी न हो गयी होती
तो क्या वह क्षितिज की
उस सीमा-रेखा को तोड़
सत्य की पूर्ण दीप्ति में पहुँचकर,
फुदकती-मँडराती हुई नहीं खेलती ?

मानव की आतुर जिज्ञासा के पंखों को
खोलने के लिए
स्वयं एक चुनौती के रूप में
यह क्षितिज
अनुक्षण फैलता हुआ
सदा विराजमान रहे !

—१९४४

पूजापुष्पम्

सत्यसौन्दर्यमे ! निन्प्रकाशत्तिनाल्
नित्यम् विटरुमाऱावुकेन् जीवितम् !
एन्करळिंकल् निऱयुमाऱाक निन्—
संकल्पसत्तिन् समार्द्रमाम् माधुरि !
मुट्.ट्रुमितिल्निन्नुयर्न्ननिर्वाच्यमाय्
चुट्.ट्रुम् सुरभिलोन्मादम् परक्कुक !
एन्नुमेनियक्कु निऱम पिटिप्पियक्कुक
निन्नुज्ज्वलानुग्रहत्तिन्टे रश्मिकळ् !
वीणुपोयेंकिलो, तृच्चेवटियक्कतु
चेणुट्.टोरर्च्चनमाकुमाऱावुक !

—१९४२

पूजा-पुष्प

हे सत्य सौन्दर्य,
तुम्हारे प्रकाश से
सदा प्रफुल्ल हो जाये
मेरा जीवन !
मेरे हृदय में भर जाये
तुम्हारी कल्पना के सार-तत्त्व की सरस माधुरी
मेरे प्रफुल्ल जीवन से उठनेवाला
अनिर्वचनीय सुरभित मकरन्द
फैल जाये चारों ओर
तुम्हारे अनुग्रह की उज्ज्वल किरणें
सदा ही मुझको रंगीन बनाती रहें
अगर मैं झड़ जाऊँ कभी
तो तुम्हारी पद-अर्चना का सुमन बनकर गिरूँ ।

—१९४२

कालम्

माळमेङङरिञ्ञील,
संचरिक्कुन्नू काल—
काळकुण्डलि जग—
न्मण्डलङङळेच्चुटि्ट् ।
नेरियनाना 'शुक्ळ'—
पटलङङळल्लि, ति—
न्नूरियोरुर्कळा—
णव्यक्तस्थलान्तत्तिल् ।
'विरियुम् विरियुमि'—
न्निङङने मोहिच्चुम्को—
ण्टरिकत्तिरिक्कुन्नु
पावमे वियल्प्पक्षि !
गोळमुट्टकळतिन्—
चिर्किन्कीषिल्क्काणाम्
नीळवे ; कालम् कोत्ति—
क्कुटिच्च तोण्टाणेल्लाम् ।
पकलुम् रावुम् नाविन्
रण्टुतु, म्पव नीट्टि—
प्पकयोटुग्रानन्त—
द्विजिह्वम् नक्कीटुम्पोळ्
उटलु तरियक्कुन्न
पर्वतम् स्तंभियक्कुन्नू ;
कटलुम् जाताकम्प—
संरंभम् चुळुङङुन्नू ।

ईविधमिरियक्कवे तन्कळिक्कोप्पुम् कोण्टु
जीवितम् कळियक्कयाणीयितिन् भोगत्तिन्मेल् !

—१९४०

काल

ना जाने
बाँबी कहाँ है उसकी ?
काल-नाग अखिल जग-मण्डल को
अपनी कुण्डली में घेरकर रेंग रहा है
कहाँ जा रहा है वह ? क्या खोजने ?
ये जो दीख रहे हैं महीन-महीन
नहीं हैं ये नीहारिका-पटल
हैं ये उसकी केंचुलियाँ
जो अव्यक्त अपारता की श्यामाम्बरी सीमा में छूट गयी हैं।
पास ही आकाश-खगी
अण्डे से रही है
आशा कर रही है कि
अण्डों से निकलेंगे बच्चे
उसके पंखों के नीचे
दिखायी दे रहे हैं गोलाकार अण्डे
जो काल के चूसे खोखले-पोपले हैं।
उसकी जीभ की दो नोकें हैं दिन-रैन
जिन्हें वह अनन्त द्विजिह्व,
जब अत्यन्त विद्वेष के साथ लपलपाता है
तो पर्वत स्तब्ध हो जाता है
और विशाल सागर
संकुचित हो जाता है।

किन्तु ऐसी अवस्था में भी जीवन अपना खिलौना लिये
काल-भुजंग के फन पर खेलता रहता है।

—१९४०

एवरस्ट्

निश्चलम् नीण्टु निवर्न्नु निन्नू दृढ–
निश्चलनाय कोटुमुटि पिन्नेयुम् ।
'उन्नतमामेन्, मुटियिल् चविट्टुवा–
निन्नरन्नाग्रह' मेन्न भावत्तिलो
पुंचिरि तूकियिरुन्नू निजमुख–
त्तञ्चितमायी स्फुरिय्क्कुम् हिमत्तिनाल्।

तूमञ्ञुतुळ्ळि निरयेत्तिळङ्ङुन्न
कोमळत्तामरप्पञ्चिलपोलवे
आरुटे जिज्ञासतन् कैयिल् मिन्नुन्नु
चारुताराकुलमाकुमपारत,
आरुटे सिद्धियोळिच्चुकळिय्क्कुन्नु
वारुणमन्दिरत्तिंकलशंकितम्,
आरुटेयिच्छ विळिय्क्कुम् विळिप्पुर–
त्तारालणवू जगत्तिन्टे शक्तिकळ्,
आरुटे साहसिकत्वमटक्कवे
भीरुवाय् मारिक्कोटुक्कुन्नु मृत्युवुम् ;
आरु विधितन् कटुम्केट्टरुक्कुन्नु
पौरुषत्तिन्टे निशितमाम् वाळिनाल्,
आरसाध्यत्तिन्टे साम्राज्यविस्तृति
पारम् चुरुक्कुमदान्तपराक्रमन्,
आनमिप्पिय्क्क, शिरस्साज्जगज्जयि–
मानवन्तन्मुन्पचलमे, सादरम् !

एवरेस्ट

दृढ़ संकल्प ठाने उन्नत-शिखर
वह वैसे ही तनकर निश्चल खड़ा था
मुस्कुरा भी रहा था
अपने आनन पर चमकनेवाले हिम से;
मानो सोच रहा था—
"क्या मेरे अत्युच्च शीर्ष पर
पैर रखने की अभिलाषा करता है,
यह मनुष्य ?"

हे अचल !
जिसकी जिज्ञासा के हाथ में
यह मनोहर तारक-संकुल असीमता
श्वेत तुषार कणिकाओं से भरे
कोमल कमलपत्र की भाँति चमकती है,
जिसकी सिद्धि वरुण मन्दिर में
जाकर निश्शंक आँख-मिचौनी खेलती है,
जिसकी इच्छा के आह्वान पर
जग की शक्तियाँ समीप आकर
सविनय खड़ी हो जाती हैं,
जिसकी साहसिकता के सामने मृत्यु भी
कायर बनकर रास्ता छोड़ देती है,
जो पौरुष की पैनी कटार से
विधि की विकट ग्रन्थि को काट डालता है,
और जो अदम्य पराक्रमी
असम्भव के साम्राज्य की सीमा को छोटा करता रहता है,
उस विश्वविजयी मानव के सामने सादर सिर झुका दो !

सम्पन्नकौतुकमुत्साहसूचकम्
वेण्पट्टुरुमाल् विटर्त्ति वीशि पकल् ।
नीलगगननयनम् विटरुम-
क्कालवुम् निन्नुपोय् पूरितोल्क्कण्ठमाय् ।
मन्दमोषुकिटुम् वेण्मुकिल्मालमेल्
सुन्दरस्वप्नत्तिल्मुङ्ङि नग्नांगराय्
स्वैरम् शयिय्क्कुन्न किन्नरदम्पति-
मारतिसंभ्रममुन्मुखम् नोक्कवे,
मानुषधृष्टत वय्क्कयायी पदम्
सानुविन् गौरमाम् गौरवत्तिन्टे मेल् !
'पोवुक, मेलोट्टुपोवुक, सिद्धि, वेण्-
पूवुटल् चेर्त्तञ्ञु पूल्कुन्नतुवरे
एन्नुरच्चेरित्तुटङ्ङी यशस्सिन्नु
तन्नुयिर् कोण्टु वळमिटुम् रण्टुपेर् ।

आ मलतन्मेलमर्न्नु मयङ्ङिङ्टुम्
व्योमपतंगम्, निजस्वैरजीवितम्
भञ्जनम् चेय्युन्नतारेन्नु नोक्कुवा-
नञ्जनवर्णञ्चिरकुम् विरिच्चुटन्
ओन्नुयर्न्नीटुन्नता प्रियसाहस-
रुन्नम्रकौतुकम् कण्टुकण्टङ्ङने
पिन्नेयुम् पिन्नेयुम् मेलोट्टु मेलोट्टु
तन्ने नटन्नारच्चंचलमानसर् !

आ युववीरर् निन् नित्यरहस्यमा-
रायुवान् वन्नतिन्नेन्तु चेय्तू भवान ?
चोल्लुमो मर्त्यन्टे धीरजिज्ञासये
वेल्लुविळिय्क्कुम् महोद्धतश्रृंगमे !

—१९३८

दिवस ने उत्साहित होकर अत्यन्त कुतूहल के साथ
अपना श्वेत रेशमी रूमाल बार-बार हिलाया।
काल अपने नील गगन के नयन विस्फारित कर
समुत्कण्ठित खड़ा रहा।
किन्नर-मिथुन
जो मन्दगामी श्वेत मेघ-दलों पर नग्न-देह लेटे
स्वप्नों में डूबे रहते हैं
ससंभ्रम देखने लगे कि मानवों की धृष्टता
पर्वतसानु की गौराभ गरिमा पर पैर रख रही है।
"ऊँचे चढ़ो, ऊँचे चढ़ो,
जब तक कि सिद्धि के कुसुम-कोमल गात का
आलिंगन प्राप्त न हो!"
इन शब्दों के साथ कीर्ति-वल्लरी को अपने शरीर का
खाद देनेवाले दो तरुणों ने आरोहण प्रारम्भ किया।

उस पहाड़ के ऊपर
पंख समेटकर झपकी लेनेवाला आकाश-विहग
अपने विचित्र नील-पंखों को फैलाकर उड़ा
यह देखने कि उसकी
स्वच्छन्दता को भंग करनेवाला कौन है यह!
वे अचंचल हृदय तरुण
इस दृश्य को अत्यन्त कौतुक के साथ देखते हुए
बराबर आगे ही बढ़ते रहे।

मानव की धीर जिज्ञासा को चुनौती देनेवाले,
हे परम उद्धत शृंग!
बताओ तो
वे जो युवा साहसी तुम्हारे चिरन्तन रहस्य को खोजने आये थे,
उनका तुमने क्या किया?

—१९३८

इस वर्ष दो उत्साही तरुणों ने हिमालय पर चढ़ने का प्रयत्न किया था और उनमें से एक का पता नहीं चला था।

नक्षत्रगीतम्

एरियुम् स्नेहार्द्रमा–
मेन्ट् जीवितत्तिन्ट्
तिरियिल् ज्वलियक्कट्टे
दिव्यमाम् दुःखज्वाल ;
एंकिलुम्, नेटुवीर्प्पिन्
धूमरेखयाल् नूनम्
पंकिलमाक्किल्लेन्नुम्
देवमार्ग्गमाम् वानम् ;
एंकिलुम् मदीयात्म–
व्यापियामूष्मावाक्कुम्
पंकिटिल्लाजन्मान्तम्
ञानतिलेरिञ्ञालुम् ।
एन् चितयिकल्तन्ने–
याणु ञा, नेन्नालेतो
पुंचिरित्तिळक्कत्ते–
प्पथिकन दर्शिक्कुन्नु ।

वीणु ञानाकाशत्तिन्नत्यगाधतयिकल्–
त्ताणुपोयेय्क्काम् मूर्च्छाधीनमा ; यल्लेन्नाकिल्,
भस्ममायेक्काम् ; तीरे क्षुद्रनामेन्नेप्पिन्ने
विस्मरिच्चेक्काम् कालम् एन्नालुमितु सत्यम् :
जीवितमेनिक्कोरुचूळयायिरुन्नप्पोळ्–
ञ्भूविना वेळिच्चत्ताल् वेण्म ञानुळवाक्कि ।

—१९४२

नक्षत्रगीत

स्नेहार्द्र हो कर जलने वाली
मेरे जीवन की वाती में
सदा ही दुःख की दिव्य ज्वाला
प्रोज्ज्वलित रहे ।
किन्तु नहीं करूँगा मैं पंकिल
अपने निश्वासों की धूमरेखा से
देवताओं के गगन-पथ को ।
आमरण, नहीं बाँटूँगा किसी को भी
अपनी आत्मा में व्याप्त ताप को
चाहे भस्म ही क्यों न हो जाऊँ !
मैं तो
दहकता रहता हूँ अपनी चिता के भीतर
किन्तु, पथिक को दीखती है मुझ में
मन्द हास की आभा ।

हो सकता है मैं मूर्छित हो कर
गिर जाऊँ गगन की गहन गहराइयों में,
अथवा हो जाऊँ भस्मीभूत, क्षार-क्षार-
और भूल जाएँ काल, मुझ क्षुद्र तारे को ;
तथापि यह सत्य है—
जीवन मेरे लिए रहा धधकती भट्टी,
किन्तु उसके प्रकाश से मैंने उजियारा दिया धरा को ।

—१९४२

नाळे

१

जन्मसिद्धमाम् पदम्
पुण्यलब्धमेन्नोर्त्तु
वन्मदम् भावियक्कुन्नो–
रुन्नतनक्षत्रमे !
वेम्पुक ! विळरुक !
विर्कोळ्ळुक ! नोक्कू,
निन्पुरोभागत्तता,
धीरतेजस्साम् 'नाळे' !
कूरिरुळ् परक्कुन्नु
निङ्ङळ्तन्भाग्यत्तोटे ;
परिटमुणरुन्नु
निङ्ङळ्तन् भयत्तोटे ।
रक्तमामुटुप्पिन्मेल्
रक्तपुष्पवुम् कुत्ति
व्यक्तवैभवम् वन्न–
तेन्तिनाणेन्नो 'नाळे' ?

वेलतन् जयत्तिन्टे
पविषक्कोटिक्कूर्
लीलयिल्प्पर्प्पिच्चु
पारिनेप्पुतुक्कुवान् ;
निङ्ङळ् कैयटक्किय
मोदवुम् प्रकाशवुम्
मङ्ङलिल्क्किटक्कुन्न
मन्निनु पकुक्कुवान् ;

आगामी कल

१

अपने जन्म-सिद्ध पद को
पुण्य-लब्ध मानकर
अत्यन्त अभिमान के साथ रहनेवाले ऊँचे तारो !
हो जाओ परिभ्रान्त,
पड़ जाओ पीले
काँपने लगो भय से
देख लो तुम्हारे सामने आ पहुँचा है
वह वीर-तेजोमय 'कल'।

अन्धकार विलुप्त हो रहा है
तुम्हारे भाग्य के साथ,
विश्व जाग रहा है
तुम्हारे भय के साथ,
क्या तुम जानते हो
क्यों आ गया है यह 'कल'
अपने रक्तिम कवच पर लाल पुष्प लगाये
अपने वैभव को प्रकट करता हुआ ?

तो सुनो—
वह आ रहा है
कर्म-विजय की विद्रुम पताका को
लीलापूर्वक फहराकर
जग को नया बनाने के लिए,
दुनिया को बाँट देने के लिए
वे आमोद और प्रकाश
जिन पर तुमने अधिकार कर लिया है।

नालंचु तारङ्ङ्ळ्क्कु
पुंचिरिक्कोळ्ळान् निन्न
कालमाक्करियिल–
त्तुम्पिन्मेल् विर्य्क्कुन्नू ।
पावमाम् कृषिक्कारन्–
तन्मुखमानन्दोद्यल्–
पावनश्रीयाल् वेल्लु–
विळिय्क्कुम् भवान्मारे ।
वेम्पुक ! विळरुक !
विर्कोळ्ळुक ! नोक्कू,
निन् पुरोभागत्तता
धीरकर्म्मावाम् 'नाळे'

२

नेंचिटम् तुटिञ्चिटुम्
कटलुम् रोमांचम् मेल्
तंचिटुमवनियुम्,
हर्षमूकमाम् वानुम्
काणट्टे विचित्रमाम्
लिपियिल्क्कुरिक्कुन्न
कालत्तिन् विळम्बरम्
पूर्वचक्रवाळत्तिल् ।
नीलनीरदच्छेद–
रेखकळल्ला नून–
मा लसल्प्रकाशत्तिन्––
चेम्मार्न्न पात्रत्तिन्मेल् ।
आनतु वायिय्क्कुवेन् :
"मंगलम् प्रार्थिय्क्कुन्नू,
वानत्तिन् ताषेक्काणुम्
सर्वजीवितत्तिन्नुम् ।

वह युग
जो स्वयं को दो-एक तारकों के मन्दहास के उपयुक्त
बनाये खड़ा था
आज थर-थर काँप रहा है
सूखे पत्तों की कोरों पर।
अब भोले कृषकों के मुख
प्रस्फुटित आनन्द की पावन ज्योति लेकर
तुम लोगों को ललकारेंगे,
परिभ्रान्त होओ, पीले पड़ो, काँप उठो
तुम्हारे सामने आ पहुँचा है
वह धीर-तेजोमय 'कल'।

२

देखें अब
यह समुद्र जिसका दिल धक-धक कर रहा है,
और यह वसुन्धरा जो पुलकित हो रही है
और यह आकाश जो हर्षमूक बन गया है,
काल की उस घोषणा को
जो पूर्व के क्षितिज पर
विचिर लिपियों में
अंकित्र हो रही है।
उस मनोहर प्रकाश के ताम्र-पत्र पर
ये जो दिख रही हैं
वे निश्चय ही नील-नीरद की रेखाएँ नहीं।
मैं पढ़ूँगा उस घोषणा को :
"मंगल हो
नील गगन के नीचे जीनेवाले
सारे जीवों का,

इल्लिनिद्दरिद्रत–
यिप्रभातत्तिन् पोन्निल्–
प्पुल्लिनुम् मरत्तिनुम्
तुल्यमाणवकाशम् ।
इल्लिनियसमत
तळिक्कर्म् कुरुक्कुत्ति–
मुल्लय्क्कुम् वानम् पुल्कुम्
मुकिलिन् पर्प्पिन्नुम् ।
शुद्धमाम् कुळिक्कट्टम्
स्वच्छमाम् वेळिच्चवुम्
सिद्धमिच्छपोलाक्कुं ;–
माक्कुंविनाह्लादिप्पिन् !"
अन्यर् तन्नान्ध्यत्तिक–
लुल्लासम् कोलुम् धन्यम्–
मन्यमाम् नक्षत्रमे,
निनक्किल्लितिल् स्थानम् ।
वेम्पुक ! विळरुक !
विर्कोळ्ळुक ! नोक्कू,
निन्पुरोभागत्तता
विश्वजेतावाम् 'नाळे' ।

३

नीतितन् चुट्टुकण्णीर्
तुटप्पान् वन्नू 'नाळे' ;
नी तिकच्चानन्दिच्चु–
कोण्टालुम् कृषीवल !
पारिने मरतक–
प्पच्चयालुटुप्पिच्च
पावमे, भवानर्द्ध–
नग्ननाय् कालम् पोक्की

आगे अब नहीं रहेगी दरिद्रता
इस प्रभात के स्वर्ण पर
तरु और तृण दोनों का
समान अधिकार है।
आगे अब नहीं रहेगी असमता
यहाँ कुन्दलता और
गगनाश्लिष्ठ मेघों के दल
दोनों पल्लवित हो सकते हैं।
होवें आनन्दित सभी
सब को यथेष्ट मिल जायेगी
स्वच्छ हवा और विमल प्रकाश।
औरों की अन्धता में
आनन्दित रहनेवाले
रे धन्यमानी नक्षत्र
केवल तुझे ही इसमें स्थान नहीं मिलेगा।"
घबड़ा उठो, हो जाओ परिभ्रान्त,
पड़ जाओ पीले
काँपने लगो भय से
देख लो तुम्हारे सामने आ पहुँचा है
वह धीर-तेजोमय 'कल'।

३

हे कृषक
तुम आनन्दित हो जाओ
आ पहुँचा है 'कल'
नीति के वेदनाश्रुओं को पोंछने के लिए
तुमने वसुन्धरा को
मरकत हरीतिमा पहनायी
किन्तु स्वयं अर्द्धनग्न रहकर
अपना दिन विताया।

नाटिनु कतिरिट्टुम्

कनकम् नल्की ; नाटो,

कूटिय कटत्तिन्नु

कुटि विट्टिरङ्ङिञ्ञ्चु ।

पुंचिरि विर्टात्ति नी

पुल्पोटिप्पिलुम् ; भाग्य–

वंचितमपहृत–

मन्दहासम् निन्वक्त्रम् ।

निन् निणच्चूटिल्लेंकिल्

मरविच्चेने राज्यम् ;

निन् नेट्ट्ट वेर्त्तिल्लेंकिल्

मरुवायेने लोकम् ।

निन् नट्टुवळञ्ञतु

नाटिन्टे भारम्मूलम् ;

इन्नतु कुषङ्ङुन्नु

निन्टे भारत्तालत्रे !

कालितन् नखक्षतम्,

कोषुविन् दन्तक्षतम्

मेलिव पतियुक्कुन्न

धन्यमेदिनियुक्केन्ये

कुळिरुण्टाकुन्नील,

कोळ्मयिर् कुरुप्पील,

तळिरुम् तारुम् चूटान्

कालवुम् लभिप्पील

नीतितन् चुट्टुकण्णीर्

तुटप्पान् वन्नू 'नाळे' ;

नी तिकच्चानन्दिच्चु–

कोण्टालुम् कृषीवल !

—१९४०

तुमने देश को कनक-बालियाँ दीं
किन्तु देश ने तुम्हारी बेदखली कर दी
क्योंकि बढ़ गया था कर्ज़ का भार तुम्हारे ऊपर।
तुमने तृण-दलों के अधरों पर भी
मन्दहास खिलाया
किन्तु तुम्हारा मुख
सदा ही मुस्कान से वंचित रहा।
यदि न होती तुम्हारे रक्त में गर्मी।
तो यह देश ठिठुरकर सुन्न हो जाता,
यदि तुम्हारे ललाट पर
नहीं चमकते स्वेदकण
तो यहाँ सब बन जाता बयाबान,
तुम्हारी कमर देश के बोझ से झुकी
किन्तु आज देश तुम्हें बोझ मान
झुकता जा रहा है।
जो सहती बैलों का नखक्षत
और हल का दन्तक्षत
उस परम धन्य वसुन्धरा को छोड़कर
और कहीं भी नहीं उगता पुलक
न होता भाग्य पल्लव-पुष्प धारण करने का।
आ पहुँचा है 'कल'
न्याय के तप्त आँसू पोंछने के लिए
हे कृषक,
अब तुम पूर्णतया आनन्दित हो जाओ!

—१९४०

विश्वहृदयम्

वन्दनम् शाश्वतविश्वहृदयमे !
सुन्दर भीकरमौलिकतत्वमे !

कालम् पिऱन्नतु तावकस्पन्दनम्–
मूलम् नवनवोन्मेषस्वभावमे !
निर्भरानन्द विजृंभितमाकिय
निन्ऱ्ॆयपारतयिकलनन्तरम्
लोलम् स्फुरिच्चुपोलव्यक्तसंकल्प–
जालमामुज्वल 'शुक्ळपटलि'कळ्
दिव्यमवतान् विभक्तमाय् व्यक्तमाय्
नव्यप्रपंचङ्ङळायि वळर्न्नुपोल् ।

लोकगोळङ्ङळ् महासत्वमे, भव–
देकविचारघटकङ्ङळल्लयो !
आकर्षणमेन्नु चोल्वतीयाशय–
भागङ्ङळ्तन् नित्यसम्बन्धमाय्वराम् !

निंकलुदिक्कुन्नु, निल्क्कुन्नु मायुन्नु
संकल्पमोरो, न्नवयिलोन्नाय ञान्
सन्ततम् कोळ्मयिक्कोंण्टुपोकुन्नु निन्
चिन्तकळ् कण्टुकण्टार्द्रनयननाय् ।

विश्व-हृदय

हे शाश्वत विश्व-हृदय,
हे सुन्दर किन्तु भयकारी मौलिक तत्त्व
प्रणाम् है तुझे !

हे नवनवोन्मेषशील,
काल उत्पन्न हुआ है तुम्हारे स्पन्दन से
तदनन्तर स्फुटित हुई ये नीहारिकाएँ
अव्यक्त कल्पनाओं की भाँति
आनन्द-निर्भर होकर फैलनेवाली
तेरी अपारता के भीतर !
व्यक्त और विभक्त बन गयीं
ये ही दिव्य निहारिकाएँ
परिणत हो गयीं जगत के नाना रूपों में।

हे महासत्त्व !
ये सारे गोलात्मक विश्व
तेरे एक ही विचार के अंश हैं,
कदाचित् इन अंशों के नित्य सम्बन्ध का नाम ही है आकर्षण।

तुझमें से पैदा होते हैं विविध संकल्प
तुझी में समा जाते हैं वे सब,
मैं जो उनमें से एक हूँ
तेरी चिन्तन-धारा को देख-देखकर
पुलकित हो जाता हूँ
आँखें भर आती हैं मेरी।

निन्टे रक्तोष्मावुयरुन्न सूर्यनुम्,
निन्टे सन्तोषम् तिळङ्ङुन्न तिंकळुम्,
निन्टे विकाससंकोचङ्ङळोटोत्तु
नित्यम् विटर्न्नु चुरुङ्ङुम् समुद्रवुम्
तावक संकल्पभेदङ्ङळ्—भावल्क—
पावनसौन्दर्यनिर्व्याजरेखकळ् ।

घोरदारिद्र्यवुम् घोररोगङ्ङळुम्
घोरयुद्धङ्ङळुम् निन्टे किनावुकळ् ।
निन्मनोराज्यसौभाग्यमरियुन्न
जन्ममे जन्मम् ; नमस्करिक्कुन्नु ञान् !

वन्दनम् शाश्वतविश्वहृदयमे !
वन्दनम् सर्गस्थितिलयलीलमे !

—१९३८

तुम्हारे रक्त की ऊष्मलता से भरा सूर्य
और तुम्हारे आनन्द की चमक से भरा चन्द्रमा
तुम्हारे संकोच-विकास के साथ
संकुचित और विकसित होनेवाला यह समुद्र
ये सभी हैं तुम्हारी विभिन्न कल्पनाएँ
सभी हैं तुम्हारे पावन सौन्दर्य की अकलंक रेखाएँ।

घोर दरिद्रता,
दारुण व्याधियाँ,
भयानक संग्राम,
सभी तेरे ही तो स्वप्न हैं।
जो तेरी कल्पना का सौन्दर्य जानता है
केवल उसीका जन्म ही जन्म है।
मैं प्रणाम करता हूँ तुझे !

हे शाश्वत विश्व-हृदय,
प्रणाम है तुझको !
हे सर्ग-स्थिति-लयशील,
वन्दना है तेरी !

—१९३८

सागरगीतम्

श्रान्तमम्बरम् निदाघोष्मळस्वप्नाक्रान्तम् :
तान्तमारब्धक्लेशरोमन्थम् मम स्वान्तम् ।

दृप्तसागर ! भवद्रूपदर्शनालर्द्ध–
सुप्तमेन्नात्मावन्तल्लोचनम् तुरक्कुन्नू ।

नीयपारतयुटे नीलगंभीरोदार–
च्छाय ; निन्नाश्लेषत्तालेन्मनम् जृंभिक्कुन्नू ।

क्षुद्रमामेन् कर्णत्तालक्केळक्कुवानाकात्तोरु
भद्रनित्यतटयुटे मोहनगानालापाल्,
उद्रसम् फणोल्लोलकल्लोलजालम् पोक्कि
रौद्रभंगियिलाटिनिन्निटुम् भुजंगमे !

वानम्, तन्विशालमाम् श्यामवक्षसिल्क्कोत्ते–
ट्टानन्दमूर्च्छाधीनमङ्ङने निलकोळ्वु !

तत्तुकेन्नात्माविंकल् !–
क्कोत्तुकेन हृदन्तत्तिल् !
उत्तुंगफणाग्रत्ति–
लेन्नेयुम् वहिच्चालुम् !

सागर गीत

यह श्रान्त गगन
निदाघ के उज्ज्वल स्वप्नों से आक्रान्त है
मेरा अवसन्न हृदय
अपने बीते हुए अवसाद-विषादों की
जुगाली कर रहा है।
हे दर्प-पूर्ण सागर,
तुम्हारे इस रूप को देखकर
मेरी अर्द्धसुप्त आत्मा अपने आन्तरिक नयन खोल रही है।
तुम असीमता की
नीलिमापूर्ण उदार गम्भीर छाया हो,
तुम्हारा आलिंगन पाकर
मेरा मन पुलकित हो रहा है।
जिसे मैं अपने क्षुद्र कानों से सुन नहीं पाता
उस मंगलमय चिरन्तन के
मोहन गानालाप की बीन सुनकर
हे भुजंग,
तुम अपने कल्लोलित उत्तुंग तरंग रूपी फनों को फैलाकर
अत्यन्त आनन्द के साथ
रौद्र सुन्दर नर्तन करते हो।
यह गगन अपनी छाती में तुम्हारा दंशन पाकर
आनन्द-मूर्छना में लीन होकर खड़ा है।

तुम मेरी आत्मा में नर्तन करो
मेरे अन्तरंग में दंशन करो
उत्तुंग फनों के ऊपर
मुझको भी वहन करो!

नीरदलतागृहम् पूकयिप्पोषुतन्ति
नीरवमिरियक्कुन्नू रागविभ्रममेन्ति ।
हृदयम् द्रविप्पियक्कुमेतोरुज्ज्वलगान-
मुदयल्लयम् भवानालपियक्कुन्नू स्वैरम् ?
कनकनिचोळमूर्न्नानग्नोरस्साय् मेवु-
मनवद्ययाम् सन्ध्यादेवितन् कपोलत्तिल्,
क्षणमुण्टोलिक्काराय् मिन्नुन्न तारावाष्प-
कणमोन्ननिर्वाच्यिनव्यनिर्वृतिविन्दु !
अङिङल्निन्नरिञ्ञ् आन् पूर्ण्णमामात्माविंकल्
तिङिङ्टुमनुभवम् पकरुम् कलाशैली ।
नित्यगायक ! पठिप्पियक्कुकेन् हृल्स्पन्दत्ते-
स्सत्यजीविताखण्डगीतत्तिन् ताळक्रमम् !

जीवितम् गानम्, कालम्
ताळ, मात्माविन् नाना-
भावमोरोरो रागम् ;
विश्वमण्डलम् लयम् !

अम्पिळिच्चषकत्तिल् नुरयुम् दिव्यानन्दम्
अम्पिलेन्तिवक्कोण्टेत्ती शुक्ळपंचमि मन्दम् ।
आनतमुखियुटे नीलभ्रू निषलिच्च
पानभाजनम्, वेम्पुम् करत्ताल्स्वयम् वाङिङ,
फेनमञ्जुळस्मितम् कलर्न्नु नकन्नुन्य-
ज्ञानमेन्निये पाटुम् हर्षजृंभितसत्व,
भावत्ताल् तरंगायमाणमाम् विरिमार्-
त्ता वधु तल चाच्चु निल्क्कुन्नु लज्जामूकम् ।

अनुराग-विह्वला सन्ध्या
नीरद लता-कुंज में प्रवेश कर नीरव बैठी हुई है।
हृदय को द्रवित करनेवाले किस गीत का आलाप
तुम तन्मय होकर कर रहे हो ?
सुन्दरी सन्ध्या देवी का स्वर्णांचल खिसक गया है
किंचित् अनावृत हो गया है वक्षस्थल
कपोल पर चमक उठी है आँसू की तारक -बूँद
मानो अनिर्वचनीय नवल निर्वृत्ति की कणिका है यह
जो ढुलकने ही वाली है !
अपनी परिपूर्ण आत्मा के भीतर एकत्र अनुभूतियों को
अभिव्यंजित करने की शिल्प-चातुरी
तुम्हीं से मैंने सीखी है।
हे चिरन्तन गायक !
हृदय के स्पन्दनों को सिखा दो
शुद्ध-सत्य जीवन के अखण्ड गीतों की ताल-थाप।

जीवन ही गान है,
काल ही ताल है,
मन के विविध भाव ही विभिन्न राग हैं
समूचा विश्व-मण्डल ही लय है।

मृगांक चषक में फेनिल आनन्द की मदिरा भर,
मन्द चरण धरती हुई शुक्ल पंचमी आ गयी
तुमने अपने आतुर तरंग-करों से ले लिया वह चषक
जिस पर विनम्रवदना सुन्दरी की नीली भौंओं की छाया अंकित है,
तुम पीते हो उसे फेनों के मन्द-स्मित के साथ
अन्य सारी चिन्ताएँ भूलकर गान करनेवाले
हे हर्ष-जृम्भित महासत्त्व !
तुम्हारे भाव-तरंगित विशाल वक्षस्थल पर
वह मुग्धा लज्जामूक होकर सिर टिकाये खड़ी है।

अल्लणिक्कुष़लितन् श्लथवेणियिल्निन्नुत्—
फुल्लमामोरायिरम् मुल्लमोट्टुकळिता,—
बिम्बितम् ताराजालमाविल्ल नूनम्—निन्टे
कम्पितस्निग्धोरस्सिल्क्कोष़िञ्ञुल्लसिक्कुन्नू ।

कामुक ! मुकरुक,
निन्ने मूटुक, आना—
प्पूमुटिच्चुरुळिन्नु
सौभाग्यमाशंसिप्पू

निद्रयिल् निलीनमाय्क्कष़िञ्ञू पारुम् वानुम् ;
हृद्रम ! तनिच्चायिच्चमञ्ञू नीयुम् ञानुम्,
निन्नुटेयगाधमामाशयरहस्यत्ते—
योन्नु नीममात्माविन् कर्ण्णत्तिल् मन्त्रिच्चालुम् !
धीरमामोरु परिवर्त्तनोत्साहत्तिन्टे
गौरवम् विङङ्ुम् गानवीचिकळुच्चण्डात्मन्,
जीवितपरिमितियेतुमे सहिय्क्कात्त
दैविकास्वास्थ्यम् पूण्ट निन्निल्निन्ननुवेलम्
स्थितिपालनम् नित्यधर्म्ममाय् व्याख्यानिय्क्कुम्
क्षितियेस्समुल्क्कम्पयाक्कुमारुयरुन्नू
निश्चयम्, त्वल्सन्देशम् वेपमुण्टाक्कुन्नुण्टु
निश्चलनभश्चरनक्षत्रसाम्राज्यत्तिल् ।

क्षीणमामेन्नात्मावु
तकर्न्नाल् तकर्न्नोट्टे,
वीणयाक्कुक भव—
दाशयम् गानम् चेय्वान् !

—१९४२

अस्त-व्यस्त-सी उसके ढीले जूड़े से खिसककर
सौ-सौ प्रस्फुटित कुन्द कलिकाएँ
तुम्हारे कम्पित स्निग्ध वक्षस्थल पर झर रही हैं
निश्चय ही वे नहीं हैं प्रतिबिम्बित तारिकाएँ !

हे कामुक चूम लो उस वेणी को,
आच्छादित कर लो उससे अपने को।
मैं उस मनोहर कबरी भार को
सौभाग्य की शुभ कामनाएँ देता हूँ !

निद्रा में विलीन हो गये हैं अवनी और आकाश !
हे हृद्रम, अब जागे हुए हैं केवल हम और तुम।
तुम अपनी आत्मा के अगाध भावों का रहस्य
मेरी आत्मा के कानों में फुसफुसा तो दो
जीवन की परिमिति को किंचित् भी सहन न करनेवाले
हे समुन्नत चण्ड-हृदय !
स्वर्गिक अतृप्ति से भरे हुए तुम्हारे मन से
धीर क्रान्ति की उत्साह-भरी नयी-नयी
गौरवमय गान-वीचियाँ उत्पन्न हो रही हैं
जो प्रकम्पित कर देती हैं वसुधा के उस मन को
जो रूढ़ि संरक्षण को ही सनातन धर्म समझता है।
निस्सन्देह तुम्हारे ये सन्देश अकर्मण्य नभचरों से भरे
नक्षत्र-साम्राज्य में कम्पन पैदा कर रहे हैं।

अगर मेरी प्रक्षीण आत्मा
खण्ड-खण्ड हो जाये तो हो जाये
तुम बना लो उसे वीणा
झंकृत हों जिसमें तुम्हारे अन्तर्भावों के गीत !

—१९४२

प्रतिकारम्

पोन्नुचिङ्ङत्तिल्त्तिरु–
वोणमाणिन्ने ; न् नाट्टिल्–
निन्नुमेत्रयो कातम्
दूरेयाम् ञानेन्नालुम्,
मामकहृदन्तरम्
चिरकिट्टटिक्कुन्नि–
ता मनोहरमाय
मलनाट्टिलेय्क्केत्तान् ।
शान्तिये विळम्बरम्
चेय्युमारुषञ्ञ ञा–
णेन्तिटुम् चेरन्मार् तन्
केतुचिह्नमाम् चापम्
इन्नुमा श्लथायत–
मलयाचलपंक्ति
मिन्नुमेन् नाटिन्रूप–
मोर्म्मयिल् वरय्क्कुन्नू ।

अङ्ङेरु मरकत––
क्कुन्निन्टे ताषत्ताण–
त्तेङ्ङुकळ् कुट पिटि–
च्चीटुमेन् चेरुकुटिल् ;
लीलयिल् ग्रामत्तिन्टे
पच्चप्पट्टिन्मेल् मुत्तु–
मालयोन्नणियिच्चु
मूळिप्पाट्टुकळोटे,

प्रतिकार

आज
स्वर्णिम 'सिंह' मास का 'तिरुवोणम्'[1] है
मैं
अपने गाँव से कितनी दूर हूँ।
मेरा मन,
पर्वतमालाओं से घिरे
अपने उस मनोहर प्रदेश पर पहुँचने के लिए
पंख फड़फड़ा रहा है।
शिथिल आयत मलयाचल पंक्तियों में
और बंकिम सागरतीरों से सुशोभित
वह मेरा देश!
आज भी
मेरी स्मृतियाँ
चेर सम्राटों के ध्वजचिह्न धनुष का चित्र खींचती हैं
जिसकी ढीली प्रत्यंचा
मानो शान्ति की घोषणा कर रही है!

दूर मरकत पर्वत की तलहटी में
मेरी कुटिया है
जिस पर छत्र तान रहे हैं
नारियल के पेड़,
ग्राम के हरित कौशेय को
लीलाभाव से मुक्ताहार पहनाती, गुनगुनाती,

१—तिरुवोणम्—'ओणम' केरल का प्रसिद्ध त्योहार। 'तिरुवोणम्' वास्तव में 'श्रावण' का ही तद्भव रूप है। यह पर्व 'सिंह' मास में, अगस्त-सितम्बर के बीच, पड़ता है।

चिरिच्चु पुळच्चुको-
ण्टावर्षिक्केत्तिच्चुटि्ट्-
त्तिरिञ्ञु पटिञ्ञाट्टु
पोकुन्नुण्टोरु चोल ।

कोच्चुतोट्टियिल्प्पूवुम्,
चेंचुण्टिल्प्पाट्टुम्, नेञ्चिल्
वाञ्चिटुमाह्लादवुम्
निर्ञ्ञ पोन्कुञ्ञुङङळ्
पूक्कळत्तिनुचुट्ट्टु-
मोणमल्लयो—कूटि-
निल्क्कवे, मतिमर्-
न्नच्छनम्ममार् नोक्कुम् ।
अंचु चिङङमायिप्पोळ्—
कण्टिट्टु ञानेन कोंचुम्
पिंचुपैतलिन् मुखम् ;
नयनम् ननयुन्नू ।
मारुविन् मलकळे !
मायुविन् कटल्कळे !
नीरुमेन्मनम् चेन्ना
वदनम् मुकरट्टे ।

अंचु पोन्नोणम् पोयी,
विळक्कुम्, स्मितत्तिनाल्-
च्चेंचोटित्तळिर् वक्कुम्,
तेळियिच्चुकोण्टोराळ्
लोलमामोरु वळ
मिन्नल्पोलि्त्तळङङुन्न
पेलवकरम्कोण्टु
विळम्पुम् चोरुण्णाते !

किलकारती, बल खाती हुई
बह रही है छोटी सरिता
जो उस प्रदेश में पहुँचकर
पश्चिम की ओर लौट पड़ती है।

छोटी-छोटी टोकरियों में फूल लिये।
मृदुल अरुण अधरों में गीत लिये
और मन में अमित उमंग लिये
जब छोटे-छोटे प्यारे-प्यारे बच्चे
फूलों की रंगवल्ली के चारों ओर
इकट्ठे होते हैं—
क्योंकि आज 'ओणम्' है न?—
तो माता-पिता सुध-बुध भूलकर
मुग्ध खड़े देखते हैं।
अपने तुतलाते बच्चे का मुख देखे
आज पाँच सुनहले 'ओणम्' बीत गये!
हाय मेरी आँखें गीली हो जाती हैं!
हट जा पहाड़,
पट जा सागर
मेरे कसकते हुए मन को
वहाँ पहुँचकर वह नन्हा-सा मुँह चूमने दे।

अपने कोमल हाथ से दीप को
और मन्दहास की दीप्ति-से मनोहर अधर को
प्रकाशित करती हुई
बिजली-से कौंधनेवाले कंकण से सुशोभित
मृदुल कर से
वह जो खाना परोसती थी
उसे खाये
आज पाँच सुनहले 'ओणम्' बीत गये।

कुम्पिट्टुमाफ्रिक्कतन्
मुटियिल्च्चविट्टुवान्
वेम्पुन्नयूरोप्पिन्टे–
युद्धतपादम् पोले,
भूपटत्तिलेय्क्कोन्नु
नोक्कियाल्क्काणा 'मर्द्ध–
द्वीप' मोन्नतिलोरु
कुन्निलाणिवनिप्पोळ् ।

मुग्धवेण्परवक–
ळिटयिल्प्पारुम् नील—
स्निग्ध नीरदमाल–
यल्लेन्टे मेल्भागत्तिल् ;
तीमष् पोषिञ्चुग्र—
दर्शनम् विहरिक्कुम्
व्योमयानौघम् चूषुम्
पीरंकिप्पुकयत्रे ।
पुत्तनामोराशयाल्–
प्पुळकम् कलर्न्नीष–
द्रक्तमाय्त्तीरुम् नाटिन्
निर्म्मलकपोलम्पोल्,
चेन्नेल्लाल् चेम्मेरुन्न
पाटङ्ङळल्लेन् चुट्टुम् ;
चेन्निणम् नुरकुत्तुम्
युद्धभूमिकळत्रे ।

वीरकीर्त्तियाम् मूटल्–
मञ्ञुपोङ्ङुवानल्ल,
चोरयाल् साम्राज्य श्री—
तन् कषल् पूशानल्ल,

मैं इस अर्द्ध-द्वीप के एक टीले पर
पड़ा हुआ हूँ
जो नक्शे में दिखाई देता है
योरोप के उद्धत चरण-सा
अफ्रीका के सिर पर
पाँव रखने के लिए आतुर झुका हुआ-सा।

मुग्ध सारस पंक्तियों से अलंकृत
स्निग्ध नीरदमाला अब मेरे ऊपर नहीं चलती
अग्नि-वर्षा करते हुए विहार करनेवाले
उग्रदर्शन व्योमयानों से घिरी धरा पर
तोपों की गरज ही चारों ओर सुनाई पड़ रही है।
नवीन आशा के जागरण से पुलकित होकर
कपोलों पर हल्की-हल्की लालिमा धारण करनेवाले
जन्मभूमि के निर्मल आनन-से न दिखाई देनेवाले
पके धान की अरुणिमा-से शोभित केदार यहाँ नहीं है
किन्तु फेनिल रक्त से भरी
युद्धभूमियाँ चारों ओर फैली हैं।

मुझे लालसा नहीं कि
वीरकीर्ति की नीहारिका मेरे चारों ओर फैले,
मैं नहीं चाहता कि
रक्त से साम्राज्य-लक्ष्मी के पैरों का तर्पण करूँ,

तल कोय्वतिन् कूलि
वाङ्ङिच्चेन् कुटुम्वत्तिन्
निलयोन्नुयर्त्तुवा—
नल्ल मामकमोहम्—
मामकमोहम्, मट्टु
खण्डङ्ङळ्क्केल्लाम् कैकळ्—
क्काममेकिय महा—
सत्त्वयाम् यूरोप्पिने,
निजकर्म्मत्तिन् केट्टिल्—
निन्नु, चङ्ङल वच्च
भुजत्तालषिक्कुवान्—
इन्त्यतन् प्रतिकारम् !
एंकिलुम् विळरिय
कविळिल्क्कोलुम् कण्णीर्
चेंकतिर् विळक्किले
प्रभयाल् प्रकाशिक्के,
मंगळाचारत्तिन्नु
'पत्तुपू' पोलुम् चूटा—
तंगलावण्यम् मात्रम्
मेलिञ्ञ मेय्यिल्च्चार्त्ति
उरुळयुरुट्टिय—
तुण्णानुम् मरन्निल—
य्क्करिकत्तिरिय्क्कुमा—
ह्रीनदर्शनरूपम्
मामकहृदन्तत्ते—
यङ्ङोट्टु वलिक्कुन्नू,
मारुविन् मलकळे !
मायुविन् कटल्कळे !

—१९४४

मुझे मोह नहीं कि
गला काटने की मजूरी लेकर
अपने परिवार की दशा सुधारूँ ;
मेरी लालसा तो बस यही है कि
मुक्त कर दूँ पाप-कर्म के बन्धन से
इस महासत्त्व यूरोप को
जिसने अन्य भू-भागों को बेड़ी पहनायी है,
अपने श्रृंखलाबद्ध हाथों से ही।
किन्तु
अपने पाण्डुर कपोलों पर अश्रुकण ढुलकाती
जो दीपक की अरुण रश्मि में और भी चमक उठे हैं,
जिसने मंगलाचरण के लिए अपनी वेणी में
'दशपुष्प'[१] तक नहीं लगाये
जिसने अपने कृश शरीर पर
केवल अंग-लावण्य की भूषा ही पहनी है,
जो केले की पत्तल के सामने
हाथ का कौर हाथ ही में धरे
दीन-मूर्ति बनी बैठी है—
वह मुझे खींचे ले जा रही है अपनी ओर—
हट जा पहाड़,
पट जा सागर!

—१९४४

१—मंगलाचरण के लिए स्त्रियाँ दशपुष्प वेणी में लगाती हैं।

रक्तबिन्दु

ई निणकणम् नोक्कु,
गौरवर्णत्ताल्द्धन्य-
मानियाय् मुखम् कन-
प्पिच्चेपुम् मुग्धात्मावे !

संगरम् मोहिक्कुन्नी-
लेंकिलुम् लोकत्तिन्टे
मंगळम् वळर्त्तुवान्
धर्म्मत्तिन् विळि केळ्क्के,
गीततन् राज्यत्तिकल्-
निन्नुमी विदूरत्ते-
ब्भूतल नटुक्कटल्-
क्करयिल् स्वयमेत्ति,
जीवितयज्ञम् चेय्युम्
योद्धाविन् हृदन्तमा-
णी विशिष्टमाणिक्यम्
विळयुम् दिव्याकरम् ।

ईयकृत्रिममाय
चुवप्पिल्भीरुत्वत्तिन्
छाययो नैराश्यत्तिन्
रेखयो काण्मीलेंकिल,
इनियुमितिन्नोप्पम्
लोकपौरुषत्तिन्टे
खनियिलित्तरञ्ञिट्टु
मट्टोन्नु नेटीलेंकिल,

रक्त-बिन्दु

अपने गौर-वर्ण पर
अपने को धन्य माननेवाले
सदा मुँह चढ़ाये फिरनेवाले
रे मूढ़ हृदय,
देख तो इस रक्त-कण को !

जो चाहता नहीं था युद्ध
किन्तु सुनकर धर्म की पुकार
जा पहुँचा
गीता की इस पुण्यभूमि से दूर
भू-मध्य सागर के तट पर,
जग के मंगल की अभिवृद्धि के लिए ;
जीवन का यज्ञ करनेवाले
उसी वीर योद्धा का हृदय है
वह दिव्य सागर
जहाँ से उपजा है यह विशिष्ट माणिक्य।

यदि नहीं दिखायी देती है
इसकी अकृत्रिम अरुणिमा में
भीरुता की छाया, या
नैराश्य की रेखा ;
यदि नहीं मिलती है खोजने पर भी
विश्व-पौरुष की खानों में
इसकी दूसरी जोड़ी
तो—

कान्तिमल्क्कोटीरत्तिल्-
ञ्चार्त्तट्टे जयलक्ष्मि ;
शान्ति-लोकत्तिन् शान्ति—
याणितिन् विल पक्षे ।

—१९४३

धारण कर लो विजय-लक्ष्मी
इसे अपने कान्तिमय किरीट में
किन्तु इसका मूल्य है—
शान्ति, विश्वशान्ति !

—१९४३

आरामत्तिल्

चेन्नु आनारामत्तिल्
नव्यमाम् प्रभातत्तिन्
पोन्नुवाग्दानम् कोण्टु
दिङ्मुखम् तुटुत्तप्पोळ् ।
चित्रमाम् चिलतितन्
वलयोन्नाकाशत्ति–
लेत्रयुम् विशालमा–
युल्लसिय्क्कुन्नू तोप्पिल् ।
स्वीयमाम् साम्राज्यत्तिन्
वलवुम् वैपुल्यवु–
मायतगर्वम् नोक्कि–
क्केटुपाटेल्लाम् नीक्कि,
वलयिल्क्कुटुङ्ङित्तन्–
चिर्कोन्ननक्कुवान्
वलयुम् पूम्पाट्ट्तन्
धिक्कारम् सहिय्क्काते,
'कालुकळिक्कटयिला–
णेट्टु दिक्कुकळ् ; नाश–
मेलुकिल्लोरु नाळु'–
मेन्नभावनयोटे,
अन्तरीक्षत्तिन् कण्णीर्—
कोण्टु मुत्तुकळ् चार्त्तुम्
तन्तलस्थानत्तिंक—
लेकशासनमायि,
वानिने मर्च्चुकोण्टङ्ङने वाणू वीर–
मानियाम् तन्निर्म्मातावुग्ररूपमाम् कीटम् ।

उद्यान में

नव्य प्रभात के स्वर्णिम वाग्दान से
दिशाओं के कपोलों पर अरुणिमा छा गयी ;
तभी मैं जा पहुँचा उद्यान में
जहाँ फूलों की क्यारी में
एक विचित्र-सा मकड़ी का जाला
फैला हुआ था अन्तरिक्ष में
खूब चौड़ा।
वहीं बैठा था मकड़ा
करता था अपने इस साम्राज्य के
बल और वैपुल्य का निरीक्षण
अत्यन्त गर्व के साथ—
कहीं भी नहीं थी कमी
उसकी सुरक्षा और दृढ़ता में।
जाले में फँसी तितली
आतुर थी अपने पंख फड़फड़ाने के लिए—
उसकी यह धृष्टता ? कैसी असह्य !
मेरे पाँवों के नीचे हैं आठों दिशाएँ
मेरा साम्राज्य है सतत और अक्षय
इस अहम्मन्य भाव को मन में लिये
बैठा था आकाश को आवृत किये
जाले का साम्राज्य-निर्माता
एकाधिपति, दर्पी, उग्र कीड़ा
अपनी उस राजधानी में
जिसे सजाया था उसने अन्तरिक्ष की अश्रु-कणिकाओं से
मोतियों की पच्चीकारी की तरह।

ओन्ननङिङ्यालप्पो—
ळरि्याम् ; वंचिच्चीटा–
वुन्नतो निरालस्य–
क्रूरमाम् कण्णाक्कानुम् !
निद्रये त्यजिच्चीट्टु–
मन्तरीक्षत्तिन्नन्ना
क्षुद्रजीवितन् दर्प्पम्
सहिप्पान् साधियक्काताय् ।
केवलमतिन् नेट्टु–
वीर्प्पिनाल् नूराय् चीन्ती
पाष्‌वल, चिलन्तित–
न्नभिमानत्तोटोप्पम् ।
ञाननुस्मरिच्चुपोय्
कालत्तिन्परप्पिकल्
मानवन् विरचिच्च
साम्राज्यमोरोन्नप्पोळ् ।

—१९४३

कहीं हुई यदि थोड़ी-सी भी आहट
तो जान लेता था वह
कौन कर सकता था छल
उसकी निरलस क्रूर दृष्टि से ?
त्याग कर निद्रा जब उठा अन्तरिक्ष
तो सह न सका उस क्षुद्र प्राणी के दर्प को—
उसके एक निश्वास मात्र से
छिन्न-भिन्न हो गया वह अनमोल जाला
और उस मकड़े का दर्प !
उभर आयी मेरी स्मृतियों में
उस प्रत्येक साम्राज्य की कथा
जिसे मानव ने रचा
काल के वितान में।

—१९४३

कोच्चम्म

उम्मर्त्तिळम्मणि–
त्तिण्णमेल् मेल्लेक्कोंचि–
च्चुम्मवेच्चोरु चेरु–
पूच्चयेक्कळिप्पिच्चुम्,
मिन्निटुम् वेळ्ळिक्किण्ण–
त्तिकलेप्पालेतानुम्
तन्निटम् करम्कोण्टु
तटविक्कुटिप्पिच्चुम्,
मेविनाळोरु मंक,
पिन्निलेज्जनालच्चि–
ल्ला विलासिनी रूपम्
भंगियिलेष्तवे ।

उच्चयाम्वरेत्तुळ्ळि–
क्कञ्जिवेळ्ळवुम्कूटि–
प्पिच्चकिट्टाते, वाटि–
प्पोयकुम्पिळुमायि,
तेल्लु दूरत्ताय् निल्पू
दुर्भिक्षम् मांसम् कान्नि–
ट्टेल्लुमात्रमाय्त्तीर्न्न
याचककुमारकन् !

नाविनाल् नुष्युन्नू,
पाल् नुकर्न्निटुम् धन्य–
जीवियें क्षुधाजड–
दृष्टियाल् वीक्षिक्कुन्नु,

कोच्चम्मा[1]

वह बैठी थी विलासिनी वनिता,
बरामदे के चमचमाते फर्श पर
अपनी छोटी-सी बिल्ली को
पुचकारती, चूमती,
चाँदी की चमकीली कटोरी में
दूध पिलाती
बाँये हाथ से उसकी पीठ सहलाती।
पीछे की खिड़की का वह शीशा
उस विलासिनी के रूप का
और भी सुन्दर आलेखन कर रहा था।

थोड़ी दूर पर आँगन में
खड़ा था एक याचक बालक,
दुर्भिक्ष ने उसके माँस को कुतर-कुतरकर
हड्डियाँ शेष छोड़ दी थीं
दोपहर तक घूमा था बेचारा
किन्तु नहीं हुई थी नसीब
माँड़ी की बूँद तक उसे
मुरझा गया था उसके हाथ का दोना भी।

दूध पीनेवाले सौभाग्यवान जीव पर
वह क्षुधा से जड़ बनी अपनी दृष्टि दौड़ाता
और अपने मुँह में
खाली जीभ को घुमाता—

---

१. रईस घराने की विलासिनी नारी।

मानवकुलत्तिल् व–
 न्नेन्तिनु पिऱन्नेन्नु–
तानवन् विचारिय्क्के–
 क्कण्णुकळ् कलङ्ङुन्नु,
कर्म्मसाक्षियाम् कालम्
 तच्चित्रम् वेळिच्चत्तिन्–
नेर्म्मयेऱ्ऱिट्टुम् तूवेण्–
 पटत्तिलप्पकर्त्तवे,
ओच्च केळ्क्कयालेन्तो
 तन्मुखम् तिरिच्चाळा–
क्कोच्चम्म काट्टिट्टल्त्तण्टो–
 न्नुलयुम् तण्टार्, पोले।

पुरिकम् चुळिच्चुग्रम्
 गर्ज्जिच्चाळ् : "कटन्नुपो
करिमोन्तयुम्कोण्टे, न्—
 'मल्लियक्कु' कोति पट्टट्टुम् !
मोळिलेय्क्कवनोन्नु
 नोक्किना, ना नोट्टत्तिन्
काळिट्टुम् चूटिल्दैवम्
 पोरिञ्ञुपोयीलल्ली ?
ओन्नवन् नेट्टुतायि
 वीर्प्पिट्टान् ; धर्म्मत्तिन्टे–
युन्नतमणिध्वजम्
 कुलुङ्ङिप्पोयीलल्ली ?
माञ्ञुपोयवन् मन्दम्
 मुट्टत्तुनिन्नुम् ; तन्वि
चाञ्ञु तन्कसालमेल,
 मयङ्ङान्वैकीलल्ली ?

—१९४४

"क्यों लिया है मैंने जन्म मानव वंश में ?"
सोच-सोचकर उसकी आँखें कलुषित हो रही हैं
काल ने, जो साक्षी है कर्म का,
उस बालक का चित्त
प्रकाश के सूक्ष्म धवल पट पर अंकित कर दिया।
शायद कानों में कोई पड़ी हो आवाज़
हिल गयी विलासिनी
देखने लगी मुँह घुमाकर
जैसे डोल गयी हो कमल की डाल
हवा के झोंके से।

भौंहों को तानकर
चिल्ला उठी वह उग्र स्वर में
"निकल जा कलमुँहे,
मेरी 'विल्ली' को तेरी नज़र लग जायेगी !"
वालक ने एक बार आकाश की ओर ताका
क्या उसकी दृष्टि की धधकती आग में
ईश्वर स्वयं जल तो नहीं गया ?
उसने एक बार लम्बी साँस छोड़ी
क्या इससे धर्म का ऊँचा मणिध्वज काँप तो नहीं गया ?
वालक धीरे-धीरे आँगन से हट गया,
नारी ने आराम-कुरसी पर अपनी पीठ टिका दी—
झपकी लेने में देर हो रही है न !

—१९४४

आ चोद्यचिह्नम्

पोन्नु ञान् पाटत्तेय्क्कु, नगरारामत्तिकल्—
निन्नु, मौस्सायाह्नत्तिन् जीर्ण्णमाम् प्रकाशत्तिल् ।
शान्तमाय्, विशालमाय्, एन्नालुम्, वरण्टेर्
क्लान्तमाय्क्काण्मू पाटम् ग्रामीणचित्तम् पोले ।

स्नेहपूर्ण्णमाम् नाट्टिन्—
पुरत्तिन् नेट्टुवीर्प्पेन्—
देहत्तिलेट्ट् वेन—
लन्तितन् चुट्टु काट्टिल्
चूषवे वयलिन्ट्
वक्कत्तु मावुम् प्लावुम्
वाषयुम्मूलम् मर्—
ञ्ञोतुङ्ङुम् कुटिलुकळ्
ओन्नु दीनमाय् नोक्कि—
प्पुंचिरिक्कोण्टुम्कोण्टु
निन्नु, पण्टेन्नो तेच्च
कुम्मायम् मुक्कालुम पोय् ।

पकलोन् पटिञ्ञाट्टु
चाञ्ञप्पोल्, करिक्कोलम्
नुकवुम् चुमन्नुको—
ण्टेत्तिय कृषिक्कारन्,
चालुकळेट्टुक्कुन्नु—
ण्टप्पोषुम् चटच्चेल्लुम्
तोलुमामेरुतिने—
ञ्चुक्किच्च कय्यालुन्ति ।

वह प्रश्न-चिह्न

सन्ध्या के ढलते प्रकाश में
पार कर नगर के उद्यान को
मैं बढ़ चला खेत की ओर ;
दिखायी दिया खेत
ग्रामीण हृदय की तरह
शान्त विशाल, किन्तु ऊजड़ और उदास।

निदाघ की सन्ध्या का गरम-नरम झोंका
मेरी पीठ पर पड़ा
जैसे स्नेहिल ग्राम का निःश्वास।
खेत के किनारे चारों ओर
आम, कटहल और केले के पेड़ों में
छिपी-सिमटी झोंपड़ियाँ—
जिन पर पुता गारा झड़ चुका था—
दीन दृष्टि से देखकर मुस्कुराती खड़ी रहीं।

दिवाकर पश्चिम की ओर ढल चुका था
लेकिन यह किसान
आया था खेत पर हल का जुआ कन्धे पर उठाये
अब भी जोत रहा है हल
अपने दुबले हाथों से,
धकेले जा रहा है बैलों को
जो क्षीण होकर रह गये हैं मात्र हाड़-चाम के ढाँचे !

वेलये, दृयितये—
            प्पोलिन्नुम् स्नेहिक्कुन्न
शीलमुळ्ळोरास्साधु—
            तन् वळञ्ञोरु निषल्,
ईविधम् निजाह्लादम्
            कट्टतारेन्नारायुम्
जीवितम् कुरि्य्क्कुन्न
            चोद्यचिह्नमल्लल्ली ?
तळरुम् कृषीवलन्
            तन्टे मुम्पिलाञ्चिह्नम्
वळरुन्नतायुत्तोन्नी
            वरम्पुम् कूट्टाक्काते ।
एन्तिनाणिरुट्टिनाल्
            मायक्कुवान् भावियक्कुन्न—
तन्तीरीक्षमे ? कण्टु—
            कषिञ्ञु कृषीवलन् ।

—१९४४

जिसके लिए काम पत्नी की तरह प्यारा है,
उस किसान की परछाईं
पड़ रही है खेत पर।
यह परछाईं
कहीं वह प्रश्न-चिह्न तो नहीं है
जिसका उत्तर वह अपने जीवन द्वारा खोज रहा है
—"कौन है मेरे सुखों को चुरानेवाला?"
मुझे लगा कि
कर्मश्रान्त कृषक के सामने
बढ़ता ही रहता है वह प्रश्न-चिह्न
सारी मेड़ों की सीमाएँ लाँघकर;
हे अन्तरिक्ष,
क्यों करना चाहते हो अदृश्य इस प्रश्न को
अन्धकार की चादर डालकर?
निश्चय ही
किसान ने उसको देख लिया है।

—१९४४

मुत्तुकळ्

जीवितसमुद्रत्तिल्—
ककण्णुनीरिनालुप्पु
ताविन पल महा—
संभवमिरम्पवे,
धीरमाय् प्रवर्त्तिय्क्कुम्
चित्तङ्ङळ्, ताने वाक्कुंम्
चोरतन् पशकळाल्
पविषम् रचिय्क्कुन्नु;
कोच्चुराष्ट्रत्तेत्तिन्नु
वीर्क्कुन्न वन्राष्ट्रत्ति—
न्नुच्चलल्क्कोटित्तुम्पाम्
चितम्पल् तिळङ्ङ्ङुन्नू।
कालत्तिनुळ्ळम्कैयिल्—
क्कोळ्वताकिलुम् तीरम्
काणात्ताक्कटलिन्टे
निम्नमामोरिटत्तिल्।
चिप्पियाय् चरिक्कयाम्
नित्यशान्तियेङ्ङेन्नु
तप्पियुम् तटवियुम्
व्याकुलम् कविचित्तम्।

जीवितमतिन्निटय्क्केन्तिनाणतिलावो
पाविटुन्नतीक्कूर्त्त सत्यत्तिन् तरिकळे ?
एत्रमेलिप्पटञ्ञालु मर्न्नुपोकुन्निल्लेन्न—
ल्लत्रमेलिव कटन्नकमे नोविय्क्कुन्नु।
मूटुक हृदयमे, मुग्धभावनकोण्टी
मूकवेदनकळे मुषु वन्—मुत्तावट्टे !

—१९४५

मोती

जीवन-सागर में
जब खारे आँसुओं से निर्मित महान् घटनाएँ
उमड़ती-गरजती हैं
तो धीर-साहसी कर्म-निरत हृदय
अपना रक्त स्वयं बहाते हैं
और उससे प्रवाल का निर्माण करते हैं।
छोटे राष्ट्रों को निगल-निगल कर
जो मोटे बन गये हैं बड़े राष्ट्र
उनकी चंचल ध्वजाओं में चोइण्टे
चमक रहे हैं।
जीवन-सागर सीमातीत है सब के लिए
किन्तु काल के लिए है वह मात्र चुल्लू भर ;
इस सागर की गहराइयों के किसी कोने में
शाश्वत शान्ति की खोज में
टटोलवाँ चला रहा है कवि-हृदय
स्वयं सीपी बनकर।

जाने क्यों जीवन बीच-बीच में चुभो रहा है
सत्य के नुकीले कण छुप जाते हैं जो गहरे
जितना ही छटपटाते हैं उन्हें निकालने को बाहर
घुसते जाते हैं उतने ही अधिक अन्दर बढ़ाते हैं दर्द।
हे मेरे हृदय,
इन मूक वेदनाओं को लपेट दो अपनी मुग्ध भावनाओं से
ताकि बन जायें वे सब की सब मोती।

—१९४५

सतीर्थ्य

उल्लसिक्कयाणन्ति
पोन्विरल्त्तुम्पालल्प-
फुल्लमाम् वेळिच्चत्तिन्-
मोट्टुरुत्ततुम् नोक्कि ।
नालु भागत्तुम् पच्च-
नेल्प्पाटमेन्तो चिन्ति-
च्चेलुमा रोमांचत्ताल्
सील्क्कारम् कोळ्केक्काट्ट्टल्,
तन्नुटे गृहत्तिन्टे
कोलायिल्तूणुम् चारि
निन्नु मट्ट्टोरु सन्ध्य-
पोले सौम्ययाम् राध ।

पोन्चिरकुरुम्मवे
मुम्पिलात्तैमाविन्टे
तुंचिल् वन्निरिप्पायी
रण्टिळम् मञ्ञक्किळि ।
पल्लवाधरपुटम्
विरय्क्के, मुट्ट्टत्तार्न्न
मुल्लतन् तरयिले-
य्क्कारोमल् आराल् नोक्कि !
क्षीणमाय् विळरिय
कविळत्तेतो हृद्य-
शोणमाम् स्मरणतन्
रेखकळुयरवे ।

सहपाठिनी

सन्ध्या उल्लसित हो रही थी
अपनी स्वर्णिम करांगुलियों से
अल्प स्फुटित प्रकाश की कलिका तोड़कर
उसे भर-दृष्टि देखती हुई
चारों ओर हरे-भरे खेत
न जाने क्या सोचकर
पुलकित हो रहे थे
और मन्द पवन में सीत्कार कर उठते थे।
तब सुन्दरी 'राधा'
अपने घर के बरामदे में
खम्भे पर पीठ टिकाये खड़ी थी,
दूसरी सन्ध्या के समान।

सामने
आम के छोटे-से पेड़ की डाली पर
सुनहले पंखों से परस्पर सटे-सटे
आ बैठा पीत पक्षियों का एक जोड़ा।
आँगन में
जूही के चबूतरे की ओर
पड़ी उसकी नज़र
काँप उठे
मृदुल अधर-पल्लव-पुट।
खिंच गयी
प्रक्षीण पाण्डुर कपोलों पर
किसी रसीली स्मृति की रेखाएँ।

मून्नुकोल्लत्तिन् मुन्पा–
णा, गस्टिन्नारंभत्तिल्
तन्नुटे सतीर्थ्यनाम्
प्रियदर्शनन् 'इन्दु',
पूनिलावोळि कोलुम्
तूवेळळक्खदरज्जुव्व
मेनियिल्च्चार्त्तिक्कोण्टु
यात्र चोदिप्पान् वन्नु।
आ मुट्ट्त्तते मुल्ल–
त्तर्मेल् कैकुत्तिक्को–
ण्टा, मट्टिलन्तित्तारम्
काण्केयेकनाय् निन्नु।

अन्नु तानिळम् चुण्टल्–
प्पतरुम् स्नेहम् कण्णिल्
निन्नु निर्गळिक्कवे,
हृत्तिनाल् पुणर्न्नालुम्,
तन् करङ्ङळे, वेम्पुम्
चुण्टिने, प्पल मुग्ध–
संकल्पम् कुतिप्पिक्कुम्
मारिने, व्वलाल् निर्त्ति,
मुल्ल तन्निल तेरु–
प्पिटिच्चु सनिश्वासम्
तेल्लकन्नार्द्रस्निग्ध–
भावयाय् निलक्कोण्टु।
आ मनोहरमाय
रंगवुम्, पात्रङ्ङळुम्
ओमलाळुटे मन–
स्सिप्पोषुम् वरय्क्कुन्नु;

तीन बरस पहले
अगस्त के आरम्भ में ही
आया था, सहपाठी 'इन्दु',
प्रियदर्शन।
चाँदनी सा शुभ्र-धवल
खद्दर का कुरता पहनकर
आया था वह
बिदा लेने के लिए।
हाँ, इसी आँगन में
इसी जूही के चबूतरे पर
हाथ टिकाये खड़ा था
देख रहा था उसे
यही सन्ध्या-तारा।

उस दिन
कोमल अधरों पर आतुर रहनेवाला प्यार
आँखों से प्रकट हो रहा था,
मन से तो उसे आलिंगन में कसती
किन्तु रोकती थी बरवस
अपने कमल-करों को
अपने आतुर-अक्षम अधर-पुटों को,
विविध कल्पनाओं से उद्वेलित उर को
जूही की पत्तियों को मसलती
वह सनिश्वास खड़ी थी थोड़ी दूर पर
आर्द्र-स्निग्ध भावों से पुलकित,
आज भी उस सुन्दरी का मन
चित्रित कर रहा है
वह सुन्दर दृश्य
और वे सुन्दर कथा-पात्र;

"पोणु वान्, स्वतंत्रमाम्
अंतरीक्षत्तिल्, पक्षे
काणु'मिन्दु'वे", ई वाक्कि–
प्पोषुम् मुषङ्ङुन्नू ;
मुल्ल तन् परिमळम्
पुणर्न्नेङ्ङो पोय
नल्ल काट्टिन्नुम् वन्नु
कोळ्मयिर्क्कु वितक्कुन्नू ।
एङ्ङने तट्टुक्कुमा–
क्कण्णुनीरोषुक्कवळ् ?
एङ्ङने तुटक्कुमा–
क्कविळिन् तुट्टुप्पवळ् ?
कम्पिकळ् मुरिञ्ञु पोल् ;
वण्टिकळ् मरिञ्ञु पोल् ;
तन् पिताविनुम् कूटि–
यतिनाल् मृति पट्टि ।
'इन्दु'विन्नतिल् पंकु
काणिल्ल, कळंकत्तिन्–
बिन्दुवा स्वभावत्ति–
लवळिल्लारोपिक्कान् ।

जेलिलेक्कवाटत्तिल् चेन्नटिक्कयाम् प्रेम–
शालिनिपुटे तुटिक्कुन्न मानसमिन्नुम् ;
चिरबद्धमामिण तन्नषिक्कूट्टिन् मीते
चिरकिट्टटिक्कुन्न कोच्चुतत्तयेप्पोले ।
एङ्ङने अटक्कुमानेट्टुवीर्प्पुकळ्, अवळ्
एङ्ङनेयमर्त्तुमाक्करळिन् तुटिप्पवळ् ?

—१९४३

"मैं जा रहा हूँ,
शायद देश के स्वातन्त्र्य-वातावरण में
देख सकोगी अपने 'इन्दु' को—"
गूँज रह हैं आज भी ये शब्द
जूही के परिमल का आश्लेष कर
कहीं दूर चला गया तरुण पवन फिर लौट आया है
और वही पुलक दे रहा है—
कैसे रोक पावेगी
वह अपने आँसू
कैसे मिटा पावेगी
अपने कपोलों की अरुणिमा !
सुनती है
कट गये हैं तार
उलट गयी हैं रेलगाड़ियाँ,
बन गये हैं पिता जी भी मृत्यु के शिकार
इस आन्दोलन में।
नहीं, उसमें हाथ नहीं होगा
अपने 'इन्दु' का !
नहीं, उसके चरित्र पर
कलंक के छींटे वह नहीं डाल सकती।

चिर-वद्ध संगी के पिंजरे पर
चिर-विकल हो पंख फड़फड़ानेवाली सारिका की भाँति
उस प्रेमशालिनी का धड़कता हुआ हृदय
कारागार के द्वारों से जा टकराया है—
कैसे वह रोक पावेगी आहें,
कैसे वह रोक पावेगी दिल की धड़कन !

—१९४३

अगस्त १९४२ के आन्दोलन पर आधारित कविता।

अषिमुखत्तु

'वंचि' यिलषिमुखत्तेत्ति ञान् ; समुद्रत्तिन्
नेंचिल् वानमर्त्तुन्न कट्टारिप्पिटिपोले

चोरयिल्प्पटिञ्ञारु चक्रवाळत्तिल्क्काणाम्
सूर्यबिंबत्तिन्नट्टम् ! नटुङ्ङत्तेरिक्कुन्नु !

सागरम् पिटयवे, वितुम्पि वितुम्पिक्को—
ण्टागमिच्चीटुम् नीलवेणि चूर्णियये स्नेहाल्

चालवे तटुक्कुवान् वेलप्पेण् नीट्टुम् कय्यु–
पोलता विलङ्ङ्ने विळरुम् मणल्क्कर ।

तन्नवरोधत्तिलेश्शपथम् जलरेख–
येन्नु मत्तटिच्चिट्ट नियताधिकारत्ते

पिन्नेयुम् परत्तुवान्, जनतारक्षक्कायि–
निन्न नीतियेत्तट्टिक्कटक्का, नारंभिक्के,

शूरनामोरु पेरुमाळे मुन्पी नाटिन्टे
धीरमाम् सिरारक्तम् तिळक्कुमेतो हस्तम्

कुत्तिय कथयिले वीरसंभवम् कोण्टु
तीर्त्त नाटकम् नटिप्पिक्कयल्लल्ली विश्वम् ?

हा ! सहिच्चिरुन्नील पूर्वकेरळम्, स्वेच्छा–
दासमाम् चेकोलिन्टे दृप्तमाम् निषल् पोलुम् ।

नदी-समुद्र संगम पर

मैं पहुँचा
दूर पश्चिमी क्षितिज पर स्थित वंचि[1] के
नदी-समुद्र संगम पर।
सूर्य बिम्ब की नोक,
समुद्र की छाती में भोंकी गयी कटार की मूँठ सी लग रही थी ;
लहू में लथ-पथ भय-स्तब्ध तड़प रहा था समुद्र।
और रोती-कलपती आ रही थी नील-वेणी चूर्णी[2]
जिसे स्नेहपूर्वक रोकने के लिए
बढ़ आयी उसकी सखी सागर-तट-रेखा
अपना तिरछा, पांडुर सैकत-कर फैलाये।

जिसने अपने अभिषेक के समय की प्रतिज्ञा को
जाना मात्र जल-धारा, और, जिसने उन्मत्त हो कर
अपने अधिकार की सीमा-रेखा को करना चाहा विस्तृत,
जिसने चाहा जनता की रक्षार्थ निर्मित नीति को नष्ट करना,
उस सूरमा पेरुमालु[3] की छाती में कटार भोंकने के लिए
बढ़ आया था एक हाथ जिसमें उबल रहा था
मेरे केरल का पौरुषमय रक्त।
क्या यह सन्ध्या उन वीरतापूर्ण घटनाओं पर आधारित
नाटक का अभिनय तो नहीं कर रही है?
हाय, प्राचीन केरल जो
स्वेच्छाचारी शासन की दर्प-पूर्ण छाया तक
नहीं सह सकता था,

---

१. वंचि—अर्थात् 'तिरुवंचिक्कुलम्'—प्राचीन केरल के शासक चेर सम्राटों की राजधानी, जिसका संक्षिप्त नाम 'वंचि' है।
२. चूर्णी—केरल की प्रसिद्ध नदी जिसका दूसरा नाम है, पेरियार।
३. पेरुमालु—चेर राजवंश का अन्तिम राजा।

रंगमेङ्ङने मारि ? जनतातन्नत्तिन्टे
मंगळ मणित्तोट्टिलिन्नतिन् शवक्कट्टिल् !

मिन्निट्टुम् मुत्तिन् पट्टुम् नेट्टिट्टमेलणिञ्ञन्ति–
प्पोन्निळम् तुट्टुप्पुट्टुप्पार्न्नेपुम् तिरकळे,

सागरराजाविन्टे युपहारवुम् चुम–
न्नागमिच्चिरुन्नवराय मोहिनिकळे,

ञेट्टिनिल्क्कुवतेन्तु, पण्टत्ते 'महोदय—
पट्टण' मिताम् ; मुखम् कुनिप्पिन्, विलपिप्पिन् !

पोयि केरळम्, मून्नु मुरियायोटिञ्ञ वि–
ल्लायि ; संस्कारत्तिन् ञाणपञ्ञु किटक्कुन्नु ।

एतु कय्यिनियितिन् मुरि कूट्टीटुम् ? ञाणिन्
मेदुर मधुरमाम् रवमेन्निनिक्केळ्क्कुम् ?

आरितिलिनि महाजनशक्तितन्निच्छा–
कारियाम् समुज्ज्वल कर्मत्तेत्तोटुक्कुवान् ?

पोवुकक्कथ ; किनाविन्टे पोन्कसविट्ट
पावु नेय्तालिन्नत्ते नग्नत मरय्क्कामो ?

तेल्लु दूरत्ताय् नीलप्पट्टिन्मेलोरो पच्च–
क्कल्लुपोल्तुरुत्तुकळ् कायलिल्क्काणाकुन्नु ।

अळियुम् चकिरियिल् निन्नु कांचनक्कम्पि
विळयिच्चीटम् नित्य निस्वराणतिलोक्के ।

अवर्, तन् ञरम्पिले मज्जयुम् कूटिक्कार्न्नु
शवमाक्कुन्नू दीन केरळश्रीये क्षामम् ।

उसका दृश्य आज कितना बदल गया है !
जन-तंत्र के लिए जो मंगल-मणिमय पालना था
आज वही उसका शव-मंच बन गया है !
संध्या के सुनहरी सिंदूरी रंग में डूबी
डाल कर माथे पर उज्ज्वल मोतियों की लड़ी
हे मनमोहिनी लहरियो,
तुम पहले यहाँ आया करती थीं
सागर-राजा के लिए उपहार ले कर
आज इस तरह ठिठक कर क्यों खड़ी हो ?
यही है प्राचीन महोदय नगर
शीश नवाओ, आँसू बहाओ।

वह केरल तो नष्ट हो गया,
उस चाप के तीन टुकड़े हो गये,
धनुष की प्रत्यंचा ढीली पड़ गयी,
अब, हाय, कौन इसे अक्षत रखेगा
किस दिन सुनायी पड़ेगी इसकी प्रत्यंचा की मन्द्र मधुर टंकार ?
कौन इस पर संधानेगा
मानव शान्ति का उज्ज्वल अमोघ कर्म ?
जाने दें, वह कहानी,
यदि मैं बुनूँ सपनों के सुनहले ताने-बाने
तो क्या ढँक सकूँगा आज की नग्नता को ?
थोड़ी ही दूर पर जल-वितान पर
दिखायी देते हैं कई छोटे-छोटे द्वीप—
नीली मखमल पर रखे हरित मरकत-से सुन्दर
उनमें रहते हैं निपट अकिंचन जन
जो नारियल के सड़े हुए छिलकों के रेशों से
बनाते हैं सोने के तार,
किन्तु स्वयं उनकी शिराओं की मज्जा तक को
कुतर-कुतर कर खा जाता है अकाल
बनाता है केरल-श्री को केवल शव।

काट्टिनाल् वेळ्ळप्पायप्पळ्ळ वीर्तात्तोल्लासम्
नीटि्ट्लाञ्अलञ्आटिक्कळिक्कुम् पल कप्पल्,
मुन्पु सागरजात वाणिज्यश्रीतन् वेळ्ळ–
क्कोम्पनानकळ् पोले कूत्ताटुमिटङ्ङळिल्,
नालंचु मीनिन्नायि मुङ्ङियुम् पलप्पोषुम्
आलस्यत्तोटे वेरुम् वयराय् पोङ्ङिप्पोन्नुम्,
अङ्ङिङ्ङ्ङाय् चिल चीनवल तन् कोलम् मात्रम्
मङ्ङि निल्पतु काणाम् परुन्तिन् मेलनोट्टत्तिल् !
कोच्चु तोणियिल् प्पटि्ट्, च्चूण्टलिल् मात्रम् कण्णु
वेच्चु कोण्टनङ्ङाते चट्टित्तोप्पियुमायि
मेवुमिक्किटात्तन्मार्, तन् पूर्वरी नाटिन्टे
भावुकम् पुलर्त्तिय नाविकत्तलवन्मार् !
लीलयिल् मातािवन्टे मटियिल् क्कुमारन्मार्
पोललक्कटलिलुम् कायलिन् नटुविलुम्
तिर तन् चेवि पिटिच्चाटिच्चु दुस्सामर्थ्यम्
तिरळुम् कोटक्कोटुंकाट्ट्टु वन्नेतिर्तालुम्,
ओटिये मरिक्कुमेन्नार्तालुम्, वंचिप्पाट्टु
पाटियुम्, कुलुङ्ङाते, चिरिच्चुम् रसिच्चवर् !
अवरिल् कोण्टुकाटि्ट्न् साहसम्, समुद्रत्ति–
न्नवसानमिल्लात्त गांभीर्यम् रण्टुम् कण्टु ;
केरळत्तिनु मरन्नीटुवान् वय्याद्धीर–
धीररेत्तिरक्काद्यम् कटिञ्ञाणेरिञ्ञोरे !

फेनिल जलधियें नोक्कि आ ;—नतिन् पोय
जीनियुम् कटिञ्ञाणु मेन्नु नामिनि नेटुम् ?
एन्नु नम्मुटेयाणेन्नभिमानत्ताल् जृंभि–

पहले जहाँ जल-विहार करते थे
वायु-फूले श्वेत-पालोदर अनेक यान—
समुद्र से उत्पन्न वाणिज्य-लक्ष्मी के सुन्दर गजराज जैसे—
वहाँ आज दिखायी देते हैं केवल कुछ फीके जाल
खाली पेट जो आलसपूर्वक डुबकी लगाते हैं और ले आते हैं
दो-चार मछलियाँ, चीलों की निगरानी में।
चपटी टोपी पहने बैठे हैं निश्चल छोटी-छोटी नावों में
कुछ बालक अपने काँटों पर नज़र गड़ाये,
इनके पूर्वज ही थे नाविक नेता,
इस देश के सौभाग्य विधाता।
वे समुद्रों और पृष्ठभूमि के जल-वितानों पर
उछलती तरंगों के कान पकड़ कर
उन्हें नचाते थे।
चाहे कैसा ही उग्र बरसाती तूफान आ कर लड़े
और उनकी नावों को उलट देने की चुनौती दे,
तब भी इस सागर की गोद में
वे रहते थे अचञ्चल
गाते थे नौका-गीत, करते थे हास-परिहास
जैसे माँ की गोद में खेलता है लीला-लोलुप बालक!
उनमें मैंने देखा था
आँधी का साहस और सागर का अनन्त गांभीर्य।
कैसे भूल पायेगा केरल उन वीरों को
जिन्होंने पहले-पहल उद्धत तरंग-तुरंगों को
लगाम लगायी।

मैंने दौड़ायी दृष्टि फेनिल सागर की ओर
उसकी खोई हुई लगाम और जीन
हम पायेंगे किस दिन?
'यह हमारा है'—
इस स्वतंत्रता-बोध के गौरव से पुलकित,

क्कुन्नोरी वितानत्तिल् केरळ वाणिज्यश्री

तन्नुटे युरुक्कळेयिच्छपोल् मेयान् विट्टु–
निन्नु निर्भयम् नुरप्पूविरुत्ताटिप्पाटुम् ?

एन्नु नम्मुटयाय नाटु काक्कुवान् दूरे–
च्चेन्निरम्पीटुम् तोक्किन् कुरयाल् परन्मारे

ओत्तु ञेट्टिच्चुम् कोण्टु नम्मुटे पटक्कप्पल्–
तन् निर कुतिच्चोटिक्कटलिल् चुर मान्तुम् ?

हा, वरुम्, वरुम् नूनमाह्निन ; मेन् नाटिन्टे–
पावन पताककळ् कटलिल् तत्तिप्पारुम् ;

हा वरुम्, वरुम् नून माह्निन ; मेन् नाटिन्टे
नावनङ्ङियाल् लोकम् श्रद्धिक्कुम् कालम् वरुम् ।

ई विचारत्तिन् मीते विरियान् निजोष्मळ–
भावन चुरुक्किक्कोण्टेन् मनमिरिक्कवे,

अन्तियिल् महादेव क्षेत्रत्तिल् निन्नुम् काट्टिल्
नीन्ति वन्नीटुम् क्षीणक्षीणमाम् शंखारावम्,

चेरयुमेलिकळुम् तङ्ङळिल्क्कलहिक्कुम्
चेरमान् परम्पिन्टे नीण्ट रोदनम् पोले,

अम्पलम्, पल पळ्ळि, तेङ्ङिन्तोप्पुकळ्, कायल्–
तन् परप्पिवकळेयोकके विह्वलमाक्कि,

विलयिक्कयाय् वानिलेन्टेयात्माविल्, शान्त––
निलयेस्सहिक्कात्तोरन्तिकसमुद्रत्तिल् ।

केरल की वाणिज्य-लक्ष्मी
किस दिन छोड़ेगी अपनी नौकाओं को
जल-वितान पर स्वच्छंद विचरण के लिए
और किस दिन निर्मम हो कर तोड़ेगी
फेनों के कुसुम ?
गा-गा कर नाचेगी किस दिन ?
कब हमारे लड़ाकू जहाज़
देश की रक्षा के लिए तैनात,
विदूर देश में जाकर, अपनी तोपों की गरज से
दुश्मनों को चौंकाते हुए
उछलते-कूदते दिखायी देंगे, और
जल-वितान को चीरते हुए आगे बढ़ेंगे ?

हाँ, आयेगा, अवश्य आयेगा वह दिन
जब मेरे देश की पावन-पताका
फहरेगी सातों समुद्रों के ऊपर ;
हाँ, आयेगा, अवश्य आयेगा वह दिन
जब मेरे देश की वाणी संसार आदर से सुनेगा।
अपनी भावनाओं को समेट कर,
इस विचार पर सेंक-सेंक कर
मैं उन्हें ऊष्मल कर रहा था, तभी
महादेव के मन्दिर से, हवा पर तैरता
आने लगा सन्ध्याकालीन प्रक्षीण शंखनाद—
यह था मानों चेर राजधानी का रुदन-स्वर
जहाँ आज साँप-चूहों-सी लड़ाई-भिड़ाई चलती है ;
मन्दिर-मस्जिद, गिरजे और
नारियल के बगीचों को विह्वल करता हुआ
वह स्वर विलीन हो गया—
गगन में, मेरी आत्मा में
और समीपवर्ती अदान्त सागर में।

तल पोक्कि ञान् नोक्कियाराणानीलच्चीन--
वल केट्टि निल्कुन्नतीयपारतयिकल् ?

मुकळिल्त्तिळङ्ङुन्नू वषुतित्तत्तिप्पोय
पकलिन् चितम्पलिन् वेण्नुरुक्ककडिङ्ङङ्ङायि ।

दूरेयाक्किषक्केषुम् कुन्निन्टे मेलट्टत्तु
नारेतिर् निरकतिरान्नोरम्पिळि मिन्नी

तुंगमाम् निर्पर वेन्चतिन् मेल्भागत्तु
मंगळम् वळर्त्तुन्न तेङ्ङिन् पूक्कुलपोले ।

—१९४२

सिर उठा कर
देखा मैंने ऊपर—
कौन खड़ा है यह इस अपारता में
अपना नीला जाल फैलाये ?
ऊपर चमकते दिखायी दे रहे थे,
श्वेत-खण्ड छोटे-छोटे
दिवस के चोइंटे से
जो खिसक बच निकले थे !
दूर,
पूर्व की पहाड़ी के ऊपर
धवल रम्य किरणोज्ज्वल चन्द्रमा
चमक रहा था,
जैसे धान के मापक़-भांड पर धरी हो
नारियल की मांगलिक मंजरी !

—१९४२

शवप्पेट्टि

कोच्चुतारकङ्ङ्ळे !

नूल्क्कुविन् इरुट्टिन्टे

मञ्चिलाकिलुम् निङ्ङळ्

आत्मीयप्रकाशत्ते !

नेरियोरिषकळाल्

नेय्युविन् स्तंभिप्पिच्चु

पारिटम् वाष्वोरल्लि—

न्नन्तिमावरणत्ते !

मन्निने ञेरुक्कीटुम्

इरुळिन गळम् कोय्यान्

उन्निय भास्वच्चक्रम्

इळकुम् करम् पोक्कि,

तञ्चिरविरोधि तन्

नेञ्चिलूटवे, तुळ्ळुम्

कुञ्चिरोममान्नोरा

चुवप्पन् कुतिरये,

वेम्पिटुमतिन् रश्मि

वेट्टिटच्चु विट्टुम्कोण्टु

मुम्पिल् वन्नेत्तिप्पोयि

विश्वजेतावाम् नाळे' !

पूवुकळ् वितरुविन् आत्मजीवितत्ताला—

भावुकप्रदातावु वरुमा मार्गङ्ङळिल् !

पिञ्चुमोट्टुकळिता क्रूरमामिरुळ्, नेञ्चिल्

तञ्चुवटमर्त्ति निन्नाकिलुमुणर्न्नल्लो ।

शव-पेटिका

नन्हे-नन्हे तारों !
कातते रहो सूत आत्मीय प्रकाश का,
भले ही रहो तुम
अन्धकार की छत पर !
कातते जाओ महीन धागों से
अन्तिम आवरण, क़फ़न, अन्धकार का
जिसने किया है स्तब्ध जग को
करता है उस पर शासन ।
सम्मुख पहुँचा है जग-जयी नूतन प्रभात
भास्वर रश्मियों का चक्र हाथ में उठाये
विश्व को दबोचनेवाले अन्धकार का
गला काटने के लिए
चंचल अयालों वाले लाल घोड़ों की
रास को ढीला कर
अपने चिरन्तन विरोधी की छाती पर से
सरपट दौड़ता हुआ ।

विखेर दो फूल
उस मंगलदायी के मार्ग पर !
जाग उठी हैं नन्हीं कलिकाएँ
यद्यपि क्रूर अन्धकार खड़ा है उनकी छाती पर पाँव जमाये ।

पातिरय्क्कूक्कन् कूक्कॅम्—
वलियिल्, तनिक्केलुम्
एतिलुम् वलियताम्
शक्तिये ग्रहिक्काते
वन्कटल् विरिमारिल्
वाणमुक्कीट्टुम् अल्लु
तन् कष्लेतिक्कॅति
चुम्बिच्चु किटन्नालुम्
नवमाम् स्वातंत्र्यत्तिन्
स्वच्छन्दगानम् मूळुम्
पवमाननेकुन्नो—
रुल्क्कटावेशत्तोटे
पोन्तिट्टुम् तिरकळे—
च्चुरुट्टियात्तीट्टर्प्पं—
मेन्तिन मलिननाम्
रिपुवोटेतिर्त्तल्लो ।
मृतनामिरुट्टिने
मूटुवान् शवप्पेट्टि—
क्कुतकुम् नीलप्पट्टु,
पुल्लुकळ् निवर्त्तट्टे !
इरुळिन् पुरोहित—
रुलयुम् करुप्पुट्टु—
प्पियलुम् वव्वालुकळ्
चेय्यट्टे शवकर्मम् !
जातकौतुकम् ताष्त्ति
मूटणम् इरुळिने
प्रेतवुम् कूटिप्पुर—
त्तलयानणयाते !
नूरुनूरिळुकळ् वाणाताकिलुमेन्ता
नूरुनूरिरुळिनुम् पारोट्टश्शवप्पेट्टि !

—१९४५

कैसा है यह सागर
आधी रात की वेला में खुर्राटे भर कर सोनेवाला—
विसार कर अपनी अप्रमेय शक्ति
चूम रहा था उस अंधकार के चरण
जो चढ़ा बैठा था इसकी छाती पर।
किन्तु, सागर जब उद्यत हो गया है
अपने दर्प पूर्ण शत्रु से जूझने के लिए,
उत्तुंग तरंगों की मुट्ठी बाँधकर
तब स्वातंत्र्य गीतों को
गुनगुनानेवाले पवन की ओर से
उत्कट उत्तेजना पाई है उसने।
तृणदलो,
बिछा दो काला रेशमी क़फ़न
मृत अन्धकार की शव-पेटिका को
समुचित ढँकने के लिए।
लहराता हुआ काला चोगा पहननेवाले
ये चमगादड़ पुरोहित
सम्पन्न कर दें अन्त्येष्टि कर्म;
दफ़ना दें इसे इतने गहरे
कि उसका प्रेत भी
फिर कहीं मँडराने न पाये।

राज किया है सौ-सौ अंधकारों ने इस धरा पर
पर सौ-सौ अंधकारों के लिए यह धरती है
एक ही शव-पेटिका।

—१९४५

भारतसन्देशम्

आवु ! सोदरि, चीने
　　　　नी स्वतंत्रयायल्लो;
भावुकमाशंसिप्पू
　　　　निन्टे तोषियामिन्त्य ।
चेतन वेरुतेया–
　　　　यिल्ल तिन्नता तीव्र—
यातन ; नुकम् तट्टि
　　　　नीक्कुवान् कषिञ्ञल्लो ।

चोरयिल्क्कुळिच्चालुम्
　　　　कण्णुनीर् कुटिच्चालुम्,
घोरमाम् एट्टाण्टेट्टु
　　　　युगमाय्क्कषिच्चालुम्,
सारमिल्लवयोन्नुम् ;
　　　　नम्मुटेयात्माविन्नु
पारतंत्र्यत्तिन् बाध
　　　　भीतिदार्बुदमत्रे ।
चीञ्ञुपोम् चिन्ताशक्ति—
　　　　यळियुम् स्वसंस्कारम्
माञ्ञुपोमात्मारोग्यम्—
　　　　मृत्युवाणतिल् भेदम् ।
नीण्टोरा शस्त्रक्रिय
　　　　नी सहिच्चीलेन्नाकिल्
वीण्टुमीयात्मीयमाम्
　　　　सौभाग्यम् लभियक्कुमो ?

भारत सन्देश !

हाय ! बहन, चीन !
तुम तो स्वतन्त्र हो गयीं
मैं तुम्हारी सखी
मंगल कामना करती हूँ !
जिस तीव्र यातना को
तुम्हारी चेतना पी गयी, वह व्यर्थ नहीं हुई;
तुम अपने गले का
जुआ हटाने में समर्थ हुई ।

लहू में नहा उठीं,
आँसू पी गयी
आठ भयानक वर्षों को
तुमने एक पूरे युग की तरह विताया,
कोई चिन्ता नहीं—
हमारी अन्तश्चेतना को पराभूत करनेवाली
परतन्त्रता ही भयानक अर्बुद-व्याधि है !
इसके कारण
चिन्तन की शक्ति हत होती है
संस्कृति सड़ जाती है
आत्मा का चैतन्य नष्ट हो जाता है,
इससे तो मृत्यु कहीं स्पृहणीय है ।
अगर तू
न सहती, यह लम्बा शल्य प्रयोग
तो क्या कर पाती यह आत्मीय सौभाग्य प्राप्त ?

चङङलयषिञ्ञप्पोळ्
निन्नात्मावाकाशत्तिल्
एङङनेयेल्लाम् चेय्ती—
लानन्दनृत्तम् तोषी ?
एङङनेयेल्लाम् दिव्य—
स्वातंत्र्याह्लादम् पोङिङ—
यङङलक्कटलिलुम्
कुन्निलुम् मुषङ्ङील ?

नीळुवान् विरोधमि—
ल्लात्तोराक्कैयाल् स्नेह—
माळुमीस्सहजये—
योन्नु पुल्कुक गाढम् ।
कोळ्मयिक्कोंण्टीटट्टे
निन्स्वतंत्रांगस्पर्शाल्
मामकांगकमटि—
तोट्टये ! मुटियोळम् ।
हिमवल्प्पार्श्वत्तिंकल्
ओन्नु नी चेवियोर्त्ताल्
मम मानसम् तुटि—
क्कुन्नतु केळ्क्काम् भद्रे !

मट्टु राज्यत्तिन् श्मशा—
नत्तिन्मेलानन्दाश्रु
विट्टु वीषिप्पोरल्ल
नम्मळेन्निरून्नालुम्,
नामरिञ्ञीलाज्जप्पा—
नात्महत्यय्क्काय् प्यूजि—
यामयिल्क्केरुम् मूढ—
कामुकन्मारेप्पोले,

जब तुम्हारी जंज़ीरें खुलीं,
तो हे सखि,
तुम्हारी आत्मा किस उल्लास से
आकाश पर नृत्य करने लगी !
स्वतन्त्रता का दिव्य आह्लाद
सागर में, शैल में
कहाँ कहाँ न गूँज उठा ?

जब तुम अपने स्वतन्त्र करों से
करो गाढ़ आलिंगन
अपनी इस बहन का !
तुम्हारे स्वाधीन शरीर के स्पर्श से
पुलकित हो जाये मेरा शरीर
नख-शिख पर्यन्त !
भद्रे !
अगर तुम हिमालय के पार्श्व में जाकर
कान लगाओगी
तो अवश्य मेरे मानस का स्पन्दन
सुन सकोगी ।

हम दोनों
अन्य राज्यों की चिता पर
आनन्द के आँसू नहीं बहातीं,
मगर, हमने नहीं सोचा था
कि यह जापान
आत्महत्या के लिए
'फ्यूजियामा' पर चढ़नेवाले
मूढ़ प्रेमियों की भाँति

तामसस्वभावयाय्
मुन्पिले पोम् साम्राज्य—
कामनयोटे दुरा—
रोहमाम् पदम् पूकि,
ई विधम्, ओरु गति
वेर् यिल्लाते, स्वीय—
जीवितम् लावाद्वार—
त्तिकल् वीष् त्तिट्टुमेन्नाय् !

प्राचि तन् रक्षय्क्कायि—
क्कुलच्च विल्लाणेन्नु
हा ! चिरम् भाविच्चोरा—
वक्रविक्रमक्रूरन्
पषुते मेय्यिल् प्पट्टुम्
रक्तदाहियाम् विल्लन्—
पुषुवाय् सहोदरि,
निन्टे मेल्क्काणप्पेट्टु !
चोरये, क्कण्णीरिने,
वेर्प्पिनेक्कूटि, स्वीया—
हारमाक्किया क्रौर्य—
मिषञ्ञ पाटोरोन्नुम्
दूरेयुमटिकेयु—
मार्न्न सोदरिमार् तन्
दूनदर्शनसाधु—
चरितत्तिन्मेल्क्काण्के,
एङ्ङने मिषि कल—
ङ्ङाते नोक्कुन्नू नम्मळ्,
एङ्ङने शापोक्तिये—
च्चुण्टिल् वेच्चरय्क्कुन्नु ?

अपने जीवन को
ज्वालामुखी के मुँह में झोंक देगा,
तामसी साम्राज्य कामना के
कन्धे पर चढ़,
गतिहीन बनकर।

प्राची की रक्षा के लिए
सज्जित धनुष का
स्वाँग रचनेवाला
वह क्रूर कुटिल विक्रम
दिखाई पड़ता था
हाय, वहन,
तुम्हारे शरीर पर
धनुषाकार रक्तमोही कीड़े-सा !
शोणित, आँसू और पसीना
सबको
अपना आहार बना डालनेवाले
इस कीड़े के रेंगने का निशान
दूर समीपवर्ती सभी सहेलियों की
दुःख भरी
पावन गाथा पर दिखाई देता है,
तब हम कैसे
देख सकते हैं अकलुषित नयनों से ?
और कैसे दबा सकते हैं
शाप वचनों को होठों में ?

नोवुमक्कथ सखि,

निन्टे हृत्तटम् विट्टु

पोवुक, रिपुविनुम्

नन्म नेरुक नम्मळ् !

पावनसुदिनमा—

णिन्नेनि, क्केन् सम्पत्तुम्

जीवनुमोरुवना,

णेन्टे 'मोहनदासन्' !

इन्नु, तज्जन्मर्षत्तिल् ,

'शान्ति ! शाश्वतशान्ति' !

एन्नु आनवर्त्तिप्पू

पारिन्नु मल्स्सन्देशम् ।

संगरव्रणितमाम्

सर्वराज्यत्तिन्टेयु—

मंगतिल् स्नेहम् पुर—

ट्टीट्टुवान् कषिञ्ञेंकिल् ;

मानवन् यन्त्रत्तिन्टे,

निर्मातावाकाम् ; यंत्र—

मावरुतवन्; स्वयम्

तीर्त्त यान्त्रिकशक्ति

इन्नु मानवात्माविन्

मारिल् निन्नलरुन्नि; —

तोन्नुयर्त्तुवान् कषि—

ञ्ञेङ्किला मनुष्यत्वम् !

पुरदाहकमाय

रौद्रनेत्रमाणोरो

परमाणुवुम्; आक्क—

ण्णेन्नालुम् तुरक्काते

हे सखि,
जाने दो वह वेदना भरी कहानी
करें हम
शत्रुओं की भी मंगलकामना।

आज का यह दिन
मेरे लिए पुण्यमय है,
मेरा धन है और मेरा प्राण है—
मोहनदास,
आज उसके जन्मदिन पर
मैं दुहरा-दुहराकर संसार को
अपना यह सन्देह दे रही हूँ :
"शान्ति ! शाश्वत शान्ति !"

काश !
मैं लड़ाई के घावों से भरे
सारे देशों के शरीर पर
प्यार का मरहम लगा पाती !
मानव जो बना था यन्त्रों का निर्माता,
वही अब बन गया है स्वयं यंत्र।
आज वह यंत्र शक्ति
जिसका निर्माण मानव ने किया,
मानव की ही छाती पर
खड़ी होकर गरज रही है।
काश !
उस अपदस्थ मनुजता को
मैं उठा पाती !
प्रत्येक परमाणु है
पुरदाहक रुद्र नयन;
मगर उस नयन को खोलने नहीं देती

अनुकम्पयाल् वाण

विश्वशक्ति तन्मुन्पिल्

मनुजन् कुनियुक्कात्त

तन्तल कुनिच्चेंकिल् !

भूविलेङ्ङुमे विट—

र्न्नेकिल् निर्मलात्मीय—

जीवितम् स्वातंत्र्यत्ति—

न्नुज्वलप्रकाशत्तिल् !

अल्ल, मत्सरमल्ल

जीवितम् यज्ञम्ताने—

न्नुल्लसिच्चखिलरुम्

कर्ममाचरिच्चेङ्किल् !

इल्ल मट्ट्ारु चिन्त—

यी महादिनत्तिकल्

"नल्लतु चराचर—

ङ्ङेळ्क्केल्लाम् भवियुक्कट्टे !"

अन्तियुम् 'जयन्ति'यिल्—

प्पंकुकोळ्ळन्नु कैयिल्

एन्तिय वेळ्ळित्तार—

त्तक्किळमेल् वेण्नूल् चुट्ट्

मामकस्वातंत्र्यत्ते—

ज्जीवितचक्रत्तिन्मेल्

आमन्दम् नूट्टुम् कोण्टु

मेवुमेन् मकन् वाष्क !

सोदरि ! पराधीन,

खिन्न, ञान् श्वसियुक्कुन्न

मोदवुम् स्वातंत्र्यवुम्,

मोहनन् श्वसियुक्कुम्पोळ् !

—१९४४

करुणामयी विश्वशक्ति;
काश ! मानव उसके सामने
अपना उद्धत शीश नवा देता !
काश !
स्वतन्त्रता के उज्ज्वल प्रकाश में
निर्मल आत्मीय जीवन
सारे संसार में
विकस्वर हो पाता !
जीवन निरी स्पर्धा नहीं,
यह है पावन यज्ञ ।
इसी भावना के साथ
सभी लोग कर्माचरण करते
कितना अच्छा होता !
आज के मंगलमय दिन
अन्य कोई भावना नहीं—
"मंगल हो सारे चराचरों का ।"

लो,
रजत तारे की तकली पर
सूत कातती हुई सन्ध्या भी
इस जयन्ती में भाग ले रही है ।
मेरी स्वतन्त्रता के सूत को
अपने जीवन के चरखे पर
निरलस होकर कातनेवाले
मेरे वेटे की जय हो !
हे वहन,
मैं पराधीन हूँ, खिन्न हूँ,
लेकिन
मेरा मोहन जव साँस लेता है तो
मैं भी स्वतन्त्रता और आनन्द की साँसें लेती हूँ ।

—१९४४

कल्क्करियुटे काव्यम्

मदपरिपाटलम् लालसिय्क्कुम्
सुदतितन् गण्डतलमुरुम्मि,
ओरु वेळिच्चत्तिन्टे कट्टपोले—
युरुळुमा लोलाक्किन् वैरमोति,
अकलेक्किटक्कुन्न कल्क्करिये—
प्पुकयुटे कुञ्ञिनेप्पोल्क्करुति :

"चिरि वरुम्; शास्त्रज्ञरज्ञनेन्नाय्
परिहसिय्क्कट्टे, सहिच्चुकोळ्ळाम् ।
इरुळिन्टे कट्टयिक्कल्क्करि, आ—
नरिय वेळिच्चत्तिन् पुंचिरियुम् ।
उलयिल्क्किटन्नु ती तिन्नु चावा—
नुलकिल्प्परन्नोरी दुर्भगनुम्,
चिल मकुटङ्ङळ् दर्प्पमायि
विलसुवान् पोन्नोरुमोन्नुपोलुम् !
विमलयाम् कण्णाटितन् करळिन्—
शमवुम् मरविच्च धीरतयुम्,
चिरिपुरण्टोरेन्टे चुण्टु कोण्टाल्—
त्तरियावु; मेन्टे सौभाग्यमोर्प्पू !"

कोयले का आदि-काव्य

सुन्दरी के
मदारुण मनहर कपोल से सट कर
झूलनेवाला झुमके का चमकदार हीरा, प्रकाश-कण-सा,
दूर पड़े हुए कोयले को
धुएँ का बच्चा समझ कर
बोला :

"हँसी आती है मुझे,
हो सकता है वैज्ञानिक मुझे अज्ञ समझें,
मेरा उपहास करें,
मैं उसे सहने को तैयार हूँ ;
लेकिन, सत्य तो यही है कि
यह है कोयला—
अन्धकार का टुकड़ा—
और मैं हूँ प्रकाश की मधुर मुस्कान।
यह दुर्भग,
पैदा हुआ है चूल्हे की चिता में
जल-जल कर मरने के लिए,
और हम जन्मे हैं दुर्लभ राज-मुकुटों को सजाने के लिए !
कैसे सत्य हो सकता है यह
कि हम दोनों एक हैं ?
विमल दर्पण के अन्तरंग की
निष्प्राण शान्ति और जड़वती धीरता
चूर-चूर हो जाती है मेरे सुस्मित अधरों का स्पर्श पाते ही ;
सोचता हूँ,
मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ।"

"मति परिहासम् ! तुट्टुम्कविळिन्—
द्युति मुकर्न्नाटुन्न भाग्यवाने !

कुनुकुन्तळत्तिन् निष़लु पटि़्ट़,
ननुननेप्पोऴ्ङुम् वियार्प्पिल् मुङ्ङि,
अरुळुमङ्ङुन्नीयवनितन्ट़ —
योरु वेरुम् वेर्प्पिन्कणिकमात्रम् ।

धरणितन् गर्भत्तिन् चूटरिञ्ञे,—
नरचन्मुर्टियिलिरियक्कानल्ल;
ललनमाऱ्तन् कविळोट्टुरुम्मि—
यलसमाय् मेळिप्पतिन्नुमल्ल ।

पेरिय मण्पुटि़्टन्नकत्तिरुन्नु
चिरतपम् चेय्त किरातनिल्ले,
वरकवि वाल्मीकि ?—या महानी—
ब्भरतराज्यत्तिन्टे जीवितत्ते,

निरुपमदीप्तियुम् चूटुमेकि—
स्सुरुचिरमाक्किनान् तन्महस्साल् ।
ओरु काटनायिप्पिऱन्नवन् आ,—
नोरुपाटु मण्णिल्त्तपिच्चवन् आन्—

अनवधि लोहमलिच्चलिञ्चि—
ट्टनघमाकुम् मषि आनोरुक्कि,
अनलन्टे नाळमाम् तूवलाले
जनततन्नाह्लादशक्तिकळक्काय्

नरनवसंस्कारवीरकाव्यम्
करुणरौद्रादिरसम् कलर्त्ति,
विविधयन्त्रत्तिन् वटिवेषुन्न,
विशदलिपिकळिल् आन् पकर्त्ति ।

अनुकरियक्कुन्नु आनामहाने;—
यनुकम्प्यनाणु नी भाग्यवाने !"

"वन्द करो यह परिहास,
अरुण कपोलों की मनोहारिता को
चूम-चूम कर झूमनेवाले हे भाग्यवान !
तुम हो मिट्टी के पसीने की बूंद
तरल अलकों की छाया में
रह कर झलकनेवाले,
किन्तु मैं हूँ वह, जिसने जानी है धरती के गर्भ की गर्मी
इसलिए नहीं कि राजाओं के सिर पर विराजूं
या ललनाओं के कपोलों का स्पर्श करूँ
अलस विलास भाव से।
याद है वह किरात,
जिसने ऊँची बाँबी के भीतर बैठ
तपस्या की थी——
कविवर वाल्मीकि—?
उस महात्मा ने ही दिया था
इस भरतराज्य के जीवन को
अपनी तपस्या का अतुल तेज और ऊष्मा,
वनाया था उसे अत्यन्त सुन्दर।
मैं जंगली हूँ वन में जन्मा हूँ,
जंगली धरती के भीतर बहुत दिनों तक तपा हूँ,
अनेक धातुओं के घोल से
मैंने यह अमल मसि तैयार की है ;
मैं अंकित कर रहा हूँ अग्नि-ज्वाला की कूंची से
विविध यन्त्रों की विशद लिपियों में
मानव की नव्य संस्कृति का
वीर काव्य—
करुण रौद्रादि रसमय,
जनता के आनन्द
और उसके अन्तरंग का वल वढ़ाने के लिए।
इस तरह मैं अनुकरण करता हूँ
उस महात्मा कवि का।
हे भाग्यशाली, तुम मेरे लिए अनुकम्पा के पात्र हो"

कोयला रह गया था मौन, किन्तु
उसके मौन में कवि ने पढ़ा यह भाव ।

"मेरी कामना है कि
धार्मिक सौम्यता
बनी रहे मानव की आत्मा का प्रतिबिंब,
क्या उसे भी भेज दिया जायेगा
निष्ठुरता के साथ वनवास में ?
और काव्य हो जायेगा शोकान्त ?
कोयले के मुख की कलौंस में
कवि ने इसी शोक का
दर्शन किया !

—१९४३

नाय्क्कन्

चूरलालटिच्चिट्ट् नगरितन्
चोर वार्न्निषुकीटुन्न पाट्पोल्
मारि कोण्ट् कुष्ञ्ञ् च्वप्पार्न्न
चोरिमण्ण् पुतञ्ञेषुम् पातयिल्,
पोवुकयाण् आन् तनिच्चेन्तिनो
नोवुमस्वस्थमाय मनस्सुमाय् ।

माळिककळिल्निन्नु केळ्क्काम् चिरि–
क्कोळिळक्कङङळ् रण्टु पार्श्वत्तिलुम् ;
नागरिकमाक्कोलुमनुराग–
रागमालपिप्पू 'स्वनग्राहि'कळ् ।

पिन्निल्निन्नुमोरु चुम केळ्क्कया–
लोन्निटय्क्कु तिरिञ्ञु आन् नोक्कवे
तन् चुमलिलोरु कुरुन्तूम्पये–
प्पिचुकुञ्ञिनेप्पोलेन्तिटुमोराळ्
चोल्लि : 'पोन्नेजमानने, काणुमो
वल्लतुम् पणि ? नाय्क्कन् वलञ्ञुपोय् ।'

आ विळि केट्टु लज्जिच्चु पोयि आन् ;
पावमेन्नेप्पणक्कारनेन्नेण्णि ।
पल्लुमात्रमुण्टोट्टातेया मुख,–
त्तेल्लुम् तोलुमाय् नीण्ट कय्त्तण्टुकळ् ।
काट्टिनोटुम् पेरुमषयोटुमो–
न्नेट्टिट्टानोरु कीर्युण्टीर्नाय् ।

नाय्क्कन्

मैं सड़क पर से चला जा रहा था,
जो थी वर्षा-जल से गीली लाल मिट्टी से लथपथ,
जैसे नगर के मुँह पर बेंत मारने से रक्त रिस आया हो;
मन अस्वस्थ था, अवसाद से भरा था।

बगल की अट्टालिकाओं से
हास-कोलाहल की लहरें आ रही थीं
आलाप रहे थे कई ग्रामोफ़ोन
नागरिक वनिताओं के वासना चपल गीत।

किसी का खाँसना सुन कर
मैं पीछे की तरफ मुड़ा—
देखा, कन्धे पर छोटा सा फावड़ा धरे,
मानो अपने छोटे से बच्चे को सम्हाल रखा हो,
एक नर पूछ रहा था;
"कोई काम मिलेगा बड़े सरकार,
नाय्क्कन्[1] बड़ी मुसीबत में है।"

उसका संबोधन सुन कर मैं लज्जित हुआ,
बेचारे ने मुझे धनी समझ लिया है।
उसके चेहरे पर केवल दाँत हैं, जो पिचके नहीं,
लम्बी-लम्बी भुजाएँ हड्डी-चमड़ी मात्र बन गयी हैं
एक फटा पुराना भीगा चिथड़ा है तन पर
भीषण हवा का, और
मूसलाधार वर्षा का सामना करने के लिए।

---

१. नाय्क्कन्—फावड़ा लेकर चलनेवाले मजदूरों का एक वर्ग जो मिट्टी खोदकर, तालाब-कूप आदि साफ करके अपना निर्वाह करते हैं।

आश हृत्तिलुम्, तेजस्सु कण्णिलुम्,
लेशमिल्लातुषलुकयाणयाळ् ।
ईविधत्तिल्प्परुपरुप्पार्न्निट्टुम्
जीवितत्तिन् पुरत्तुरञ्ञीटिलुम्
मालुरुकिप्पिटिच्चु नीरुन्नोर-
क्कोलु कत्तिज्वलिक्कात्ततत्भुतम् ।

वेलतन्निल्त्तणुत्तुरङङम् महा-
ज्वाल पेट्टेन्नु ञेट्टियुणरुकिल्,
आणुकाग्नेयगोळङङळेक्काळु-
माळिटुम् महस्सोन्नुळवाय्वरुम् ;
वीशुमाद्दीप्ति दिङमुखत्तोक्केयुम्
पूशुमारक्तमाकिन कुंकुमम् ।
हा, नटुङङुविन सौख्यजडङङळे !
वानम् चुम्बियक्कुमग्र्यसौधङङळे !

चोल्लि वेम्पुन्न चुण्टिनाल् ञान् : "पणि-
यिल्लिविटेयोरेटवुम् नायक्करे !"
चोल्लि नोवुन्न हृत्तिनाल् ञान् : "करि
ङकल्लिनेक्काळ्क्कटुत्त निलकळे
निन्कुरुंतूम्पकोण्टु नी कोरुक,
चंकु वेळअमाय्पोवुकिल् पोवट्टे,
नूतनमोरु जीवितम् पोङिङयी-
ब्भूतलत्तिल्स्समत नेटुम् वरे ।"

—१९४३

न मन में आशा रंच मात्र
न नयनों में तेज
सब कहीं चक्कर काट कर लाचार हो रहा है बेचारा !
अचरज है,
इस तरह के खुरदुरे जीवन के निरंतर रगड़ खाने पर भी
तप्त पीड़ा से भरी यह धुँधुआती तीली
जल क्यों नहीं उठती ?

यदि यह श्रमशान्त सुप्त महाज्वाल
अकस्मात् जाग उठे
तो उदय होगी एक महान ज्योति
आणव आग्नेय गोलों से भी
अधिक उग्रता से जलनेवाली;
वह ज्योति फैल-फैल कर
सारी दिशाओं के मुख पर
आरक्त कुंकुम लगा देगी।
हे गगनचुंबी अट्टालिकाओं,
हे सौख्य-जड़-जनो,
काँप उठो।

कम्पित होंठों से मैं बोला,
"यहाँ क म नहीं है कहीं, नाय्क्कन् !"
फिर कसकते कलेजे से मैं मन ही मन बोला—
"हे नाय्क्कन्
पत्थरों-सी कठोर परतों को
तुम अपने छोटे फावड़े से खोद हटाओ
जब तक कि
एक नवीन जीवन का सोता नहीं फूटता है
और, भूतल में समता का सृजन नहीं करता
अगर, तुम्हारा कलेजा ही
पानी हो जाये तो हो जाये !"

—१९४३

आश हृत्तिलुम्, तेजस्सु कण्णिलुम्,
लेशमिल्लातुषलुकयाणयाळ् ।
ईविधत्तिल्प्परुपरुप्पार्न्निटुम्
जीवितत्तिन् पुरत्तुरञ्ञीटिलुम्
मालुरुकिप्पिटिच्चु नीरुन्नोर-
क्कोलु कत्तिज्वलिक्कात्ततत्भुतम् ।

वेलतन्निल्त्तणुत्तुरङ्ङम् महा-
ज्वाल पेट्टेन्नु ञेट्टियुणरुकिल्,
आणुकाग्नेयगोळङ्ङळेक्काळु-
माळिटुम् महस्सोन्नुळवाय्वरुम् ;
वीशुमाद्दीप्ति दिङमुखत्तोक्केयुम्
पूशुमारक्तमाकिन कुंकुमम् ।
हा, नटुङ्ङुविन सौख्यजडङ्ङळे !
वानम् चुम्बियक्कुमग्र्यसौधङ्ङळे !

चोल्लि वेम्पुन्न चुण्टिनाल् ञान् : "पणि-
यिल्लिविटेयोरेटवुम् नाय्क्करे !"
चोल्लि नोवुन्न हृत्तिनाल् ञान् : "करि
ङकल्लिनेक्काळ्क्कटुत्त निलकळे
निन्कुरुं तूम्पकोण्टु नी कोरुक,
चंकु वेळअमाय्पोवुकिल् पोवट्टे,
नूतनमोरु जीवितम् पोङ्डिङ्यी-
व्भूतलत्तिल्स्समत नेटुम् वरे ।"

—१९४३

न मन में आशा रंच मात्र
न नयनों में तेज
सब कहीं चक्कर काट कर लाचार हो रहा है बेचारा !
अचरज है,
इस तरह के खुरदुरे जीवन के निरंतर रगड़ खाने पर भी
तप्त पीड़ा से भरी यह धुँधुआती तीली
जल क्यों नहीं उठती ?

यदि यह श्रमशान्त सुप्त महाज्वाल
अकस्मात् जाग उठे
तो उदय होगी एक महान ज्योति
आणव आग्नेय गोलों से भी
अधिक उग्रता से जलनेवाली;
वह ज्योति फैल-फैल कर
सारी दिशाओं के मुख पर
आरक्त कुंकुम लगा देगी।
हे गगनचुंबी अट्टालिकाओं,
हे सौख्य-जड़-जनो,
काँप उठो।

कम्पित होंठों से मैं बोला,
"यहाँ काम नहीं है कहीं, नाय्क्कन् !"
फिर कसकते कलेजे से मैं मन ही मन बोला—
"हे नाय्क्कन्
पत्थरों-सी कठोर परतों को
तुम अपने छोटे फावड़े से खोद हटाओ
जब तक कि
एक नवीन जीवन का सोता नहीं फूटता है
और, भूतल में समता का सृजन नहीं करता
अगर, तुम्हारा कलेजा ही
पानी हो जाये तो हो जाये !"

—१९४३

तूप्पुकारि

हारियल्लिवळुटे रूप, मेन्नालीत्तूप्पु—
कारितन् मलिनमाम् करत्तिन् विशुद्धत !

इप्परीमुखत्तिङ्कल्—
ञ्चितरिक्काणाकुन्न
चप्पुकळ्, चवरुकळ्,
अळिञ्ञ शवङ्ङळुम्,
नूतनदिनत्तिन्टे
चेकतिर् चुम्बियक्कुन्न
पूतमाम् पुरिकत्तिल्
वेर्प्पुकळ् पोटियवे,
तन् करत्तिनाल् वार्न्नु—
केट्टिय चूलाल् पात—
यिंकल्निन्नकट्टुन्नू
तेरुविक्किळिक्कोळ्के ।
नन्नयि; सहोदरि,
नन्नु; निन्पुरिकत्तिल्
मिन्नुमी मुत्तिल् नरुम्
पोटिकळ्क्केलुम् कान्ति
माळिकप्पुरत्तेषुम्
कोञ्चम्ममार्तन् हार—
पाळिकळ् कोतियक्कणम्,
जनसेवनव्यग्रे !
तूलिकत्तुम्पाल् म्ळान—
चित्रत्ते मनोधर्म्म—
शालियामोरु कला—
कारियेन्नतुपोले,

झाड़ूवाली

उसके गठन में कोई खास आकर्षण नहीं,
फिर भी उस भंगिन के गन्दे हाथों में
कितनी पवित्रता है !

पलकों पर उभर आयी हैं पसीने की बूंदें
जिनका स्पर्श कर रही है
प्रभात की
नवल स्वर्ण-रश्मियाँ,
वह बुहारती फिरती है सड़कें
अपनी झाड़ू से,
जिसे उसने
अपने हाथों काटा-बनाया है,
बुहारती फिर रही है कूड़े के ढेर,
गलित अवशेष,
जो महानगर के चेहरे पर
धब्बों की तरह चिपके हैं।
धन्य, बहन, धन्य !
तू डूबी है आ प्राण जन-सेवा में;
तेरी भँवों पर दमकते
स्वेद-बिन्दुओं की आभा के सामने,
फीकी पड़ जाती है आब
शाही महलों की महिलाओं के हीरक-हारों की।
तूलिका की नोंक से
एक नाजुक तस्वीर को सँवारते हुए
प्रतिभावान कलाकार की तरह

पुतुक्कि मिनुक्कि नी
पट्टणम्; पुरीमुख—
मतुलारोग्य श्रीतन्
कैय्क्कोरु वाल्क्कण्णाटि !

वन्नु नी पिऱन्नेङ्किल्—
क्कवितन् हृदन्तत्ति—
लेन्नुमुत्तमस्निग्ध—
भावनारूपम् नेटि !
वन्निनिज्जनिच्चेङ्किल्
मार्ज्जनि कवियुटे—
युन्नतादर्शम् कोऱम्
तूवलाय् सत्यम् तेटि !
जीवितम् विषमय—
मावुमाऱ् न्तेन्तेल्लाम्
आविलविकारङ्ङळ्,
जीर्ण्णिच्च विश्वासङ्ङळ्,
जनमर्द्दनत्तिन्ऱे
कऱ्युम् कण्णीरिन्ऱे
ननवुम् मीते कोलु—
मिरुम्पन्चेंकोलुकळ्,
तङ्ङळिल्त्तल्लिक्कीरि—
यान्ध्यत्तिन् चेऱाल् नारि
मङ्ङलान्नीट्टुम् जीर्ण्ण—
मतत्तिन् कुप्पायङ्ङळ्,
नीतितन् चालिन् वक्किल्
स्वार्थत्तिन् पुट्टुण्टाक्कि
प्रीतियिल्च्चुरुण्टेषु—
मिरुण्टमात्सर्यङ्ङळ्—
ई वकयेल्लाम् पक्षे
नी कळञ्ञेने, निन्ऱे
तूवालाल्त्तेळिञ्ञेने
जीवितत्तेरुवुकळ् !

तू शहर को नयी दमक से सँवार रही है;
यह नगर का चेहरा
अनुपम स्वास्थ्य-श्री के हाथों में
एक आईने-सा है।

काश,
तू उत्पन्न हुई होती कवि के हृदय में
अत्युत्तम स्निग्ध भावना का रूप लेकर,
काश,
तेरी झाड़ू जन्म लेती
कवि की आदर्शमयी क़लम के रूप में,
तब तूने झाड़-बुहारकर
कूड़े की तरह फेंक दिया होता
इस विषम जीवन को,
ढहते हुए विश्वासों को
घुटती हुई भावनाओं को,
पीड़ित जनों के
आँसुओं की नमी को,
संघर्ष की थाप पर बजती हुई
लौह-कड़ियों को,
एक-दूसरे पर उछाले जानेवाली
अन्धी कीचड़ को,
ह्रासोन्मुख धर्म के
कमजोर और धुँधलाये
लिबास को,
न्याय की धारा के कगार पर निर्मित--
स्वार्थपरता के दड़बों में
दुबकी प्रसन्न-मुख
अन्ध-ईर्ष्याओं को;
और तब, तुम्हारी लेखनी से
स्वच्छ और स्पष्ट हो गया होता
जीवन-पथ !

मलिनविकारङ्ङळ्
गानत्तिन्नूक्केर् इटु—
मोलिविल्क्कूटिच्चुट्ट्टुम्
चालुकळ् निकन्नेने !

चोरतन् निरम् तिन्न
धूळि पोङ्ङाते स्नेह—
पूरत्ताल् ननच्चूर्—
प्पिच्च कालत्तिल्क्कूटि,
चक्रवाळत्तेत्तन्कै—
विरलाल्च्चुटि्ट्टच्चूमको—
ण्टक्रमङ्ङळ् क्रूर—
मुनयाल् नोवेल्क्काते,
मानवन् समुन्नत—
शिरस्साय् पाटिप्पोकु
मानन्दमाणानन्दम् :
पारतु नुकर्न्नेने !

हारियल्लिवळुटे रूप, मेन्नालीत्तूप्पु—
कारितन् मलिनमाम् करत्तिन् विशुद्धत !

—१९४४

छितरा जाते वासना की गन्दी धारों के भँवर,
और प्रवाहित हो उठती गीतों की सुन्दर
स्वर-लहरियाँ ।

तब न उठती धूल
जो सोख गयी रक्त की लाली को
क्योंकि सींच दिया गया होता काल-पथ स्नेह-जल से
और बना दिया गया होता वह सुदृढ़ ।
चल सकता तब मानव
हिंसा के क्रूर अपराधों से बचकर
सीना ताने, सिर ऊँचा किये
उँगलियों पर क्षितिज घुमाता हुआ ।
आनन्द तो वही है परमानन्द,
काश, धरती उसे चख पाती !

उसके गठन में कोई खास आकर्षण नहीं,
फिर भी उस भंगिन के हाथों में
कितनी पवित्रता है !

—१९४४

कल्विळक्कॅ

१

पेरियार् चालक्कुटि–
  यारुमायिणचेर्न्नु
पुरुफुल्क्कारत्तोटे
  पुळञ्ञुमरियुन्नु ।
कोटक्कार्च्चिरकुकळ्
  विर्त्तिक्कोट्टुंकाट्टु
नाटोक्केक्कुलुक्किक्को–
  ण्टत्युग्रम् परक्कुन्नू ।
अरयोळवुम् वेळ्ळ–
  त्तिलाण्टोरु तेङ्ङिन्–
निरयात्तुरत्तिंकल्–
  प्पेटिच्चु विरय्क्कुन्नु ;
वा पिळर्न्नषिमुख–
  त्तिङ्कल् वन्नार्त्तीटुन्नू
कोपिय्क्कुम् वर्षोद्दृप्त–
  भीकरपारावारम् :
कायलाम् नेट्टुन्तुट्टु–
  नावुनीट्टियास्सत्वम्
वायिलाक्कुन्नू नीळे–
  योषुकुम् शवङ्ङळे ।
इङ्ङनेयोरु वेळ्ळ–
  प्पोक्कमुण्टायिट्टिल्ल
अङ्ङळ्तन् स्मरणयिल् ;
  मरविच्चुपोमोर्त्ताल् ।

पत्थर की दीपदानी

१

पेरियार[1] चालक्कुटियार[2] से मिल कर,
लिपट-लिपटकर
उग्र फूत्कार के साथ
मदोन्मत्त लीला कर रही है।
काले वरसाती वादलों के
पंख फैलाकर
सारे देश को झकझोरता हुआ
भयानक तूफ़ान मँडरा रहा है।
नदी-तीर के छोटे टीले पर
कमर तक डूवे हुए
नारियल के पेड़
भय से काँप रहे हैं।
वर्षा-काल का क्षुभित डरावना सागर क्रुद्ध होकर
मुँह वाये नदी-मुख पर आकर
उन्मुक्त अट्टहास कर रहा है,
लपलपा कर
कायल[3] की लम्वी-लम्वी लाल-लाल जीभ
निगल रही है चारों ओर वहनेवाली
लाशों को।
ऐसी भयानक वाढ़ हमारी स्मृति में
आज तक कभी नहीं उमड़ी,
उसकी याद आते ही
प्राण सुन्न हो जाते हैं।

१, २. केरल की दो नदियाँ
३. समुद्र का वह भाग जो किनारे से अन्दर चला आया हो।

मारियोन्नटङ्ङवे
'करुणन्' कुटिल्वातिल
चारियाप्परम्पिले–
य्क्करङ्ङी निरुन्मेषम् ।

इल्लिवन्नारुम् ; तन्टे
जीवनिलाशानाळम्
तेल्लिट कोळुत्तिय
तय्यलाळ् मण्णाय्पोयि !

आ मुखम् स्मरिय्क्कुम्पोळ्
चुट्टुकण्णीर् कण्णिल्–
त्तूमुत्तुपोले वन्नु–
निरयुम् मिक्कप्पोषुम् ।

मीन्पिटिय्क्कानाय् पोकान्
चेरुवंचियिल्क्केरि–
त्तान् पिटञ्ञोरुङ्ङुम्पो–
ळुम्मवेय्क्कुवान् विट्टाल्
वलयुम् पङ्कायवुम्
नल्कातेयोरोन्नोति
निलकोळ्ळुमा रूप–
मोर्त्तवन् नेट्टुवीर्क्कुम् ।

कूम्पिय मिषियोटे
तन्टे चुम्वनम् कविळ्–
क्कूम्पिलेल्क्कलुम् कय्या–
लरियातवळ् माच्चु ।

नीरसम् भाविच्चाणु
तोणिनीक्कियतेत्र
नेरमाक्कुट्टत्तिनु
माप्पवळपेक्षिच्चु ।

२

जब बारिश ज़रा थम गयी
तो अपनी झोंपड़ी का द्वार बन्द करके
निरुत्साह हो कर
करुणन बाहर अहाते की ओर निकला।
उसका कोई भी अपना नहीं,
थोड़ी देर के लिए जिसने उसके प्राणों में आशा का
दीपक जलाया वह तरुणी चली गयी थी।
जब कभी उस चेहरे की याद हो आती
तो उसकी आँखों में
मोती-से अश्रुकण उभर आते।
जब मछली पकड़ने के लिए वह निकलता
और,
नाव में बैठ जाता
और भूल जाता उसे चुम्बन देना
तो आशान्वित हो कर, वह रोक लेती उसका
डाँड़ और जाल,
इधर-उधर की बातों में उसे उलझाये खड़ी रहती।
उस मूर्ति की याद कर वह
उसाँसें भरता था।
मीलित नयनों से
जब कभी
अधखुली आँखों;
अपने कपोल पर लगा चुम्बन
वह पोंछ देती हाथों से
बिना ध्यान दिये;
तो रोष का बहाना करके
वह अपनी नैया ले कर आगे बढ़ जाता।
इस अपराध के लिए
वह कितनी-कितनी देर तक माफी माँगती।

कुम्पळक्कुरुपोले
वेण्मयेऱ्िट्टुम् पल्लिन्
तुम्पु काणुमारुळ्ळ
नरुपूंचिरियोटे
कायलिन् वक्कत्तन्ति–
य्क्केतिरेल्क्कुवान् करि–
ञ्चायलाळ् वरारुळ्ळ–
तोक्कुम्पोळ्क्करळ् वीङ्ङम् :
पाय कीरियुम् कयऱ्
पोट्टियुम तुष़यिल्ला–
ताय वंचियाय्प्पोय् आ–
नेन्नवन् विचारिय्क्कुम् ।

ओमलिन् श्मशानत्तिल्–
क्कल्विळक्कोन्नुण्टाक्कि
प्रेमविह्वलन् तिरि–
वय्क्कुमाऱुण्टन्नाळुम् ।
अन्तियिल् विरियुन्न
रागत्तिन्मोट्टेन्नोणम्
कान्तिमत्तामा नाळम्
मिन्नुमाऱुण्टेन्नाळुम् ।
क्रूरमाम् वेळ्ळक्कुत्तिल्–
क्करुणन्नेल्लाट्टिट्टलुम्
सारमामतुकूटि
योषुकिद्दूरेप्पोयी ।
वाटिय मुखत्तोटा–
क्कल्विळक्केङ्ङाणेन्नु
तेटिक्कोण्टवन् चेन्नू
कायलिन् क़रिञ्चुण्टिल् ।

कुम्हड़ के बीज की तरह वह मनोरम धवल
दन्त-पंक्ति की मधुर मुस्कान के साथ
सन्ध्या समय 'कायल' के किनारे
स्वागत करने के लिए
वह सुकेशिनी आया करती थी।
उसकी याद आते ही
कलेजा फट-सा जाता है।
वह सोचा करता है
कि मैं भी एक नाव हूँ
जिसका पाल फट गया है,
पतवार टूट गयी है,
डाँड़ कट गयी है।

प्रिया की समाधि पर
पत्थर की दीपदानी बना कर
वह प्रेम-विह्वल
हर दिन बत्ती जला देता था।
सन्ध्या में खिलनेवाली
अनुराग-कलिका की भाँति
वह कान्तिमय दीप-शिखा
हर दिन वहाँ चमका करती थी।
जो 'करुणन' के लिए
सब से सारपूर्ण वस्तु थी,
बह गयी थी
'कायल' के काले अधरों में
वह खोजने लगा म्लान-मुख,
अपने पत्थर की दीपदानी!

अक्करेत्तुरत्तिल्नि–
नन्नेरम् केळ्क्काम् कोषि
"कोक्करक्को" वेन्नार्त्त–
स्वरत्तिल्क्कुम् शब्दम् ।

चीट्टिट्टुम् मलवेळ्ळम्
मुक्कालुम् विषुङ्ङिय
चेट्टप्पाष्क्कुटिलिन्टे
विरय्क्कुम् मोन्तायत्तिल्
मरणम् मारिल्क्केरि–
नक्कुवानारंभिय्क्कु–
मिरपोल् विळरिय
दीनमायोरम्मूम्म
इनियुम् तनिय्क्कुळ्ळ
मुतलामप्पूवने–
क्कनिवाल् विटातेक–
ण्टेकयाय् निन्नीटुन्नु ;
ओच्च पोङ्ङुन्नीलोन्नु
करयाना वृद्धय्क्कु,
वाच्च वन्तणुप्पिनाल्
मरविच्चुपोय् नावुम् ।

करुणन् चुट्टुम् नोक्की,
मृत्युविन् मिषिपोले–
युरुळुम् चुषिकळे
तन्मुन्पिल् काण्मानुळ्ळु ;
कुन्नुकळ् नृत्तम् चेय्तु
पोकुन्निपोले पोङ्ङि
वन्नुकोण्टलरिट्टु–
मोळमे काण्मानुळ्ळु ;

सुनायी दी तभी
टीले के उस पार
दीन स्वर में एक मुर्गे की कुकड़ूकूँ।

एक ग़रीब बुढ़िया, पीतवर्ण
बैठी हुई थी, दुबकी,
छाती पर चढ़ आयी मौत के शिकार-सी
पानी में हिलोरें खाती हुई
अपनी झोंपड़ी की छत पर
जो फुफकारती पहाड़ी नदी की
धारा के मुँह में समाने से
बाल-बाल बची हुई थी ;
उसने स्नेह से चिपटा रखा था
अपनी एकमात्र सम्पदा,
अपने मुर्गे को।
वह बुढ़िया रोने के लिए भी
आवाज़ नहीं निकाल सकती थी,
तेज़ सरदी के कारण
उसकी जीभ जड़ बन गयी थी।

करुणन् ने चारों तरफ देखा
मौत की आँखों-जैसे
चक्करदार भँवर ही
सामने दिखाई दे रहे थे ;
नाच-नाच कर आगे बढ़नेवाले पहाड़ों-जैसी
बड़ी-बड़ी लहरें,
ज़ोर-शोर से उछलती
सामने दिखाई दे रही थीं ;

वानिन्टे कूटारत्ते
नूरुनूरायिच्चीन्तुम्
वात्यतन् भयंकरा–
रावमे केळ्क्कानुळ्ळु ;
चेन्नुटन् तन्कोलायिल्–
च्चेरिञ्ञु किटक्कुन्न
तन्नुटे चेरुवंचि–
योटवन् तिरिच्चेत्ति ।

कुरुपंकायम् तोळिल्
वच्चु तन्मुण्टोन्नाञ्ञु
मुरुक्किक्कुत्ति क्षणम्
तोणियिलवन् केरि ।
'ओन्नुकिल् नाम् रण्टाळुम्
कटलि, लतल्लेङ्कि–
लिन्नु रक्षियक्कामारु–
मिल्लात्तक्किषवियें'
तोषर्.तन् पलपल
साहसम् पण्टुम् कण्ट
तोणियत्तिरकळिल्–
क्किटन्नु तलयाट्टि ।
ऊतिटुम् कोटुंकाट्.टल्–
प्पोतुम्पिन्नोप्पम् पाळि–
प्पातिदूरवुम् वंचि,–
योळत्तेक्कूट्टाक्काते,
कायलिन्नुन्मादत्ते
मुन्पेङ्ङुम् मानियक्कात्त
नायकन् तनियक्कुण्टे–
न्नुळ्ळोरा नाट्यत्तोटे,
कटन्नेंकिलुम्, नाल–
ञ्चोळङ्ङळोन्निच्चेत्ति–

आसमान के तम्बू को
सौ-सौ टुकड़ों में फाड़ डालनेवाली
आँधी की भीषण गर्जना ही
सुनाई दे रही थी।
वह जल्दी-जल्दी चल पड़ा
और बरामदे में तिरछी पड़ी
अपनी नन्हीं-सी नैय्या को ले कर
लौट आया।

छोटा-सा डण्डा कन्धे पर रखकर
लुंगी कसकर बाँधे
वह तुरन्त नाव में बैठ गया।
"या तो हम दोनों विलीन होंगे समुद्र में
या हम बचा लेंगे उस असहाय बुढ़िया को!"
जानती थी नैया पहले से ही
अपने साथी के साहस को,
अतः उसने लहरों में
सिर हिलाकर हामी भरी।
फूत्कार करनेवाले तूफान में
लहरों की परवाह न करके
झट से वह नैया आगे बढ़ी।
जानती थी वह
'कायल' के उन्माद की
जिसने
कभी परवाह न की
वह नायक मेरे साथ है।
नाव आधी राह ही पार कर पायी थी
कि
चार-पाँच लहरें एक साथ आगे बढ़ीं

त्तटञ्ञु मरिय्क्कयाय्

तुषयेग्गौनिय्क्काते ।

नेंचुरप्पोटापत्तिल्

नीन्तुमा युवाविने

वञ्चुषियोषुक्किन्ट

वालिनाल् वरिञ्ञुटन्

वलिच्चु वलिच्चु तन्

वायिलाक्कुम्पोळव–

नलिवार्न्नम्मूम्मय्क्कु

भाग्यमिल्लेन्ने चोल्ली !

इरङ्ङी मलवेळ्ळम्

कण्णुनीरोटिक्काष् च

परवाना मुत्तश्शि

पिन्नेयुम् चिरम् वाणाळ् ।

कायलिन् वक्कत्तेरे–

क्कालमा युवाविने–

क्कात्तुतान् किटन्निता–

क्कल्विळक्कनाथमाय् !

—१९४६

और डाँड़ की परवाह किये विना
उसको उलट दिया।
इस विपत्ति की घड़ी में
धैर्य के साथ तैरनेवाले उस नौजवान को
भयानक भँवर जव
लहरों की पूँछ में लपेटकर
खींच-खींचकर अपने मुँह में निगलने लगा
तो दयार्द्र होकर वह केवल यही वोला—
"नानी का भाग्य खोटा है!"

वाढ़ उतर गयी,
और नानी जीती रही, नयनों में आँसू लिये
यह कहानी सुनाने के लिए।
'कायल' के किनारे
पत्थर की वह दीपदानी
वहुत दिनों तक पड़ी रही
उस युवक की प्रतीक्षा में।

—१९४६

आ सन्ध्य

आरेयो विचारियक्के,—
तुटुक्कुम् कविळुमाय्
दूरेयाद्दिक्किन् वक्क—
त्तिरियक्कुम् सन्ध्यालक्ष्मि
तुन्नुवान् ञेरिञ्ञिट्ट
नीलमाम् दुकूलम्पोल्
मिन्नुन्नू तिरकाळाल्—
च्चुळियुम् पारावारम्;
चेलुलाविटुम् ञेरि—
यक्ककमेकूटिप्पट्टु—
नूलुकळोटियक्कुम्पोल्
रश्मिकळ् तिळङ्ङुन्नु।

पाञ्ञितेन् करळुटन्
पत्तुकोल्लत्तिन्मुन्पु
माञ्ञुपोयोरु रंग—
त्तिकलेयक्करियाते।
अन्नु हा! तुळुम्पुन्नो—
रनुरात्तिन् पात्र—
मेन्नुटेयात्माविन्टे
चुण्टुप्पियक्कुम् कालम्;
चिन्तयिललौकिक—
संगीतमूरुम्मारे—
न्नन्तरंगत्तिल् स्वप्नम्
वीण वायियक्कुम् कालम्;

वह सन्ध्या

दूर
पश्चिमी दिशा के किनारे पर
किसी की प्रतीक्षा में
सन्ध्या-लक्ष्मी बैठी थी,
स्नेहोन्मद् विचारों के कारण
उसके कपोल आरक्त हो रहे थे,
जैसे उसने फैला दिया हो नील दुकूल
कशीदाकारी के लिए,
इस तरह झलमला रहा था सागर
लहरों की सलवटों-भरा।
हिलोरें लेती हुई तरंगों के भीतर
किरणें इस तरह चमक रही थीं
मानो तह किये हुए कपड़े के भीतर से
रेशम का धागा काढ़ा जा रहा हो।

अकस्मात् मेरा मन
दस वर्ष पहले घटी
विस्मृत घटना की तरफ दौड़ पड़ा—
कैसे थे वे दिन
जब मैं अनुराग का लबालब भरा प्याला लगा रहा था
अपनी आत्मा के अधरों से !
वे दिन
जब मेरे अन्तरंग में सपनों की बीन
इस तरह बजती थी
कि चिन्तन में अलौकिक संगीत की
धारा फूट निकलती थी !

ओमलिन् कुनुच्चिल्लि—

विल्लिन्मेल् स्वर्गत्तिन्टे—

या मनोहरनील

गोपुरम् काणुम् कालम् ।

अन्नु ञानितुपोले—

युळ्ळोरु सायाह्नत्तिल्—

च्चेन्नु भद्रतन् वीट्टिल्—

प्पतरुम् कालवेप्पोटे ।

लोलमामोरीर्क्किळि—

क्करमुण्टाणेन्नोमल्

मेलणिञ्ञिरुन्न, ता

क्कर ञानोर्म्मिक्कुन्नु ।

चम्पकांगितन् नेट्टि्ट्—

त्तटत्तिल् प्रकाशिच्चू

कुम्पळक्कुरुपोले

चन्दनच्चेरुगोपि ।

पातियुमेन्पेर्ऱुन्नि—

त्तीर्न्न पट्टुरुमालु

पाययिलिक्कटक्कुव—

तेटुक्कान् कुनियवे

आतिथेयितन् तिटु—

क्कत्तिनाल् नीलक्करिम्—

चायल् केट्टषिञ्ञून्नि—

ट्टोषुकी तोळिल्क्कूटि ।

पूंचिकुरत्तेक्कैयाल्—

प्पिन्निलेय्क्काक्किच्चुण्टिल्

प्पुंचिरियमर्त्तिक्को—

ण्टिळकुम् मिषियोटे

ओमलाळ् निवर्न्नप्पोळ्

निर्द्दयसदाचार—

भीमशासनमेन्टे

कैयुकळ् मरन्नुपोय् ।

वे दिन
जब मैं प्रिया के भ्रू-चाप में
स्वर्ग के रम्य नील-गोपुर का दर्शन करता था !
हाँ, उस दिन
ऐसी ही एक सन्ध्या में
'भद्रा' के घर
मैं पहुँच गया आकुल पग धरता।
मेरा मन
अब भी याद करता है
उस परिधान की काली पतली किनारी को
जिसे मेरी प्रियतमा
उस दिन पहने थी।
उस चम्पकांगी के मनोरम भाल पर
कुम्हड़े के बीज-सा
मनोहर चन्दन-तिलक सुशोभित था।

जब वह झुकी
चटाई पर पड़ा
रेशमी रूमाल उठाने के लिए,
जिस पर
अंकित हो चुका था मेरा आधा नाम
तो उस सकपकायी आतिथेया की
कजरारी वेणी खुलकर
कन्धे पर से खिसक गयी।

सुरभित मनोहर केश-गुच्छ को
पीछे की ओर समेटती
खिल आनेवाली मुसकान को दबाती
चंचल चितवनवाली
प्रिया खड़ी हो गयी
तो,
हृदयहीन सदाचार का शासन भूल गये
मेरे दोनों हाथ ;

'चापलम् ! विटु ! वरुम्
वल्लोरुम्, हाय !' एन्नोतुम्
कोपनयुटे चुण्टेन्
चुण्टिनालमर्न्नुपोय् ।
मावु निल्क्कुन्नू मुट्ट—
त्तटितोट्टट्टत्तोळम्
पूवुमाय् तारम्पन्ट्—
यावनाषियेप्पोले ।
कूवियो कुयिल् ? इळम्—
तेन्नल् वीशियो ? कण्टो
द्योविलेङ्ङानुम् निन्न
तारकळ् ?—अरिञ्ञील !

पकलो पायुम् वेळळ्—
क्कुतिरप्पुरत्तेरि—
यकलुम्नेरम् वेळ्ळि—
प्परिच तोळिल्त्तूक्कि,
सागरस्नानम् चेयतु
रागमुग्धयायोट्ट—
य्क्कागमिच्चीटुम् सौम्य—
सन्ध्ययेप्पुल्किप्पोयि ।
पुरीकन्तुम्पालेन्ट्
चित्तत्ते वीण्टुम् वीण्टुम्
वरियेब्बन्धिच्चिट्टु
कण्णिनालेयताळोमल् ।
एङ्ङने मारुम् ? नीङ्ङुम् ?
अनङ्ङुम ? पुळकम् पू—
ण्टङ्ङने कुरुच्चिट
निन्नुपोय् रण्टात्माक्कळ् ।

"कैसा चांचल्य है; आ जायेगा कोई
छोड़िये मुझे!"—कुपित भ्रूभंगिमा से
बरजनेवाली के अधर
मेरे अधरों से जुड़ गये!
आँगन में खड़ा था
नख-शिख मंजरी-विभूषित
आम्र काम-तूणीर-सा।
क्या कोयल कूक उठी?
मन्द बयार चल पड़ी?
गगन के तारों ने देख लिया?
नहीं जानता!

दिन चला गया—
त्वरितगामी धवल तुरग पर चढ़कर
रजतमय ढाल को पीठ पर लटकाकर
सागर-स्नान करके
एकाकी चली आनेवाली
सौम्य सन्ध्या का परिरम्भण करके।
प्रिया ने मुझे
भ्रू-लताओं से कसकर बाँधा
और कनखियों से
निपट बेधा।
कैसे हटूँ?
कैसे चलूँ?
कैसे हिलूँ?
वैसी ही खड़ी रह गयीं
दो आत्माएँ थोड़ी देर,
पुलकित होकर।

अन्नु ञान् मटङ्ङुम्पोळ्
माविन्टे पिन्पे नोक्कि
निन्नु पुंचिरि तूकी
साकूतम् शशिलेख ।

'आतिर' निलावुक—
ळेत्र ञान् कण्टू पिन्ने;
प्रीतिदङ्ङळाणेल्लाम्;
एंकिलुमतु वेरे ।
स्नेहत्तिन्नधीशाधि—
कारत्ते लंघियक्काते
गेहत्तिलोरम्मयु—
मच्छनुमा, यिक्कालम्
क्लेशवुम् विषादवुम्,
वषक्कुम् वीण्टुम्, प्रेम—
पेशलस्वैराश्लेष—
सन्तोषङ्ङळुमायि
मेवुन्नतत्यानन्दम्—
तन्ने; येन्नालन्नेन्निल्—
त्ताविन हर्षोन्मादम्
पोयि ! पोयास्सन्ध्ययुम् !

—१९४६

उस दिन
मैं जब लौटा
तो आम्र-शाखाओं की आड़ में खड़ी शशिलेखा
भेद-भरी मुस्कुरा रही थी।

उसके बाद
कितनी बार देखी है मैंने
आर्द्रा की चाँदनी
निश्चय ही आनन्द-दायिनी है,
किन्तु उस दिन की चाँदनी
कुछ और ही थी।
आज
हम माता-पिता बने हैं,
नहीं करते हैं प्रेम के एकान्त शासन का उल्लंघन;
व्यतीत होते हैं दिन
क्लेश, विषाद, और कहा-सुनी में,
अनुराग-डूबे मनचाहे आलिंगन के उल्लास में।
यह भी निश्चय ही अत्यन्त आनन्ददायक है!
किन्तु
चली गयी है वह सन्ध्या,
चला गया है वह हर्षोन्माद!

—१९४६

वन्दनम् पर्युक !

वंदनम् पर्युक, भारतांबिके, दैवम्—
तन् दयक्कहिंसतन् असिधारयिल्क्कूटि,

दूरदुष्कर यात्र निर्वहिच्चिता, दीना—
कारयायालुम् रक्तम् मेय्यिल् निन्नोलिच्चालुम्

इन्नले प्पुच्छम् पूण्ट राज्य लक्ष्मिकळ् वन्नि—
न्नुन्नतात्भुतस्नेहमधुरम् पुणरवे,

मंगळस्वातंत्र्यत्तिन् उज्ज्वलोज्ज्वलमाय
मंजुळप्रभाततिलविटुन्नेत्तिच्चेर्न्नू

प्राचियुम् प्रतीचियुम् जयारवम्
वीचियायुयर्न्नेत्ति मुक्कुन्नु हिमवाने;

पौरर् तन् हृन्नीडतिल् निन्नुयर्न्नानंदङ्ङळ्
सौरमार्गत्तिल् चेल्वू कोटितन् चिर्किन्मेल् ।

रक्तदाहमार्न्नोरु साम्राज्यसिंहत्तिन्टे
शक्तवुम् कुटिलवुमायिरुन्नताम दंष्ट्र

काणुक, कोषिञ्ञता किटप्पू निर्म् मङ्ङ—
त्ताणुपोम् चन्द्रक्कल पोलेयीपुलरियिल्

इरुळिल् त्तिळङ्ङिय कण्णुकळ्, चरित्रत्ति—
न्नरुकिल् काणाम् मायुम् रण्टु तारकळ् पोले ।

शतशः धन्यवाद !

करुणामय की करुणा को शतशः धन्यवाद !
हे जननि ! अहिंसा की असिधारा पर पग धर
दुष्कर यात्रा का पूर्ण, श्रमित-पद, क्षाम, क्षीण,
अंततः रक्त-पंकिल गात्रे ! तू पहुँच गयी
उस ओर जहाँ मुस्काता है
उज्ज्वल स्वतंत्रता का मंजुल मंगल प्रभात !
सारी वसुधा आनन्दलीन
हैं गूँज रहे स्वागत में हर्ष-विकल कल-कल
उल्लसित पूर्व-पश्चिम के ये गोलार्द्ध युगल
दाएँ-बाएँ उठ रही जयध्वनि की तरंग,
उन्नत हिमाद्रि का भाल भीगता जाता है।
उठ रहा तिरंगा आच्छादित कर सौर-मार्ग
जागृत जन-मन में ऊर्ध्वगमन की अभिलाषा
जनता के हृदय-पिण्ड से कढ़ आनन्द-विहग
ऊपर झण्डे के पास पहुँच मँडराते हैं।
वह उधर क्षितिज के पास अधोमुख कान्तिहीन
जो डूब रही है मन्द प्रभा,
वह नहीं चन्द्र की कला;
कुटिल शोणित-पिपासु साम्राज्यवाद की दंष्ट्रा है।
ये दो तारे जो दीख रहे हैं अस्तमान,
आँखें वे उसी दनुज की हैं अंधियारे में डूबी प्रकाश की कणिकाएँ
इतिहास-गर्त में पड़े हुए अंगारों-सी।
कल तक जो हँसी उड़ाती थीं, तुझको पीड़ा पहुँचाती थीं,
वे राजलक्ष्मियाँ आज चकित, विस्मित, विभोर
घर-घर से बाँह बढ़ाती हैं,
तुझको अपनी अग्रज मान फूलों के हार पिन्हाती हैं।

निन् मुग्धमाकुम् कालिल्, सटयाल् परुषमाम्
तन्मुखमुरुम्मिक्कोण्टा वृद्ध सिंहम् निल्पू ।

वन्य नीतिकळतु केवलम् मर्क्कुमो !
धन्यमाम्निन् सौहार्द्दमेन्नेन्नुम् पुलर्त्तुमो ?

वन्दनम् पर्युक, धर्मपालिके, दैवम्—
तन् दयक्कानंदाश्रुगद्गद्गदस्वरम् ।

पावने, पौरस्त्यमाम् दिङ्मुखम् तुटुक्कुन्नू
तावकस्वातंत्र्यत्तिन् स्वच्छमामुदयत्तिल् ।

एन्तितिङ्ङने शोणशोणमाकुवान् ? ओर्त्ताल्
निन्तिरुवटियुटे हृदयम् तकर्न्नुपोम् ।

इन्नलेत्ति रुवुटल् वरियेच्चुट्टिट्च्चुट्टि,
अन्नेटुम्कषुमर्त्ति कल् नावुकळाट्टि

आयिरम् करितुरुकर्यिल्वकूटित्तन्टे
वायिटक्किटेक्काट्टिप्पुळयुम् स्वेच्छातंत्रम्

विषुङ्ङि ॲेरिच्च निन् प्रिय पुत्रर् तन् रक्त—
मोषुकि नुरक्कयाणिप्पोषुमतिन् पिन्पे

ग्रामवुम् नगरवुम् वयलुम् काटुम् मेटु—
मा महाधीरन्मार् तन् विटरुम् स्मृतिकळाल्,

अवतन्नितळुकळ् वीशिटुम् वर्ण्णङ्ङ्ळाल्,
अवयिल्त्तिङ्ङुम् त्यागोन्माद सौरभङ्ङ्ळाल्,

इन्नु कोळ्मयिर् क्कोळ्वू; निन् कण्णिल् निन्नुम् रण्टु—
मून्नु निर्म्मलस्नेहानुग्रहकणिककळ्

पूतमाम् स्वातंत्र्यत्ते श्वसिक्कान् जीविक्कात—
ज्ञातराय् वीणावीरपुत्ररिल् पोषिञ्ञावू

वन्दनम् पर्युक, वीरमातवे, दैवम्—
तन् दयक्कभिमानदीप्तमामात्मावोटे !

माँ ! देख, मुग्ध यह जीर्ण सिंह
कैसे चरणों से सटा खड़ा
तेरे पद को निज जिह्वा से सहलाता है।
पर हाय कहीं यह वन्य जीव
रक्ताक्त जिघांसा को तजकर
करता भारत का शील ग्रहण
बन पाता तेरा अमिट मित्र !
करुणामय की करुणा को शतशः धन्यवाद !
हे धर्मपालिके, परम पावनी माँ ! तेरे
सौभाग्य-उदय से यह कैसी लाली छिटकी,
संपूर्ण पूर्व-जग का आनन जगमगा उठा,
है कहाँ आज वह स्वेच्छाचारी कुटिल तंत्र
अंध काल-कक्षों के भीतर जीभें खोल,
अथवा फाँसी के तख्तों पर फण फुला-फुला,
तेरे निरीह पुत्रों का शोणित पीता था ?
हो गये तिरोहित काल नाग,
हो गये तिरोहित माँ, तेरे वे वीर तनय
जिनके शोणित से भाग्य देश-भर का जागा,
पर हाय,
जिन्होंने स्वाधीनता नहीं देखी।
उन वीर हुतात्माओं की स्मृति के रुचिर फूल
उन धीर शहीदों की पंखुड़ियों की लाली,
उन अजय योगियों के जीवन की त्याग-सुरभि,
ये मिटे नहीं, ये सभी अभी भी जीवित हैं।
उनसे ही तो सुरभित हैं अपने ग्राम-नगर,
उनसे ही तो शोभित हैं ये वन-विपिन-खेत,
भुज उठा खड़े हैं उनकी पूजा में पहाड़,
नदियाँ गुण गाती हुई सरकती जाती हैं।
माँ, आज पुण्य का पर्व, शहीदों की स्मृति में
अपने कृतज्ञ दो अश्रु-बिन्दु ढल जाने दो,
करुणामय की करुणा को शतशः धन्यवाद !

चङ्ङल विधिकृतमेन्नु वञ्चा दास्यत्तिन्

तोङ्ङल्तान् तनिक्कलंकारमाय् वारित्तूक्कि,

भीरुवाय्—स्वातंत्र्यमेन्नुच्चरिक्कुवान् पोलुम्

भीरुवाय्–तळर्न्न निन् जीवितम् मयङ्ङुम्पोळ्,

निम्मान्यपुत्रन् वीरतिलकन् स्वातंत्र्यम् तन्—

जन्मावकाशम् तानेन्नाद्यमाय् प्रख्यापिक्के

नटुङ्ङी निन्नात्मावु 'यूनियन् जाक्का' टुन्न

नेटुतामत्युन्नत ध्वजत्तिन् तऱ्योटे ।

एंकिलुमतिन् कट पुषऻ्ङीलतिन्निरुळ्

तंकिटुम्निषऻ् नीण्टू निन्चरित्रत्तिल्क्कूटी ।

क्रूरमामतिन्नटिकुतिरान् स्वरक्तम् नी

धारधारयायत्रे पकर्न्नीलतिल्प्पिन्ने !

एत्रयो किरीटत्तिन् कल्लटिञ्चुऱ्प्पिच्चो—

रत्तऱ्क्कुमेलेत्र साहसम् तंकर्न्नील

धर्मत्तिन् नवायुधशालयिल् निन्नुम् पिन्ने—

वह भी था मात: एक समय
जब हम जड़ता में पड़े हुए अवसाद-ग्रस्त,
दासत्व-पाश को विधि का वह अचल विधान मान,
सोये थे हो निश्चेष्ट,
मुक्ति के हित आयास न करते थे।
ऐसी कदर्यता थी, मुख से
'स्वातंत्र्य' शब्द कहने में भी हम डरते थे।
तब पटी भीरुता की बदली,
उच्चरित हुआ गंगाधर के गंभीर कंठ से महा-सत्य
केसरी तिलक की वाणी में
जागृत स्वदेश का कंठीरव
प्लुत में चिंघार पुकार उठा;
'स्वातंत्र्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार !
उसे जैसे भी हो हम पाएँगे,
मस्तक का दे बलिदान
मुक्ति की मणि का मोल चुकाएँगे !'
पट गयी भीरुता की बदली,
फट गया गहनतम हिमाकार,
नदियों का जल खलबला उठा,
करवट लेकर जागे पहाड़।
'यूनियन जैक' तिलमिला उठा,
ध्वज काँपा, नीचे नींव हिली,
सत्ता का आनन म्लान हुआ;
जनता को नूतन ज्योति मिली।
तब से तू ने जाने कितने पावक सायक संधान किये,
जन्मे होंगे कितने सपूत,
कितने किशोर बलिदान किये।
'यूनियन जैक' का उन्मूलन, पर, हो न सका
सोने-चाँदी से पिटा हुआ ध्वज-पिंड मूल में था दृढ़तर,
थे किये हुए उसको अजेय,
चरणों को कसकर गहे हुए निर्लज्ज किरीटों के पत्थर।

क्कर्मकोविदन् सत्यसंगरन् शुचिव्रतन्

वाळिनाल् मुरियाते, तीयिनाल् दहिक्काते
वाञ्चिट्टुमोरायुधम् एन्ति गान्धिजियेत्ति;

विनयम् पठिच्चपोलक्कोटियता, धीर—
सुनये, निन्पादत्तिल् तलताष्त्तिनिन्नल्लो ।

वंदनम्परयुक, विश्ववन्दिते, दैवम्—
तन् दयक्काशाफुल्ल स्वच्छमानसत्तोटे ।

कालम् निन् धर्म्मार्जित स्वातंत्र्यमुद्घोषिप्पान्
नीलनिर्म्मल शब्द गुणमामाकाशत्ते
नोक्कुक, महाघंटयाक्कि वार्त्तुतु, नालु
दिक्कुकळिरुळत्तुणियतिल्निन्नूर्त्तीट्टुन्नु ।

श्रीलमामणियता आलुन्नु महा विश्व—
शालतन् मध्यत्तिकल् प्रिय दर्शनाकारम् ।

मुन्परिञ्ञिट्टिल्लात्त मादकस्वातंत्र्यत्तिन्
सम्पन्नपानत्ताले कूत्ताटुमोरो काट्टुम्

चलिक्केच्चलिक्केनिन्पूर्णमंगळत्तिन्टे—
योलितान् तुळुम्पुन्नु चक्रवाळत्तिन् वक्किल् ।

वीरमद्दळमुखनिर्ग्गळत्कळारावो—
दारमाक्कुन्नु मून्नु सागरमिस्सन्दर्भम्

शारददिनोदयश्रीनिवर्त्तुन्नू स्वच्छ—
गौरमाम् वेळिच्चत्तिन् वेण्कोट्टक्कुट मन्दम् ।

उन्नतस्वातंत्र्यत्तिन् रत्न पीठत्तेद्देवि,
वन्नलंकरिच्चालुम् ! निन्नाममुपङ्ङट्टे,

नूरुभाषयिल्, नूरुनूरु गानत्तिल्, नूरु—
नूरु नूरन्ताराष्ट्रमंडलङ्ङळि, लम्मे !

इतने में सत्यव्रती योगी, कर्मठता के पूर्णावतार,
गाँधी आये, खुल गया
कर्म के शस्त्रालय का नया द्वार।
यह कर्म-शस्त्र जो नहीं आग में जलता है,
जिसको न काट सकती लोहे की तलवारें,
जो अयस और पत्थर दोनों पर ही सम-गति से चलता है।
हे धन्य वीर, जो यह धर्मास्त्र उठाता है
सौ बार धन्य वह पुरुष अहिंसा के सम्मुख
जो खड्ग फेंक लज्जित हो शीश झुकाता है।
वह उसी पुण्यमय महाशस्त्र का फल सुन्दर,
जो ध्वजा शूलवत् कभी हृदय में चुभती थी
लहराती है वह विनयशीलता में भरकर।

करुणामय की करुणा को शतश: धन्यवाद !
हे जगत्पूजिते ! विश्वधाम के मध्यस्थित
घंटावत् सगुणमय व्यापक यह महाव्योम,
तेरी महिमा नित गाता है,
त्रिभुवन को तेरी धर्मार्जित पावन स्वतन्त्रता का सन्देश सुनाता है।
बह रहा क्षितिज को छू उद्वेलित मुक्त पवन
वनराजि मुक्त हो सजती है,
द्रुम के पत्तों में अनिल नहीं सीत्कार रहा
हरियाली में मांगलिक बीन यह बजती है।
तीनों समुद्र हुँकार रहे गम्भीर नाद।
गर्जन में भेरी की गत है।
उस मन्दिर के ये भाल भव्य जिसका किरीट
इस अवनीतल का सर्वोच्च श्रृंग हिम-पर्वत है।
प्रस्तुत स्वतन्त्रता का यह मणिमय सिंहासन
बैठो माँ, हम मिलकर आरती सजाएँगे।
नाना भाषाओं में लिखेंगे एक नाम,
नाना छन्दों में एक गीत हम गाएँगे।

वंदनम् पर्‌युक, रंजितविश्वे, दैवम्--
तन् दयक्कुत्कन्धरसुन्दराननयायि !
अंब, निन्‌स्वातंत्र्यत्तिन् चिह्नत्तेप्पारिक्कुन्नि--
तंवरम् नीलच्छायमाय तन् कवचत्तिल् ।
उन्मुखम् हिमवानुम् विंध्यनुम् मलयनुम्
नम्मुटे पताकयुत्पुळकम् दर्शिक्कट्टे ।
एङ्ङुमिन्नविटत्तेयभिमानत्तोटोप्पम्
पोङ्ङ्मी त्रिवर्णङ्ङळ् चक्रांकमनोज्ञङ्ङळ्
लीलयिलपूर्वाभिमानत्तिल् पाटुम् मलं--
चोलकळ् पोलुम् मारि्ल् ञेरि्मेल् कुत्तीटुन्नु ।
नाळेयिस्वातंत्र्यत्तिन् चिर्‌किन् काट्ट् टि्ट्ट्टु
नीळेयेषलयाषि् हर्षत्ताल् विजृम्भिक्कुम् ।
नाळेयिस्समाधान वाग्दानम् कण्टिट्टेर्
नाटुकळाशापिच्छम् विरुत्ति नृत्तम् चेय्युम् ।
ई अजय्यतयुटे निषल् काणुम्पोळ् तोक्किन्
वाय तन्नत्तान् पोत्ति निल्क्कुमक्रमिराज्यम्
भयमे, दूरे ! द्दूरेयाशंके ! नवयुगो--
दयमाय्, नवरश्मि पूशुमिक्कोटिकण्टो ?
मेटुकळ्, वयलुकळ्, काटुकळ् कटलुकळ्,
नाटुकळ्, नगरङ्ङळाक्केम् मेले मेले,
ई अनुग्रहम् तूकुम् कोटितन्सौम्यस्निग्ध--
च्छाययिल् प्रापिक्कट्टे शांतियुमैश्वर्यवुम् !
वन्दनम् पर्‌युक राष्ट्रनायिके, दैवम्--
तन् दय, क्कभंगुर मंगळे, जयिच्चालुम् !

--१९४७

करुणामय की करुणा को शतशः धन्यवाद !
मातः तेरे चक्रांक केतु को व्योम-देव
सादर सुनील निज कंचुक पर लहराते हैं।
मस्तक उन्नत कर मलय, हिमालय, विंध्याचल,
झंडे की छवि को देख छके रह जाते हैं।
स्वात त्र्य-गरुड़ का पक्ष तीन रंगोंवाला,
इसके झोंके सर्वत्र सौख्य बरसाएँगे।
यह शान्ति-सुन्दरी के हाथों का इन्द्र-धनुष
कल इसे देख आशा के रंजित पिच्छ खोल,
नाचेंगे राष्ट्रों के मयूर, उत्सव होगा।
इस दुर्विजेयता की छाया को देख भीत
अत्याचारी झुक जाएँगे।
बन्दूकों के मुख अनायास ही मुद्रित होंगे,
सुस्ताएगा संसार शांति की छाँह-तले,
निश्चय, विमुक्त युद्ध के भय से भव होगा।
हो दूर भविष्यत् की चिन्ते ! मानस के भय
री आशंके ! अब और नहीं आतंक जगा।
हो चुका उदित प्राची के तट पर युग नवीन
यह केतु उसी की किरणों में लहराता है।
इस महाकेतु के नीचे सारे ग्राम, नगर,
सागर, उपसागर, शैल-शृंग, वन-उपवन, खेत
युग-युग भोगें सुख-शान्ति-स्नेह में बँधे हुए।
करुणामय की करुणा को शतशः धन्यवाद !
भारत का मन सारी वसुधा से एक रहे।
अयि राष्ट्रनायिके, मंगलमयि, तेरी जय हो !

अनुवाद—कविवर दिनकरजी द्वारा,
रेडियो कवि सम्मेलन में पठित

—१९४७

चरित्रत्तिन्टे किनावुकळ्

क्षीणमाम् चन्द्रक्कल
पिन्नेयुम् पटिञ्ञारे–
क्कोणिलेञ्चितरिन
मुकिलिन् वक्किल्क्कूटि
निजमाम् प्रकाशत्तिन्
राज्यत्तेयीषद्रक्त–
निर्मामतिरिट्टु
नीळवे तिरियक्कुन्नु–
उलकत्तिलेभित्ति–
योक्केयुम् तकर्क्कुंवा–
नुणरुम् कोट्टुंकाट्टिन्
सन्देशम् श्रवियक्काते–
उलकत्तेयोन्नायि–
क्कण्टुकोण्टाकाशत्ति–
लुदयम् कोळ्ळुम् ज्योति–
र्म्मयरे श्रद्धियक्काते ।

आग्रयिल् चरित्रत्ति–
न्नाघाताल् तकर्न्न त–
न्नाग्रहङ्ङळाल् चूष–
प्पेट्टेषुम् महानक्बर्
नट्टुङ्ङत्तेरिञ्चोन्नु
नोक्किप्पोयारामत्तिन्
नट्टुविल्, प्पल नट्टा–
ण्टोटियोरुरक्कत्तिल् ।

इतिहास के सपने

इस प्रक्षीण चन्द्रकला ने
आकाश के पश्चिमी कोने पर बिखरे
बादलों के किनारे पर
अपने प्रकाश के साम्राज्य को समेट कर
अलग हटा लिया है
और
लाल रेखा की एक बारीक सीमा बना ली है।
वह नहीं सुनती है
आँधी की आवाज़
जो जाग उठी है
संसार के समस्त भय को
दूर करने के लिए ;
वह नहीं देखती है
आकाश पर उदित होनेवाले
ज्योति पुरुषों को, जो हैं
समस्त विश्व की अखण्डता के साक्षी।

अपनी साधों को मन में संजोये
महान् अक़बर,
इतिहास के आघातों से भग्नाश,
अकस्मात् जाग उठा
शताब्दियों की लम्बी नींद से ;
और
उसने देखा चारों तरफ
आगरा के उद्यानों में !

"काट्टु केरिय मत–
भ्रान्तिनु वेदत्तिन्टे–
येटुकळ्तोरुम् काट्टि–
क्कोटुत्तु दैवैक्यम् ञान् ;
चोरतन् चुवप्पिलुम्
कण्णीरिन् पुळिप्पिलुम्
सारमाम् मर्त्यैक्यत्ते–
क्कण्टेत्तिक्काणिच्चील !"

अटञ्ञू तळर्न्नोरा–
कण्पोळ, याक्कण्णिन्मे–
लटर्न्नू नेटुवीर्प्पाल्
रण्टु चेम्पनीरितळ् ;
मुट्टिय सहोदर–
कलहत्तिकल्कत्ति
नेट्टमेलेट्टोरित्त्य–
तञ्चोरक्कणम् पोले ।

अम्पलम्, पलपळ्ळि,
हिन्दुवुम् मुसल्मानुम्
सम्पन्नमाक्कित्तीर्त्त
नगरम्, नाट्टिन्पुरम्,
मनवैरत्तिन् ज्वल–
ज्वालयाल् संस्कारत्तिन्
चितयावतोर्त्तार्त्तु
वितुम्पुम् यमुनयो

चुषियिल्, च्चुषियिल्त्तन्–
शोकत्ते विषुङ्ङिक्को–
ण्टोषुकी श्लथनील–
वेणियायुपान्तत्तिल् ।

"बर्बर धर्मान्धिता को मैंने दिखाया
कुरान के प्रत्येक पन्ने में
ईश्वर की एकता का साक्ष्य ;
मगर हाय,
मैंने नहीं देखा न दिखाया
मानव की एकता को
खून की लाली में
और आँसुओं के क्षार में।"

मुँद गयीं थकी हुई वे पलकें
झर कर गिर गईं
गुलाब के फूलों की दो पंखुरियाँ
उन आँखों पर
निश्वास के कारण,
मानो
भाइयों के ग्रह-कलह में
भारत के ललाट पर
लगा हो कटार का घाव,
टपक पड़े हों रक्त के कण।

समीप से बहती रही
नीलांचल फैलाये यमुना
भँवर-भँवर में
शोक का घूँट पीती हुई,
सुबकती हुई यह देखकर
कि हिन्दू और मुसलमानों ने मिलकर
बनाया था सम्पन्न जिन
मन्दिर, मस्जिद और ग्राम-नगर को
वे जल रहे हैं
धर्मान्धिता की प्रचण्ड आग में
बना दी गयी है संस्कृति की चिता !

दिल्लियिलोरु शव–
　　　　प्पेट्टियिलरंगसी–
वल्ललालुणर्न्नेन्तो
　　　　तन्टे योर्मयिल्त्तप्पि ।

कार्त्तिक नक्षत्रङङळ्
　　　　जपमालयाय् कैयिल्–
च्चार्त्तिय रावङङ ोट्टु
　　　　नोक्कवे विळरिप्पोय् ।

आरतु ?—शवक्कुटी–
　　　　रत्तिनेप्पश्चात्ताप–
धारयाल् ननय्क्कुमा–
　　　　क्कण्णिलेन्तोरु माट्ट्म् !

जपमालये राज्य–
　　　　लक्ष्मितन् गळत्तिंकल्–
ज्जयियामरंगसी–
　　　　विरुकुम् वरेच्चुट्ट् ;

घोरदर्शनमायी
　　　　पवित्रम् जपमाल
चोरयाल्क्कण्णीरिनाल् ;
　　　　चेंकोलुम् ञेरिञ्ञल्लो !

विरलिन्नट्ट्त्तोळम्
　　　　वीरनु, मगाधमाम्
करळिन्नटिवरे–
　　　　ब्भक्तनुमाणा महान् ।

एंकिलुम् चरित्रत्तिन्
　　　　प्रौढमाम् स्वप्नम् पोले
तन्कण्णाल् काण्केत्तन्ने
　　　　तकर्न्नू तन् साम्राज्यम् ।

जाग पड़ा औरंगज़ेब
दिल्ली की एक कवर में
और शोक भरा टटोलने लगा
अपनी स्मृतियाँ,
देखा कि
कृत्तिका-नक्षत्रों की तसवीह को
अपने हाथों में लपेटे हुए थी रात
पड़ गयी थी बिल्कुल पीली।

यह कौन है ?
कैसा परिवर्तन आ गया है
इन आँखों में
जो धो रही हैं मकवरे को
पश्चाताप के आँसुओं से।

विजेता औरंगज़ेब ने
बाँध दी थी कस कर अपनी तसबीह
राज्य-लक्ष्मी के गले में,
दिखाई देने लगी
वह पवित्र जपमाला
अत्यन्त वीभत्स
खून और आँसुओं से तर ;
चूर-चूर हो गया शासन-दण्ड !

कैसा था वह महान्
नख-शिख तक
वीरत्व से विभूषित
अगाध भक्तिभावना से परिपूरित ;

किन्तु
इतिहास के शानदार सपने की तरह
टुकड़े-टुकड़े हो गयी थी सल्तनत
उसी की आँखों के सामने !

इएक्कियटय्क्कयाय्
चक्रवर्त्ति तन्कण्णि–
ऩिमकळ् पोटिञ्चिल्लु–
पोलेषुम् कण्णीरोटे ।
अन्तरीक्षत्तिन् मुख–
त्तियलुम् परिहास–
मन्दहासम् पोलोरु
कोळ्ळिमीनुटन्मिन्नी ।

पूर्नयिकलेप्पुरा–
तनमाम् चितयिलुम्
दीनदर्शनम् रण्टु
नयनम् मङ्ङिक्कण्टु ।
"इनियुम् ज्वलिक्कयो
हिन्दुराज्यत्तिन् स्वप्न–
मनिवार्यमाम् चरि–
त्रत्तिनेग्गणिक्काते !
मुसल्मान् समुन्नत–
माय तन्शिरस्सिकल्
मुटि चूटियतन्नु
ञान् सहिच्चिल्ला ; पक्षे,
हिन्दुराज्यत्तिन्नटि–
त्तर् केट्टुवान् रक्त–
विन्दु ञान् चोरिञ्ञतु
कालवुम् पोरुत्तीला ।"

शिवजि जलार्द्रमाम्
कण्णिम चिम्मी तल
निवरुम् मलकळी
वाक्कु मूकमाय् केळ्क्के ।

शाहंशाह ने कसकर वन्द कर लीं अपनी आँखें
आँसू की नन्हीं-नन्हीं कणिकाएँ
उनमें चमक उठीं
शीशे की कनियों-सी !
आकाश के मुख पर
जल उठी एक उल्का
क्रूर परिहास की भाँति !

पूना की पुरानी चिता में
दिखायी दिये
दो नयन
उदास टिमटिमाते :
"अब भी,
इतिहास की दुर्घर्षता की उपेक्षा कर
जल रहा है सपना
हिन्दू साम्राज्य का ?
मुसलमानों ने
अपने समुन्नत सिर पर
जो मुकुट पहना
उसे मैंने नहीं सहा।
हिन्दू साम्राज्य की
नींव डालने के लिए
मैंने रक्त-विन्दुओं का तर्पण किया,
उसे काल भी न सह सका।"...

शिवाजी ने
अश्रुपूरित अपने नयन मूँद लिये,
मौन मूक होकर
यह वाणी सुननेवाले पर्वतों ने
अपना मस्तक उठाया।

"इरुळिल् निर्माणमाम्
भेदभावनयेल्लाम् ;
अरिय वेळिच्चमा–
ञ्भित्तियेस्सहिय्क्कुमो ?
मुकमाम् सत्यत्तिन्टे
चित्रमाम् किरणङ्ङ–
ळाकवे स्वमौलिक–
वन्धत्तेयोर्मिच्चेंकिल् !
तङ्ङळिल्प्पुणर्न्नेङ्किल् !
माधुर्यम् चोरिञ्ञुको–
ण्टङ्ङने नवोदय–
मिविटेप्पुलर्न्नेङ्किल् !"

अन्तरीक्षत्तिन् मौन–
मी मनोहरमाय
चिन्तये लाळिच्चुको–
ण्टनङ्ङातिरिय्क्कवे
चोरतन् गन्धम् पूशि–
श्शवसञ्चयम् नक्कि–
प्पारम्पेत्तरिप्पियक्कुम्
जडमामोरु वातम्
दिल्लियिल्, प्पञ्चाबिल्, श्री–
नगरिल्, च्चुट्टप्पट्ट–
यल्लिलङ्ङने निर–
ङ्कुशमाय् विहरिच्चू ।

—१९४८

"भेद-भाव की सारी दीवारें
अन्धकार की उपज हैं,
क्या मनोहर प्रकाश
इसे सहन करेगा ?
एक ही सत्य की ये विचित्र किरणें हैं
ये धर्म सारे ;
काश,
अपनी मौलिक एकता को याद कर पाते
और, आपस में आश्लिष्ट होते ये,
इस तरह यहाँ सुन्दर नवोदय का
प्रारम्भ होता !"

बूढ़े अन्तरिक्ष का मौन
इस मनोहर भावना को दुलरा रहा था
तभी आया दूषित वायु का एक निरंकुश झोंका
रक्त-रंजित गन्ध का अंगलेप कर
लाशों का आडम्बर चाट कर
रात में घूम-घूम कर पृथ्वी को भय-प्रकम्पित करता
दिल्ली में,
पंजाब में,
श्रीनगर में।

—१९४८

भारतेन्दु

१

अम्पिळि !   येष्पुपतुम्
कुर्ऽयुम् कोल्लङ्ङळ्क्कु
मुन्पिलाणोक्कुन्नो नी ?
इविटे प्पोर् वन्दरिल्
वलिय चेविकळुम्
नीण्टुयर्न्नेषुम् मूक्कु—
मलियुम् मिषिकळु—
मान्नोरु कृशवालन्,
मुकिलिन् नीलक्काटिन्
चिल्लकळ् माटि्टच्चिरि—
च्चकलेच्चेल्लारुळ्ळ
नी वरान् वैकिप्पोके,
मेटयिल्, ज्जनालय्क्क—
लेत्तिच्चुनोक्किक्कोण्टु
मेविटारिल्ले मेन्म—
लेलुमक्षमयोटे ?

प्राणनाम् प्रियमाता—
वुपवासत्ताल् परि—
क्षीणयायोरो जोलि
चेय्कयाम् ताष्त्तेङ्ङो !
अम्मतन् कैयेत्रय्क्कु
नोवणम् गृहत्तिङ्कल्—
तन्मक्कळ्क्कन्यादृश—
स्वर्गमोन्नुण्टाकुवान् !

भारतेन्दु (राष्ट्रपिता)

१

चाँद !
याद है तुझे,
साठेक वर्ष पहले की बात है,
यहाँ इस पोरबन्दर में
बड़ी-बड़ी आँखें,
लम्बी ऊँची नाक,
और बड़े-बड़े कानोंवाला
एक दुबला-पतला बालक
छत पर खिड़की के पास
उत्तरोत्तर अधीर खड़ा रहता था,
उझक-उझक कर झाँकता था
जब देर हो जाती थी आने में तुझे
बादलों के नीलारण्य की डालियाँ हटाते-हटाते ।

प्राणों-सी प्यारी माँ
शायद उपवास से परिक्षीण हो कर
नीचे कहीं काम कर रही हों !
कितना कष्ट उठाना पड़ता है
माता के करों को
अपने बच्चों के लिए
घर में
एक दूसरे स्वर्ग की रचना करने में !

अ, म्मञ्चिल्निन्नुम् ताषे–
यक्कोटिच्चेन्नरियिच्चो–
रुम्म वाङ्ङणम् मक–
नोन्नु नी नेरे चेन्नाल् ।
वत्सलमाताविन्टे–
यार्द्रचुम्बनम्पोलो–
रुत्सवम् स्नेहिक्कुमा
'मोहनदास'न्निल्ल ।
तारकळ् हर्षाल् चिम्मु–
मिममेलानन्दाश्रु–
धारतन्तिळक्कमो–
टक्कुमारने नोक्कि,
'ई मकन् वळरुम्पो–
ळाणु पुण्ययामिन्त्ये !
नी मन्निन् किरीटमा–
कुन्नते' न्नन्नाळोति ।

२

अम्पिळि, निन्नेप्पोले
सुन्दरनल्लेन्नालु–
मन्पिनोटकळंक–
नमृतात्मकनायि,
भारतचरित्रत्तिन्
चक्रवाळत्तिल्स्सौम्यो–
दारदर्शनन् पिन्ने
मोहनन् मन्दम् पोङ्ङी,
भीतिनिश्चलमायि–
क्कालत्तिन् मणल्त्तट्टिल्
पाति पूण्टुपोय्, क्कोटि
तकर्न्नु, चाल् काणाते,
किटन्न 'किषक्क', न–
ङ्ङुन्नतु काणाय् ; काणा–

अगर सामने चला आता तू, चाँद,
तो वह छत से नीचे दौड़ पड़ता
और माता को चन्द्रोदय का समाचार दे कर
उसका चुम्बन पाता ;
प्यार भरी माँ के
स्नेहार्द्र चुम्बन से वढ़कर
'मोहनदास' के लिए
कोई दूसरा उत्सव ही नहीं था।
हर्ष-मुकुलित नयनों से
आनन्दाश्रु-प्रदीप्त तारों ने
उस वच्चे की ओर देख कर
कहा :
"हे पुण्यभूमि भारत,
जव यह लाड़ला वड़ा होगा
तव तुम पृथ्वी का मुकुट वनोगी"

२
हे चाँद,
यद्यपि तेरी भाँति सुन्दर नहीं हुआ
तथापि वह अकलंक
आर्द्र और अमृतात्मक वना
भारत के इतिहास के क्षितिज में
वह सौम्य, उदारदर्शन मोहन
फिर धीरे-धीरे
ऊपर की ओर गतिशील हुआ।
प्राची
जो काल के सैकत में आधी-धँसी
मार्ग-भूली
भय से निश्चल हो कर
केतु-खण्डित पड़ी थी
वह धीरे-धीरे गतिमय दिखायी दी,

युटने चैतन्यत्तिन्
वेलियेट्ट्वुम् नीळे
आयिरम् तिरकळाय्
विक्षोभमलय्क्कुक–
यायि, मुङ्ङुकयायी
दुस्तरप्रतिबन्धम् ।
भूतकालत्तिल्ताषि्त्त–
यिट्ट नंकूरम् पोक्कान्
भूरिकौतुकमार्न्न
चरित्रमारंभिच्चु ।
प्राचियङ्ङने पोङ्ङि–
क्कुतिक्केयार्त्तुन्न
वीचिकळटिच्चेत्र
राज्यङ्ङळुणर्न्नील !
मरणविकारङ्ङ–
ळेन्तेन्तु काणिच्चील
महियिलजय्यत भविच्च
साम्राज्यङ्ङळ् !

पारतन्त्र्यत्तिल्क्किट–
क्कुम्पोषी 'क्किषक्किने'
च्चोरयिल, क्कण्णीरिन्टे
चुषियिल्, स्वयम् ताषि्त्त
पातियुम् मरिप्पिच्च
साम्राज्यक्कोळ्ळक्कार्कुम्
पालोळि परत्तुन्न
सात्विकप्रकाशत्तिल्
भारतेन्दु हा, कट्टि–
क्कोटुत्तानवरुटे
घोरवुम् विकृतवु–
माय कर्म्मत्तिन् रूपम् ।

चारों ओर
नयी चेतना का ज्वार लक्षित हुआ,
सारे दुस्तर प्रतिबन्ध डूब गये,
हज़ारों लहरों में हलचल मच गयी,
इतिहास के अतीत के भीतर
डाल दिये गये लंगर को
अत्यन्त आनन्द के साथ
ऊपर खींचना शुरू किया।
जब प्राची उठी,
और आगे बढ़ी, तो
मदोन्मत्त हो कर गरजती आती
लहरों के ज्वार में
कितने ही देश जाग उठे!
अजेयता के दर्प से भरे
साम्राज्यों ने
कितने प्रपंच नहीं रचाये!

जिन साम्राज्यवादी लुटेरों ने
गुलामी में जकड़ी प्राची को
खून और आँसू के भँवर में
डुबो कर अधमरा कर दिया था,
उनपर भी
भारतेन्दु ने
दुग्ध-धवल सात्विक प्रकाश फैलाया,
और उस प्रकाश में
उनके क्रूर कर्म का विकृत रूप
उजागर कर दिया!

भारतम् किष्क्किन्ट्
नेतृत्वम् वहिच्चिता
भावियिल् विश्वासत्तो–
टिनियुम् कुतियक्कुन्नु !

३

अम्पिळि, निन्नेप्पोले
मोळिल् निन्निल्ला 'बाप्पु' ;
तन्पिर्नाटिङ्कले–
च्चेट्टमणकुटिल्तोरुम्
पुतिय वेळिच्चवुम्
धैर्यवुम् सौन्दर्यवुम्
पोतुविल् वळर्त्तुवान्
स्वातन्त्र्यम् विटर्त्तुवान्
मलिननिलङ्ङळिल्,––
क्कण्णीरिन् कयङ्ङळि–
लेळिय मनुष्यर् चे–
न्नार्द्रनाय् सदा चुट्ट ।
स्नेहपूर्णमामुळ्ळम्
मातृभूदुःखत्तिन्ट्
दाहकप्रसरत्ताल्
परितप्तमाकवे,
केवलसत्यत्तिने–
त्तिरञ्ञा महानार्द्र–
जीवनिलहिंसये–
क्कोळुत्ति, यतिन् नाळम्
संचलिक्काते चूषुम्
नरकक्कोट्टुंकाट्टिल्–
स्सचरिक्कयायार्क्कुम्
वेळिच्चम् कोटुक्कुवान् ।

लो,
भारत प्राची का नेतृत्व स्वीकार कर
अपने उज्ज्वल भविष्य के प्रति आश्वस्त होकर
और भी आगे की ओर बढ़ रहा है।

३

हे चाँद,
तेरी भाँति
बापू कभी अछूते ऊपर नहीं रहे;
अपनी जन्मभूमि की
गरीब झोंपड़ियों में
नया आलोक,
नया धीरज
और नया सौन्दर्य पूरित करने के लिए,
स्वातन्त्र्य भावना को विकसित करने के लिए,
जीवन के मलिन तटों पर
आँसू के गहरे तलों में
अकिंचन दीन मानवों के साथ ही
वह सदा घूमते रहे।
जन्मभूमि के दुःख का
दाहक ताप पाकर
जब वह स्नेहपूर्ण हृदय
झुलस गया, तो
एकान्त सत्य की खोज में निरत
उस महात्मा ने मानवों की आर्द्र आत्मा में
अहिंसा की ज्योति जगायी
जिसकी लौ चारों ओर के नारकीय चण्डवात में भी
अचल रहती है, और
सब को प्रकाश देने के लिए
चारों ओर जल रही है।

४

अम्पिळि, करयुक ;
कूरिरुट्टिने वेल्लान्
वेम्पुमा विश्वत्तिन्टे
मंगळविळक्किने,
तन्चराचरस्नेहम्
निऱयुम् विलोलमाम्
मण्चेरातिने मऱ-
न्नेरियुम् विळक्किने,
भूविनु यन्त्रत्तिन्टे
निऴलाल् मऱञ्ञेषुम्
जीवने वीण्टुम् काट्टि-
क्कोटुक्कुम् विळक्किने,
भेदबुद्धितन् करिम्
कोट्टकळ् कतिरिनाल्
भेदनम् चेय्वान् तेळि-
ञ्ञाळिटुम् विळक्किने,
पारिलेक्कृतघ्नत-
योक्केयुमोन्नाय्च्चेर्न्न
पाऴ्क्करमोन्नुण्टायी
मृतिमेलेऱियुवान् !

पुलितन् कनल्क्कण्णुम्
सिंहत्तिन् रक्तार्द्रमाम्
वलिय नखङ्ङळुम्
सर्प्पत्तिन् विषप्पल्लुम्
मानसत्तिकल्स्सूक्षि-
य्क्कुन्नोरु परिष्कृत-
मानवराणिप्पारिल् ;-
मृगमाणिन्नुम् मर्त्यन् !

४

हे चाँद,
करो रुदन,
क्योंकि
आज एक पापी हाथ
समस्त कृतघ्नता का पुंजीभूत रूप
प्रस्तुत हुआ पटक देने के लिए मृत्यु-शिला पर
विश्व के उस मंगल-दीप को,
जो आतुर था
घोर अन्धकार को ध्वस्त करने के लिए ;
जो परिपूर्ण था
चराचर के प्रेम से,
जो जल रहा था
अपनी क्षीण काया की उपेक्षा कर,
ज्योतित था जो
इसलिए कि
पृथ्वी को दिखा दे फिर से
यन्त्रों की परछाईं में छिपी उसकी आत्मा को,
जो था अत्यन्त प्रोज्ज्वलित
अपनी किरणों से छिन्न-भिन्न करने के लिए
भेद-भावना के तमस् परकोटों को।

अपने अन्तरंग में पालते हैं
ये सभ्य मानव
बाघ की जलती हुई आँख
सिंह के रक्त-भरे नख
साँप के विषैले दाँत,
सचमुच आज का मानव पशु ही तो है!

जीवितत्तिने स्वच्छ–
प्रार्थनयाक्किक्कोण्टु
भूविले विशुद्धियाय्
वाणोरश्शान्ताकारन्,
हिन्दुवे, मुसल्माने—
श्शिखनेयोरे सत्य–
बिन्दुविन् विकारमा–
णेल्लामेन्नोर्म्मिप्पिक्के,
सुन्दरसनातन–
चैतन्यत्तिलेय्क्केक–
स्पन्दत्तालवरुटे
हृत्तिनेयुयर्त्तवे,
तन्निली प्रपंचत्ते,
प्रपंचत्तिङ्कल्त्तन्ने–
त्तन्नेयुमापूर्णमाय्
दर्शिच्चु कैकूप्पुम्पोळ्,
मानववर्ग्गत्तिन्टे
पापत्ताल् पिळर्न्निता
मारिटम् चरित्रत्ति ;–
न्नेटुकळ् चुवन्नुपोय् !
पिळर्न्नू विश्वत्तिन्टे
शुभ्रमाम् हृत्तुम् ; रक्तोद्–
गळनाल् ननञ्ञुपोय्
निर्म्मलसान्ध्याम्बरम् !
पकलिन् मुखत्तुनि–
न्नटर्न्नू चोरत्तुळ्ळि
परिपाटलमाय
भानुबिम्बत्तिल्क्कूटि ।
कालत्तिन् मिषियिले–
क्कण्णुनीर्क्कणमायि,–
क्काणुक, विर्क्कुक–
यायी अङङ्टे गोळम् !

वह सौम्याकार,
जिसने
जीवन को बनाया एक पावन प्रार्थना
और विराजित हुआ जो
भूमि की विशुद्धि के रूप में,
हिन्दू, मुसलमान, सिख—सब को सिखाया
कि हैं सब
एक ही सत्यकणिका के विविध अंश,
सुन्दर सनातन चैतन्य की ओर
एक ही स्पन्दन से उनके चित्त को ऊर्ध्वमुखी किया,
जब वह अपने में
सारा संसार
और सारे संसार में
अपने को देखकर
हाथ जोड़ वन्दना कर रहे थे,
तो मानव वर्ग के पापों ने
उनका हृदय विदीर्ण कर डाला ;
इतिहास के पन्ने लाल हो गये !
फट गया
विश्व का निर्मल वक्ष,
रक्त वहा इतना कि
विमल सन्ध्याकालीन आकाश
भीग गया !
दिवस के मुख से
ढल पड़ा सौर-बिम्ब
रक्त की बूंद-सा !
लो,
काल के आनन पर ढुलके अश्रुकण-सा
हमारा यह भूगोल
अभी भी कम्पित
दिखायी देता है !

५

अम्पिळि ! दिक्किन् तोळिल्
मूर्च्छियृक्कयल्ली ? नीयुळ्-
क्काम्पिने वेविक्कुमी-
क्कथयाल् विळर्त्तल्लो ।

इनि विस्तरिक्कुन्नी-
लाद्रीत्मन् ! चुट्टुकण्णीर्
किनियुम् करळुमा-
यिन्त्य निल्क्कट्टे ; पोकू ।

पारिलम्पिळि ! नी त-
न्नरुळुम् जगन्मनो-
हारियाम् वेळिच्चम् पोय्-
मरयुम् निन्नोटोप्पम् ।

कटलिन् वाचालमाम्
चुण्टिलो वेळ्ळाम्पलिन्
करळिङ्कले स्निग्ध-
मधुराश्रुविकलो,

मलतन् चिन्तामूक-
तुंगमाम् शिरस्सिलो
निलकोळ्कयिल्लतिन्
तूमयुम् कुळिर्मयुम् ।

भारतेन्दुवो तिरो-
भूतनायृत्तीर्न्नालुम्
धीरमाम् तल्सन्देश-
धार्म्मिकप्रभापूरम्

जीवितसरणिये-
स्सुन्दरमाक्किक्कोण्टु
भाविथिल् निरन्तरम् !
परक्कुम् वहुदूरम् !

५

चाँद !

क्या तू

दिशाओं के कन्धे पर सिर रख कर

मूर्च्छित हो गया है !

दिल दहलानेवाली इस कथा को सुनकर

तू फक् पड़ गया है ?

नहीं बखानूँगा यह कथा

हे आर्द्र हृदय,

विदा लो तुम ;

जलते आँसुओं से भरा हृदय लेकर

यह भारत खड़ा रहे शोकमग्न !

हे चाँद,

तेरे जाते ही

विदा ले लेगा संसार से

तेरा जगमोहन प्रकाश !

नहीं ठहर पायेगी सुभगता

सागर के वाचाल अधरों पर,

धवल कुमुदों के उर के

स्निग्ध मधुर अश्रु में

पर्वत के चिन्तामूलक उत्तुंग हृदय में !

यद्यपि

भारतेन्दु तिरोहित हो गया,

उसके धीर सन्देश का धार्मिक प्रभा पूर

जीवन के पथ को

सुन्दर और आलोकमय बनाता हुआ

भविष्य में बहुत दूर तक फैलेगा !

नाळत्तेक्केट्टुत्तुवान्

पान्ञेत्तुम् करिम्पाट्.ट्

चीळन्नु चिर्.कट्.टु

चाम्पलाम् ; नाळम् निल्क्कुम्,

चितयिल्.द्दहिच्चतु

मृत्युविन् चिर्.कन्ने ;

जितमृत्युवांमात्मा–

वेन्नेन्नुम् जयिय्क्कुन्नू !

—१९४८

ज्वाला को बुझाने के लिए
कूद पड़ते हैं काले-काले पतंग
किन्तु वे जल्दी ही पंखहीन बन कर
राख हो जाते हैं,

तब भी ज्वाला रहती है अक्षुण्ण ही ;
चिता में जो जला
वह तो केवल मृत्यु का पंख है
आत्मा जो जित्मृत्यु है,
चिरन्तन रहा करती है !

—१९४८